
Durga Sah Municipal Library
NAINI TAL
दुर्गासाह म्युनिसिपल लाइब्रेरी
नैनीताल

जीवन-धारा—१

यूरोप के झकोरे में

डाक्टर सत्यनारायण

प्रकाशक

वर्त्तमान संसार,

१२१, चित्तरञ्जन एवेन्यू, कलकत्ता

यूनिटी प्रेस, १२१, चित्तरंजन एवेन्यू, कलकत्ता।

जीवन-धारा

यह उपन्यास नहीं। प्रचलित अर्थ में भ्रमण-वृत्तान्त भी नहीं। इसका नाम सिर्फ़ चित्र दिया जा सकता है।

नदी की धारा धरती पर चित्रकारी करती चलती है। उसी भांति 'जीवन-धारा' भी स्मृति-पट पर अंकित होती जाती है। यह चित्र कौन आंकता है, पता नहीं; पर आंकने वाला चाहे जो भी हो, कविगुरु रवीन्द्रनाथ के शब्दों में "वह आंकता चित्र ही है। अर्थात जो कुछ भी घटित होता है उसकी अविकल नकल रखने के लिये वह हाथ में कूची लेकर नहीं बैठा रहता। अपनी रुचि के अनुसार वह कितनों को छांट देता है, कितनों को रख लेता है। कितनी ही बड़ी घटनाएँ छोटी कर देता है, और छोटी घटनायें बड़ी। पहले की घटनाओं को पीछे और पीछे की घटनाओं को पहले सजाने में उसे संकोच नहीं होता। वस्तुतः उसका काम ही है चित्र आंकना—इतिहास लिखना नहीं।.........जिसे भली भांति अनुभव किया है उसीको अनुभवगम्य करा देने पर मनुष्यों के बीच उसे आदर मिलता है। अपनी स्मृति में जो चित्र रूप में खिल उठा है, शब्दों में व्यक्त हो जाने पर ही वह साहित्य में स्थान पाने योग्य है।"

यह पुस्तक भी स्मृति-पट का चित्र है।

जीवन-धारा, नदी की धारा की तरह, नित्य नये नये चित्र तैयार करती है। उन्हें स्मृति-पट से उतार कर कागज़ पर रख देने की प्रेरणा मुझे सबसे अधिक स्वर्गीय मैक्सिम गोर्की से मिली थी, जिनके साथ रह कर कुछ सीखने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था। 'आवारे की यूरोप यात्रा' के नाम से कई साल पहले यह पुस्तक छपी थी। पर उसमें अब बहुत सी त्रुटियां दिखायी दीं, जिनमें से सबसे बड़ी त्रुटि यह है कि बाह्य जीवन की घटनाओं और उनसे अपने भीतर पड़ी छाप — दोनों को मैं काफ़ी अलग नहीं रख पाया था। अपने यूरोपीय मित्रों का स्वरूप भी तब आज के समान स्पष्ट नहीं देख सका था। साथ ही कहानी के सिलसिले में भी बहुत सी बातें अधूरी रह गयी थीं। प्रस्तुत पुस्तक उसी का रूपान्तर है और इसमें यह सब कमी दूर करने की चेष्टा की गयी है। इसके कई अंश बिलकुल ही नये हैं, और उसके कितने ही अंश इसमें नहीं हैं। और इसीलिये इसका नाम भी बदल कर और अधिक उपयुक्त बना देने में मुझे संकोच नहीं हुआ।

मेरी अन्य दो पुस्तकों—'रोमांचक रूस में' और 'युद्ध-यात्रा'—के भी नये संस्करण 'जीवन-धारा' की दूसरी और तीसरी धारा के रूप में शीघ्र प्रकाशित होंगे।

सत्यनारायण

सूची

प्रथम खण्ड

भूलते-भटकते

सवेरा नहीं हो पाया था। चारों ओर बड़े घने कुहासे के कारण अन्धकार छाया हुआ था। हवा बड़े ज़ोरों की चल रही थी। सर्दी शरीर के भीतर हड्डियों तक घुसी जाती थी। दक्षिणी फ्रांस का किनारा आर्कटिक तट बन रहा था।

मार्सेई बन्दर का सारा काम-काज रुका हुआ था। जो छोटे-छोटे स्टीमर बड़े-बड़े समुद्री जहाज़ों को खींच कर बन्दरगाह के हाते में ले आया करते हैं, उन्होंने भी मौसम ख़राब रहने के कारण अपना काम उस समय बन्द कर रखा था। चुंगी वाले भी, यह सोच कर कि इतने सवेरे और ऐसे मौसम में कोई बाहर न निकलेगा, बेखटके झपकियां लेने लगे थे।

मैं ऐसे ही मौके की ताक में था। जहाज़ से उतर कर मैं शहर की ओर चला। जिस समय छोटा पुल पार कर रहा था, सामने की हवा ऐसी तेज़ थी कि मुझे पीछे ढकेल देना चाहती थी। वहीं एक क्षण खड़ा रहा। फिर सर ऊपर उठाया। चारों ओर घूम कर देखा। कुहासे के सिवा और कुछ भी नहीं। हवा ने ठीक कान में 'सी...सी...ई' के स्वर में कहा—

"बस, इतने ही से डर गये ? तुमने तो इससे कहीं बड़ी मुसीबतों का सामना किया है ! यह तो कुछ भी नहीं । आगे बढ़ो !"

छोटे पुल के दूसरी ओर पहुँचते ही मानो अगवानी के लिये आया हुआ एक कुत्ता पीछे लग गया । कुत्ते ने मेरे पांव को चूम लेने की चेष्टा की, पर मुझसे उसे उत्तर मिला—"धत्...तेरे...की...."

फिर ज्यादा दोस्ती बढ़ाने के लिये चेष्टा न कर वह दुम हिलाता हुआ पीछे आने लगा । अभी चौड़ी सड़क ठीक ठीक पहचान में भी नहीं आई थी कि बड़ी-बड़ी बूँदें पड़ने लगीं । मार्सेई शहर अन्धकार में छिपा था ।

"आ रे ते"—सामने से कर्कश स्वर में आवाज़ आई । मैं रुक गया । लम्बे-चौड़े डीलडौल वाले दो फ्रेंच सिपाही मेरे सामने आ खड़े हुए । एक क्षण उन्होंने बड़े गौर से मेरी ओर देखा, फिर पूछा—"ऊव्रियें (मज़दूर) ?"

मैंने उत्तर नहीं दिया ।

"जिप्सी ?"

इस बार भी मैं चुप रहा ।

"आलौं (चलो) ।"

वे मुझे पकड़ कर ले चले ।

कुत्ता भी पुलिस की चौकी तक हमारे साथ-साथ आया । जब हमारे भीतर घुस जाने के बाद सिपाहियों ने फाटक बन्द कर लिया तो वह बाहर बैठ गया । जब काफ़ी देर बाद भी फाटक न खुला तब वह दुम हिलाता हुआ, आसपास की मिट्टी सूँघ कर, वहाँ से चला गया ।

वे मुझे अपनी ज़बान में फटकार सुनाने लगे । लच्छेदार फ्रेंच भाषा की चुस्ती और नाक से स्वर निकालने की बारीकी और ख़ूबी

पर मैं मुग्ध होने लगा। यह अच्छा था कि मैं उनकी ज़बान नहीं जानता था। डर मुझे इस बात का था कि वहीं मेरे गालों पर तमाचे न जमने लगे।

पर इसकी नौबत नहीं आयी। मेरी ओर से अपनी फटकारों का कोई उत्तर न पा उन्होंने मेरी खानातलाशी ली। पर जब मेरे पाकेटों में उन्हें बड़े-बड़े छेद मिले तब उन्हें सन्तोष हो गया और कुछ ही घंटे हाजत में रख कर उन्होंने मुझे छोड़ दिया। मैं यह आशा नहीं करता था कि जान इतने सस्ते में छूटेगी। इसीलिये पुलिस चौकी से निकला तो पांव हल्के पड़ने लगे।

मैं एक रास्ते के किनारे आ खड़ा हुआ। सामने जिप्सियों की एक गाड़ी खड़ी थी। उसकी काँच, काठ, दफ़्ती आदि से बनी हुई सब खिड़कियां बन्द थीं। सिर्फ़ उसका मुख्य दरवाज़ा खुला था। वहीं एक युवा जिप्सी बेहला लिये दिखलाई दिया। वह तार कस कस कर बेहले का सुर ठीक कर रहा था।

एकाएक ज़ोरों से वर्षा आई। मैं एक पेड़ के नीचे जा खड़ा हुआ। पांवों के नीचे ताज़े पड़े हुए मुर्झाये पत्ते पड़े थे। ऊपर से बहुत ही कम आश्रय पाने की गुंजाइश थी। वृक्ष की शाखाओं का अस्थि-पञ्जर मात्र, निराश हो, आकाश की ओर हाथ पसारे खड़ा था। वह स्वयं ही सहानुभूति की भीख मांग रहा था।

मूसलधार पानी बरसने लगा।

मैं पेड़ के नीचे खड़ा-खड़ा शराबोर हो गया। सर्दी के कारण दाँत कटकटाने लगे। जहाज़ से उतरने के बाद से अब तक मैं अपने-आपको एक प्रकार से भूला हुआ था। इस समय ऐसा मालूम पड़ा, जैसे मैं आहिस्ता-आहिस्ता होश में आ रहा हूँ। अभी यह भी याद आया कि सवेरे से मैंने कुछ खाया नहीं है।

अन्धकार छा जाने से सन्ध्या हुई सी दिखलाई देती थी। रात कहाँ बिताऊँगा, इसकी भी चिन्ता हो रही थी। यही आशा लगाये हुए था कि कब पानी रुके और कब रात बिताने के लिये स्थान ढूंढ़ने निकलूँ; पर आकाश में काले बादलों के घिरते जाने के कारण बहुत घना अन्धकार छाता जा रहा था और वर्षा रुकने के आसार ही नहीं दिखलाई देते थे।

मैंने आँख उठा कर सामने देखा। जिप्सी अपनी गाड़ी के दरवाज़े पर बैठा वेहला बजा रहा था। वेहले का राग रुलाने वाला था। उसके तारों से जो राग निकल रहा था, शायद ठीक उसी प्रकार का राग मेरी हृत्तन्त्री में भी बज रहा था।

और, ज़ोरों की वर्षा हो रही थी।

रह-रह कर मन में आता—

"घर न छोड़ता, वही अच्छा था। वहाँ कम-से-कम ऐसी सर्दी तो नहीं थी; पर नहीं, वहां भी मेरे लिये कौन सा स्वर्ग था? चारों ओर से कुत्तों की तरह दुतकारा जाता था। यहाँ भी वही हाल है। मेरे लिये जैसा वहाँ वैसा यहाँ। मेरे भाग्य में सुख कहाँ?

"फिर क्या इसी तरह भूखे-प्यासे और सर्दी से ठिठुरते हुए मैं यहाँ मर जाऊँगा? लोग मरे हुए कुत्ते को जैसे घसीट कर कहीं फिंकवा देते हैं, ठीक उसी प्रकार क्या मेरी लाश भी फिंकवा दी जायगी?

"मेरी लाश को दफ़नाने वाला भी कोई नहीं मिलेगा? किसी को यह भी पता नहीं चलेगा कि मैं भी कभी आदमी की शक्ल में ज़िन्दा था?"

मैंने अपने होंठ दाँतों के नीचे कस कर दबा रखे थे। सर का पानी ठुड्डी से होकर नीचे गिर रहा था। कभी-कभी एक-आध बूँद ठुड्डी पर ठहर जाती और मेरे गालों की नसें इस प्रकार तन जातीं, मानो रोम-रोम कह रहा हो—'नहीं, मैं इस प्रकार कदापि नहीं मर सकता।'

उधर जिप्सी अपनी गाड़ी के दरवाज़े पर बैठा बेहला बजा रहा था। हवा गांय-गांय करती हुई वृक्षों को झकझोर रही थी।

और, मूसलधार पानी बरसाता ही जा रहा था।

वर्षा का पानी मेरे पांव के पास एक छोटे से गड्ढे में इकट्ठा हो गया था। बारिश रुक जाने पर वह स्थिर हो गया। उसी में मुझे अपना प्रतिबिम्ब दिखाई दिया।

कद मझोला, पर ठीक बांस के खूंटे के आकार का। खूंटों को ठोकने पर जैसे उनका उपरला भाग चपटा हो जाया करता है और चारों ओर से रेशे लटकने लगते हैं ठीक उसी भांति मेरे सर के बिखरे हुए बाल चारों ओर लटक रहे थे।

रंग ऊपर से नीचे तक काला। चेहरे और कपड़ों से घुल घुल कर कोयला पानी में जा मिला था। शायद इसी कारण उस स्थान पर जमे पानी का रंग अधिक काला दिखाई देता था। मेरे सारे शरीर से कोयले की बू निकल रही थी।

अपने को भली भांति पहचान पाने के लिये जिप्सियों की गाड़ी की कांच वाली खिड़की के सामने जा खड़ा हुआ। मेरे जैसी वेश-भूषा वाले 'सज्जन' का पदार्पण यूरोप के बन्दरगाह में बड़े भाग्य से किसी शुभ मुहूर्त में ही कभी होता होगा। कमर में बड़ी लापरवाही से लपेटी हुई लुंगी के दो छोर खुंसे थे। सामने की दोनों मुर्रियां इस तरह ऊंची बन गयी थीं कि हिलते समय जान पड़ता था मानो मुर्गी की दो बच्चियां दोनों ओर वीरासन लगाये बैठी हैं और एक-दूसरे पर हमला करने के लिये पैंतरे बदल रही हैं! लुंगी की मुर्रियों को ढकने का प्रयत्न ऊपर की गंजी से किया गया था जिसके भीतर से छाती के बाल बाहर झांक रहे थे। उसके ऊपर से मैंने एक काला कोट चढ़ा रखा था, जिसमें एक

ही, और वह भी आधा टूटा हुआ, बटन लटक रहा था। और वह कोट भी कैसा ?—गामा पहलवान के शरीर पर भी वह ओवरकोट का काम देता ! और सबसे बड़ी ख़ूबी यह कि मेरी यह समूची विलायती पोशाक इतनी अधिक झरोखों वाली थी कि उसका काल-निर्णय करने के लिये सचमुच ही किसी पुरातत्त्ववेत्ता की आवश्यकता थी।

मेरी विचित्र पोशाक देख कर बेहला वाला जिप्सी मेरे पास पहुँचा और अपनी ज़बान में कुछ बोला। उत्तर में एक नये प्रकार की ज़बान सुन, जिसका वह कुछ मतलब नहीं निकाल सका, उसे हँसी आ गयी। फिर भी वह वहां से टला नहीं ; वहीं बैठ कर अपना बेहला बजाने लगा। थोड़ी देर बाद उसने मुझे अपने साथ चलने का इशारा किया, पर असफल रहा।

तब वह अपनी गाड़ी के भीतर गया और अपने हाथ में एक जांघिया लेकर लौटा। जांघिये का आधा भाग काले कपड़े से तथा आधा सफ़ेद फ़लालैन से बना था, जिसमें लाल धारियां पड़ी थीं। जांघिया दिखलाते हुए जिप्सी ने अपनी ज़बान में कुछ पूछा। मैंने समझा, शायद वह जांघिया बेचना चाहता है। मैंने अपने कोट का पाकेट उलट कर दिखलाते हुए कहा—"पास में कानी कौड़ी भी नहीं !"

जिप्सी इसका मतलब समझ गया। थोड़ी देर तक वह रुका रहा, कुछ निश्चय नहीं कर पाया ; फिर हँसते हुए जांघिया मेरे सामने फेंक कर अपनी गाड़ी के भीतर चला गया।

जिप्सियों ने उसी रास्ते के किनारे एक ख़ाली स्थान पर अपना डेरा डाला। सबसे पहले गाड़ी हांकने वाला एक नौजवान जिप्सी गाड़ी से उतर कर घोड़ों को खोलने लगा। फिर एक युवती गोद में एक बच्चे को लेकर उतरी और घोड़ों को खाने के लिये जो घास फैलाई गई थी,

उसी पर पेड़ बच्चे को दूध पिलाने लगी। इसके बाद जैसे कस कर आलू-भरे किसी बोरे के फट जाने पर उसके भीतर के बड़े-छोटे आलू बाहर निकलने लगते हैं, उसी प्रकार गाड़ी के भीतर से बूढ़े, बच्चे, नौजवान, स्त्री, पुरुष बाहर निकलने लगे। जैसा प्राय: हुआ करता है, उनके पड़ाव डालते ही वहां पर उनका अपना एक विशेष प्रकार का बाज़ार सा लगने लगा।

ये जिप्सी भारत के अनेक भागों में पाये जाने वाले मगहिया डोम अथवा बद्दू जातियों की तरह अपना सारा जीवन गाड़ियों पर ही बिताया करते हैं। ये चोरी, ठगी अथवा भिक्षावृत्ति से अपना निर्वाह किया करते हैं। इनके जीवन की आवश्यकताएं निश्चित नहीं होती बल्कि जब जैसा हाथ लग गया, उसीके अनुसार बढ़ती-घटती रहती हैं।

इसी कारण उनके लिबास अपने निजी ढंग के ही थे। कितने बुड्ढों के पाँवों में स्त्रियों की ऊँची एड़ी वाली जूतियाँ और कितनी स्त्रियों के पाँवों में पुरुषों के बूट जूते थे। और कितनों ही के एक पाँव में पुरुष का और दूसरे में स्त्री का जूता था! उनके पाजामे, कोट आदि रंग-बिरंग के थे। अगर एक पाँव में हरे रंग का कपड़ा, तो दूसरे में काले, सफेद या किसी चितकबरे रंग का!

गाड़ी से उतर कर एक जिप्सी भीख माँगने के लिये जाने से पहले अपने बेहले का साज-बाज ठीक करने लगा। नाले के पास, जहाँ से बड़ी बदबू आ रही थी, बूढ़े आग जला कर भोजन पकाने की तैयारी करने लगे। कुछ स्त्रियां अपने लहँगों पर कई प्रकार के अन्न बिछा कर साफ़ करने लगीं। दूसरी, जिनकी किशोरावस्था थी, शहर में जाने पर सरलता से लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर सकें—इसके लिये, तरह-तरह के बनाव-सिंगार करने लगीं।

ख़ानाबदोशों के दोस्त ख़ानाबदोश ही हो सकते हैं। मार्सेई में

मुझे अपनाने वाले जिप्सी ही मिले। उनके साथ मैं कई दिन रहा। इस अर्से में उनके रहन-सहन, हाल-चाल, हाव-भाव से बहुत-कुछ परिचित भी हो गया। पूरा-का-पूरा जिप्सी नहीं बन गया, इतनी ही ख़ैरियत हुई।

दूसरा और कोई समाज मुझे अपनाने के लिये राज़ी न था। फ्रांस के लोग तो मुझे हिन्दुस्तानी ही मानने के लिये तैयार नहीं थे। कुछ तो केवल उन्हींको हिन्दुस्तानी मानने के पक्षपाती थे, जो सोने से लद कर, मोटरों में बैठ कर बाहर निकलें, जो सर पर ऐसा साफ़ा बाँधें जिसके बीच में एक हीरा टँका हो, और जो सदा अपने को भारतसियों का सरदार सिद्ध करते रहें। कुछ दूसरे केवल जादू की हिकमत दिखलाने वालों को ही हिन्दुस्तानी समझते थे। और कुछ ऐसे भी लोग थे जो भारतवासियों को बाघ-भालुओं जैसा जीव मानते थे, जो किसी को देखते ही उसका मुंह नोच लेने के लिये तैयार रहते हैं। मैं उनके इन तीनों वर्गों में से किसी एक में भी रखा जाने लायक नहीं था, इसलिये उन्हें मेरा जिप्सी होना ही अधिक जँचता था।

जिप्सी भी खुले हृदय से मुझे अपनाने के लिये राज़ी थे—यह बात भी नहीं थी। उनके समाज में केवल वीर युवकों की ही कद्र होती है, और वीर वैसे ही लोग गिने जाते हैं जो किसी से पैसा ठग लाने में अथवा किसी की साइकिल चुरा लाने में समर्थ हों! मैं इन कलाओं में निपुण न था, इसलिये वे मेरी गिनती 'मनहूसों' में किया करते थे। पेड़ से जलाने के लिये सूखी लकड़ी तोड़ लाना, घोड़े को दाना देना और उन्हें जोतना, मुर्गियों को दाना देना, आदि काम मैंने अपने लिये ले रखे थे। ऐसे काम मुझे पसन्द न थे; पर दूसरा और कोई चारा ही न था।

एक दिन एक छोटे झरने के किनारे घास पर लेटे-लेटे अनेक प्रकार की कल्पनाएँ मन में उठने लगीं। मच्छर ख़ूब भंभोरने लगे, जिनके

कारण बार बार करवटें बदलनी पड़तीं। जिप्सी युवक पास में ही बेहला लिये बैठा था। अक्सर, जब कभी भी मन ख़राब होता, उसे कोई बढ़िया गत बजाने के लिये कहता। वह मेरा रुख़ पहचानने लगा था। उसीके हिसाब से कोई वेदना अथवा उत्साह भरा संगीत वह मुझे सुना दिया करता और मेरी तबीयत बहल जाया करती। पर उस दिन उससे कुछ कहने की इच्छा नहीं हो रही थी।

आवारागर्दी का जीवन होने के कारण अपने आप पर काफी झुंझलाहट आ रही थी। मेरे मन में बार बार आता—

'आख़िर इस तरह की ज़िन्दगी भी कोई ज़िन्दगी है ? न घर न द्वार, बात पूछने वाला भी कोई नहीं ; और सबेरा होते ही यह सोचने लगना कि आज रोटी किस तरह मिल सकेगी, और शाम होते ही इसकी चिन्ता करने लगना कि कहीं सोने का ठिकाना लगे ! भला इस तरह की ज़िन्दगी में भी कोई लुत्फ़ है ? इस तरह की ज़िन्दगी को तो नीरस, आनन्द-रहित और मुर्दा-दिल ही मानना पड़ेगा।'

मैं क्यों इस प्रकार का हूँ, और मेरा जीवन क्यों ऐसा बन गया है—ऐसे प्रश्न बार बार मन में उठने लगे। पर इससे विभिन्न प्रकार का जीवन किस प्रकार का हो और वह शुरू भी किस प्रकार किया जाय ?

इस प्रश्न के उत्तर में एक बात जम कर बैठती जाती थी कि चाहे जो भी हो, हवा के साथ बहते चलने से मेरे जीवन में कोई सुधार नहीं हो सकता।

उसी दिन तीसरे पहर जिप्सियों ने वहां से अपना डेरा उठाया। उन्होंने अपना सब असबाब समेट, और बच्चों की गिनती कर बोझाई कर ली। गाड़ी की सब खिड़कियां बन्द कर ली गयीं। एक प्रौढ़ा स्त्री अपना लहँगा फैला कर कोचवान की जगह आ बैठी। एक हाथ से वह

अपने बच्चे को छाती का दूध पिलाने लगी और दूसरे हाथ में उसने घोड़ा हांकने का चाबुक ले लिया। बूढ़े जिप्सी ने उसे कुछ हिदायत दी जिसके बारे में मैंने यही समझा कि वह कूच की दिशा बतला रहा है।

चाबुक दिखाते ही गाड़ी चल पड़ी। पहिये घर्र-घर्र कर लुढ़कने लगे। गाड़ी के भीतर बन्द बच्चों की चेंचामेंची का सुर उस घर्र-घर्र के संगीत का अन्तरा बनने लगा। यह संगीत धीरे-धीरे क्षीण होता गया और एक घुमाव पर जा कर गाड़ी भी दृष्टि से ओझल हो गयी।

परिचित बेहले वाले युवा जिप्सी और बूढ़े सरदार के साथ में पैदल आगे बढ़ा। उन दोनों की दृष्टि रास्ते के किनारे की सब चीज़ों पर अटकती हुई आगे बढ़ रही थी। एक सेव की डलिया का मालिक अपने माल के पास दिखाई नहीं दिया। आसपास से लोगों का ध्यान भी उस ओर नहीं था। बूढ़े ने देखते ही देखते बड़े इतमीनान से सात-आठ सेव अपने झोले में डाल लिये और अपने चेहरे की शान्ति तथा क़दमों का हिसाब पहले जैसा ही कायम रखता आगे बढ़ा। झोले में डाले जाने की अगली बारी एक मुर्गी के बच्चे की आयी। झोले से बाहर निकलने के लिये जब उसने व्यग्रता दिखाई तो बूढ़े ने अपने चेहरे पर बिना शिकन लाये गला दाब कर उस बच्चे को सदा के लिये शांत कर दिया।

हम लोग शहर के बाहर निकल आये। पास में ही एक नाला था। उसके किनारे बगीचे से घिरा किसी किसान का मकान था। बगीचे के चारों तरफ़ किसी प्रकार का घेरा न रहने के कारण अनायास ही वहां प्रवेश किया जा सकता था। जिप्सियों की देखादेखी मैं भी एक वृक्ष की आड़ में जा खड़ा हुआ।

तितली का पीछा करती हुई एक बच्ची हमारी ओर आ रही थी। मालूम पड़ता था जैसे तितली ही उसके साथ खेल रही हो। वह उड़ कर किसी झाड़ी में जा छिपती ; बच्ची उस झाड़ी की परिक्रमा करने लगती और जब वह निराश होकर पीछे लौटना चाहती तो ऐन उसी मौके पर ठीक उस बच्ची के गालों को चूमती हुई तितली उड़ कर आगे की एक और झाड़ी में जा छिपती।

बच्ची अब हमारी ओर, हमसे पांच-सात ही कदम दूर, आ पहुंची थी। उसकी बड़ी-बड़ी नीली आँखें तितली को ढूँढ़ रही थीं। उसके बाँये हाथ में मक्खन-चुपड़ी रोटी का एक टुकड़ा था, पर उसकी याद भूल कर उसने उसे यों ही उँगलियों से झुला रखा था। उसका आधा-खुला मुँह तितली को बस पुकारने ही जा रहा था।

और बूढ़ा जिप्सी उस बच्ची के पीछे पहुँच गया था। दबे पांवों, अपने दोनों हाथों में अपना कोट फैला कर बच्ची को पकड़ने के लिये वह धीरे धीरे आगे बढ़ता जा रहा था। अभी थोड़ी देर पहले मैंने उसे इसी तरह मुर्गी के बच्चे को पकड़ते देखा था। उस बच्चे के छटपटाने और अन्त में गला दबा कर उसके मारे जाने का दृश्य मेरी आँखों के आगे नाच गया। बिजली की भांति मन में यह आशंका दौड़ गयी कि तितली पकड़ने वाली अशंकित बच्ची का भी कहीं दाना चुगने वाली मुर्गी की बच्ची का ही हाल न हो! बूढ़े का कोट अब बच्ची के रेशमी बालों को ढकना ही चाहता था कि—

'शैतान कहीं के!' मैं एक-ब-एक चिल्ला उठा।

एक छलांग में बूढ़ा वृक्ष की ओट में जा छिपा। बच्ची मेरी भाषा नहीं समझ पायी। वह अपनी ज़बान में मुझसे तितली का पता पूछने लगी। मैं भी उसकी तितली ढूँढ़ने लगा। तितली पत्तों के बीच छिपी दिखाई दी। चारों तरफ की आहट को शांत रहने का

इशारा करते और एकटक तितली की ओर देखते हुए मैंने अपने दोनों हाथ ऊपर उठाये।

"खन्...न्...न्..." आवाज़ हुई। तितली उड़ गयी।

मैंने देखा, मेरे एक पांव में खरोंच लगाता हुआ एक चमकता हुआ छुरा मिट्टी में जा धँसा है। सर ऊपर उठाते ही, बूढ़ा जिप्सी दाँत पीसता हुआ सामने खड़ा दिखाई दिया। उसने मुझे वैसे ही चुप खड़े रहने का इशारा किया। बेहले वाले जिप्सी ने छुरा उठा लिया था।

बच्ची की दृष्टि उन लोगों पर पड़ी। उसने उन लोगों से अपनी तोतली बोली में पूछा—"तुम क्या चाहते हो?"

"अपनी रोटी दे दो!" युवा जिप्सी ने हाथ फैला दिया।

बच्ची ने उसके हाथ में रोटी दे दी। फिर मेरी ओर देख उसने अपनी तितली ढूँढ़ देने के लिये मुझसे कहा।

जिप्सी दबे पांवों वृक्षों के आड़ ही आड़ बगीचे से निकल बाहर के रास्ते पर जा पहुँचे थे। वे आगे बढ़े। मैं उनकी ओर एकटक देख रहा था। एक बार उन्होंने पीछे फिर कर देखा। इस समय बूढ़े ने अपने हाथ में छुरा ले लिया था। अपनी ओर ताकता देख उसने छुरा तान कर मुझे धमकाया। दाँतों से कस कर उसने अपना निचला होंठ दबा रखा था। युवा जिप्सी उसका हाथ पकड़ कर आगे खींच ले चला।

मैं उनसे विपरीत दिशा की ओर आगे बढ़ा।

मेरा आगे का रास्ता धूल से भरा था। दूर के एक गांव के मकान की खपरैलों पर सूर्य की अन्तिम लाली चमक रही थी। किसी-किसी मकान की चिमनी से धुआँ भी निकल रहा था, जिसे देख कर मेरे मन में आया—

"वहां अवश्य ही लोग गरमागरम काफ़े तैयार कर रहे होंगे। रोटियों पर मक्खन लगाया जा रहा होगा। शायद आलू भी उबल रहा होगा। पर क्या मुझे भी कुछ मिलेगा? चलूँ देखूँ! यदि न मिला तो कहीं और आगे देखूंगा।"

यह 'कहीं और' कहां पर है, यह स्पष्ट रूप से मालूम नहीं था, पर संसार में कहीं न कहीं स्थान मिल ही जायगा, इतना विश्वास अवश्य था।

उस रास्ते पर जितना ही आगे बढ़ा, अपना भविष्य उतना ही अन्धकारमय दिखाई दिया।

खुले मैदान में आ जाने पर क्षितिज बहुत दूर पर दिखलाई देता, मेरे भीतर के नैराश्य के बादल घने बन जाते। करते और पांव मुश्किल से आगे बढ़ते। कभी-कभी क्षितिज की ओर एकटक देखता हुआ थोड़ी देर के लिये बैठ जाता, पर अधिक देर आराम नहीं कर पाता। दिल बोल उठता—

'आगे बढ़ो। विश्राम का अवसर नहीं।'

एमिल

जिन्हें बाध्य होकर सदा भटकना पड़ता है, ऐसे लक्ष्यहीन आवारों के लिये दिन का समय काटना कठिन नहीं होता ; पर ज्यों-ज्यों सन्ध्या होने लगती है, उनके चेहरे का रङ्ग फीका पड़ने लगता है। उस समय उन्हें ऐसा मालूम होने लगता है कि वे सचमुच ही समाज से अलग किये गये व्यक्ति हैं। इच्छा न रहने पर भी ऐसे आवारे अपने को कभी-कभी कुत्तों तक से बदतर समझने लगते हैं, क्योंकि जहां कुत्तों-जैसे प्राणियों को तो लोग अपने दरवाज़े बैठ रहने-भर को स्थान दे देते हैं, वहां उन्हें रात बिताने-भर की मिन्नत करने पर भी मनुष्य होने के नाते फटकार और दुत्कार ही सुननी पड़ती है।

इस प्रकार की दुत्कार सुनने का भय मन में जमे रहने के कारण मैंने एक घर का, सड़क की ओर का, जंगला बहुत डरते हुए धीरे-धीरे खटखटाया। कोई उत्तर नहीं मिला। फिर अगले घर का जङ्गला खटखटाते हुए कुछ कहना चाहता था ; पर गला ऐसा सूखता हुआ दिखलाई दिया कि शब्द उच्चारण करना कठिन हो रहा था। इस बार भीतर से आवाज़ आई—'कौन है ?'

'मैं ठहरने का स्थान चाहता हूं।'

'होटल आगे है।'

कई लोग ऐसे भी मिले जो ठहरने की मिन्नत करने पर मुझे 'शैतान के घर' जाने की सलाह देते।

इसी प्रकार मैं गांव के दूसरे किनारे जा निकला। मौसम भी अच्छा नहीं था। हवा तेज़ थी और सर्दी भी बढ़ती जा रही थी। भूख के मारे पेट में चूहे कूदने लगे थे। नींद के कारण आंखें भारी हो आयी थीं। एक बार इच्छा हुई कि रास्ते पर ही सो रहूँ। पर सर्दी और हवा का ही नहीं, रात में किसी मोटर-लारी के उधर से आ निकलने का भी भय था।

रास्ता छोड़ कर खेत की ओर आगे बढ़ा। उधर घास रखी जाने वाली एक झोपड़ी थी।

मैं सूखी घास की ढेरी पर उठना ही चाहता था कि उसी समय ऊपर से किसी की आवाज़ आई। मैं वह ज़बान नहीं जानता था। उस आदमी ने और कई ज़बानों में अपना प्रश्न दुहराया। अन्त में उसकी एक ज़बान मेरी परिचित निकल आई।

'तुम किस टापू से आ रहे हो?' उसने पूछा था।

'बहुत दूर के!' मैंने उत्तर दिया।

'इस दुनिया की सतह पर कोई भी टापू दूर पर नहीं बसा है!' उसने दृढ़ विश्वास के भाव से कहा।

'हिन्दुस्तान क्या यहां से दूर नहीं?'

'वह क्या दूर है? मैं तो जापान तक की पचीसों बार सैर कर आया हूं! वहां की लड़कियां अपने को सजाना खूब जानती हैं! पर यह अभी रहने दो! पहले यह बताओ, क्या तुम्हें भी इस गांव में कोई मछली नहीं मिली?'

'मछली कैसी?'

'जो अपने साथ सुलाती!'

'नहीं ।'

'हाँ, आज मौसम भी ख़राब है । अच्छे मौसम में वे हमेशा खुशी खुशी घर में ठहरा लेती हैं ; पर ख़राब मौसम रहने पर ऐसे देह झाड़ने लगती हैं मानों हमारे देखने-भर से ही वे गंदी हो गई हों । ऐसी ही तो पाजी, बेहूदी, मूर्ख होती हैं औरतें ! मेरा बस चले तो उन सबको भट्ठी में झुकवा दूँ । ख़ैर, आज की रात किसी तरह कट जाय, फिर उन्हें चखाऊँगा मज़ा ।'

'आप कहाँ तक जायँगे ?' मैंने पूछा ।

'मैं उत्तर की ओर जा रहा हूँ ! सीन किनारे के एक गांव में मेरी चाची रहती हैं, उन्हींके यहां जाने का इरादा है । और तुम ?'

'मैं भी उधर ही जाऊँगा ।'

'फिर तो तुम हमारे साथी हुए । दूर तक साथ रहना है, तो फिर हम लोग परिचित हो जायँ—मेरा नाम है एमिल बौरा ।'

'क्या कहा, बौराह ?' उसके नाम का हिन्दी-अर्थ मन में आ जाने के कारण मैं हँसने लगा ।

'मैं तुम्हारे देश की भी यात्रा कर चुका हूँ ।'

'तुम अभी आ कहां से रहे हो ?' मैंने पूछा ।

'मादागास्कर से । कल शाम को हमारा जहाज़ मार्सेई में आ कर लगा । मैं सीधे अपनी ग्रीक बीबी के यहां गया । हम लोगों ने खूब गुलछर्रे उड़ाये । आज तीसरे पहर जब मेरे पास कानी कौड़ी भी नहीं रही तो उसने अपने घर से मुझे निकाल दिया । पास में रेल-भाड़ा तक नहीं, इसीलिये आगे का सफ़र जैसे तैसे ही करूँगा ।'

'वैसे, करते क्या हो ?'

'सब कुछ । अभी दो-तीन साल से जहाज़ में ख़लासी का काम करता था । सारी दुनिया छान डाली । कितने ही मुल्कों की ज़बानों और

ज़नानों से वाक़िफ़ हो गया। पर अब समुद्र देखते देखते तबीयत ऐसी ऊब गयी है कि वहां एक मिनट भी मन नहीं लगता। अब तबीयत मादमोज़ेल (कुमारी) की तरफ़ जा रही है। अपने ही देश में कोई काम करूंगा और मौज से रहूंगा।'

वह आगे भी कुछ कहना चाहता था पर सर्दी के कारण मेरे दाँतों के कटकटाने की आवाज़ सुन कर रुक गया।

'तुम्हें सर्दी लग रही है ?' उसने पूछा, 'तुम भी कैसे निरे भोले बने हो। तुम्हें यह पहले ही कहना चाहिये था। मेरे सिरहाने रखा कम्बल तुम ले सकते हो।'

उसने अपना कम्बल मेरी ओर बढ़ाया। थोड़ी गरमी मिलने पर भूख की ज्वाला और भी तेज़ हो गयी। इस बार भी एमिल ने ही पूछा—

'और तुमने कुछ खाया है कि नहीं ?'

'नहीं।'

'तुम बड़े बेवकूफ़ आदमी हो! तब से अभी तक मांगा क्यों नहीं ? बड़े मूर्ख हो! जानते नहीं, मैं थोड़ी-बहुत रसद हमेशा साथ रखता हूं! बेवकूफ़! बेवकूफ़ कहीं के!'

उसने काग़ज़ में लपेटे मक्खन-चुपड़ी रोटियों के कुछ टुकड़े मेरी ओर बढ़ा दिये। थोड़ी देर में मेरे मुंह से कट-कट दांत बजने की आवाज़ के बदले रोटी चबाने की मधुर ध्वनि आने लगी।

'सब भकोस जाओ!' एमिल ने मुझे हुक्म देते हुए कहा—'रसद बचा रखने की ज़रूरत नहीं! कल और नई मिल जायगी।'

बाहर से साँय-साँय—हवा की आवाज़ आ रही थी, पर अब मुझे उसकी परवा नहीं थी। नींद आने में अब कोई बाधा नहीं रह गई थी।

अगले दिन सबेरे नींद खुलते ही एमिल अपना रात का बचा किस्सा सुनाने लगा—

देखो, अभी पिछले साल की ही बात लो, इन्हीं दिनों में एक ऐसे महल में रहा करता था जिसकी सफ़ाई और देखरेख करने के लिये ही दस नौकर रक्खे गये थे।'

'दस नौकर? यह कहां?' मैंने पूछा।

'अपनी टिप्पस जमाने के लिये उस समय मैं दक्षिणी फ्रांस के रिवियेरा में जा पहुँचा था। शाम को एक घड़ी वाले के घर धावा बोलने का विचार पक्का हो चुका था। अगर भाग्य से उसी दिन पेरिस की एक धनाढ्य औरत न मिल गयी होती तो शायद आज जेल की हवा खाता होता। वह औरत वहां नहाने के लिये आई थी।

'आ......वह बड़े ही मज़े की औरत थी। बिलकुल रुई के गालों सी गुलगुली। मैं समुद्र-किनारे घूमने निकला था, देखा कि वह घुटने-भर पानी में पैर पटक रही है; मैंने किनारे से ही छलांग मारी और पानी के नीचे-नीचे पचास गज़ पर जा निकला। वह हँसने लगी। मैं उसके पास गया और उसे तैरना सिखलाने लगा। नहाने के बाद उसने कहा—'हम लोग साथ ही खाना खाने चलें।' खाते समय उसने कहा—'तू कैसा सुन्दर जवान है। तेरा शरीर भी कैसा गठीला है और मेरी उम्र भी अधिक नहीं। मेरी शादी हो चुकी है। पर पति हमेशा व्यापार के लिये यात्रा किया करता है। अकेले मेरा मन नहीं लगता। तुझे मैं अपना मोटर-ड्राइवर बना कर रखूँगी, मेरा महल भी पेरिस में सीन-किनारे बड़ा सुन्दर है।'......

'संक्षेप में यही कि मैं उसके साथ रहने लगा और वह मेरी बीबी बन गयी। जीवनमें जितना सुख भोगा जा सकता है, उसमें कुछ बाकी नहीं रहा।'

मैंने मन ही मन कहा—सचमुच तू 'झूठ का खज़ाना' नाम की एक अच्छी पुस्तक लिख सकता है।

एमिल का किस्सा जारी रहा— 'उस औरत के घर कभी केवल एक बात की थी। वह सींक सी पतली और मुझसे बहुत अधिक उम्र की थी। साथ ही, पाउडर इतना लगाती थी कि उसके पास नाक दबा कर बैठे-बैठे दम घुटने लगता था। मन वहां नहीं लग रहा था। इसीलिये उसकी एक जवान नौकरानी से दोस्ती कर ली। मालकिन ने यह तीसरे ही दिन ताड़ लिया और मुझे अपने घर से निकाल दिया। मैं हाथ हिलाता हुआ वहाँ से रास्ता नाप निकल आया।'

'ख़ाली हाथ?' मैंने पूछा।

'ख़ाली हाथ ही बहुत था। पहले से मालूम रहता तो कुछ किया भी जा सकता था, पर जवाब देने के वक्त उसका चेहरा ऐसा तमतमाया हुआ था कि मुझे भय होने लगा—कहीं झूठमूठ चोरी की तोहमत लगा कर पुलिस के हवाले न कर दे।'

'बड़ा अच्छा मौका हाथ से निकल जाने दिया।'

'हाँ, ज़रा उस नौकरानी ने असावधानी से बेवकूफी कर डाली। नहीं, चालाकी तो मुझमें इतनी है कि उस औरत-जैसी कितनी को सरे-बाज़ार बेच आ सकता हूँ।'

'फिर यों आवारे-जैसे क्यों मारे-मारे फिरते हो?' मैंने उसे टोका।

'हमेशा ऐसा मारा-मारा थोड़े ही फिरूँगा! घात लगाये रहता हूँ; रिवियेरा में जैसी ख़िपरा जम गयी थी वैसे ही मौके की ताक में हूँ। नहीं तो काम करते-करते अपना दिमाग़ कुंद कर लेना—यह मुझे पसन्द नहीं।'

जब से मैंने एमिल को देखा, मुझे ऐसा जान पड़ने लगा मानो साधारण आदमियों से भिन्न वह कोई विचित्र प्रकार का आदमी है और इसीलिए उसकी ओर अपना ध्यान खिंचने से भी मैं अपने को नहीं

रोक पा रहा था। मैं उसे और अधिक निकट से देखने तथा समझने की चेष्टा करना चाहता था।

उसके सामने कोई भी क्यों न बैठा हो, वह अपनी बातों की ऐसी झड़ी लगाता कि उनका तांता टूटने पर ही नहीं आता। अगर उसकी बातें सुनने वाले ऊब कर सामने से हट भी जाते, तो भी उसके बोलने का सिलसिला जारी ही रहता। कितनी ही बार मैंने उसे कुत्तों तथा गाड़ी में जुते घोड़ों से बातें करते देखा था! उसके भीतर कभी न ख़ाली होने वाली बातों की एक खान थी और स्वभाव में इस प्रकार की व्याकुलता थी जो उसे एक क्षण भी स्थिर नहीं बैठने देती। इन्हीं दोनों बातों का यह परिणाम था कि बोलते रहने में ही उसे एक प्रकार का मज़ा सा मिलता था तथा इसी से भीतर-ही-भीतर उसे सन्तोष सा होता था।

उसकी बातें सदा किसी औरत से सम्बन्ध रखनेवाली हुआ करतीं। ये बातें वह पूरे उस्ताद की तरह कहा करता और वह भी इस ख़ूबी से कि यदि किसी मंडली में कोई दूसरी चर्चा छिड़ी रहती, तो उस मंडली का ध्यान तुरन्त ही अपनी ओर बदल लेने में वह प्राय: सफल ही हो जाया करता। बातों का सार सदा एक ही तरह का रहता—और वह यह कि एमिल का जीवन बिना किसी कठिनाई और रुकावट के अब तक बीतता आया है और वह भी औरतों की उस पर कृपादृष्टि रहने के कारण; मानों उसके भीतर कोई ऐसी चीज़ थी जो संसार भर की सारी औरतों को बरबस आकर्षित कर सकती थी और उसके द्वारा एमिल के मार्ग की सारी बाधाएँ नष्ट-भ्रष्ट करके उसके लिये सब तरह की सुविधाएँ जुटा देने में समर्थ थी। शायद वह अपने को भीतर-ही-भीतर औरतों को फँसाने में सिद्धहस्त जादूगर मानने लगा था।

फिर भी उसकी बातों से यह नहीं प्रकट होता था कि औरतों के

लिये उसके दिल में कोई इज्ज़त है ; वह उनके विषय में बड़े ही बुरे तथा घृणित शब्दों का व्यवहार किया करता और ऐसा दिखलाता मानों उनके रोएँ-रोएं से वह भली भाँति परिचित है, और उसके लिये उनमें ढूँढ़ने की कोई विशेष बात ही नहीं रह गई।

एक अच्छी बात एमिल में यह थी कि वह कैसी भी परिस्थिति में अपने-आप पर खीझता नहीं था। अगले दिन ही मैं उससे भली भाँति परिचित हो गया। पर उस दिन हमें फिर एक खलिहान वाले झोपड़े में रात बितानी पड़ी। नींद टूटते ही मैंने कहा—

'ऐसे कष्ट के साथ मैंने और कभी रात नहीं बिताई।'

एमिल मुझे डांटने लगा—

'जब अपने ऊपर यों खीझना था तो फिर ऐसे जीवन की ओर पांव ही क्यों रखा ?'

उसके लिये इस प्रकार की यात्रा करना बिलकुल स्वाभाविक सी बात हो गई थी, पर मैं हिम्मत हारने लगा था। वह मेरे मन का भाव ताड़ गया। उसने कहा—

'मैं जहां तक तुम्हारे चेहरे से अन्दाज़ लगा सका हूँ, तुम्हारा कोई निश्चित कार्यक्रम नहीं—नहीं न ?—यह मैं पहले से ही जानता था। तो कुछ दिन मेरे नेतृत्व में यात्रा करो ; बहुत सी बातें सीख जाओगे। क्यों ?'

'अच्छा.......'

'हिचकने की कोई बात नहीं। बड़ा ही अच्छा विचार है। अब यहां से उत्तर के रास्ते में बड़ा शहर केवल एक ही आयगा—लियों। हम लोग उसे बांये-बांये से ही पार कर जायेंगे और अगर मन में आयगा तो उसकी एक झांकी भी कर लेंगे। उसमें कोई पाप तो लगने का नहीं।

'ख़ैर, तुम इस रास्ते से परिचित नहीं। फिर मेरा प्रस्ताव सुनो। यहाँ से हम लोग लियों, डिजों होते हुए सीन नदी तक चलें, फिर आगे देखा जायगा। मेरा यह प्रस्ताव तुम्हें मंज़ूर है न?'

मैंने स्वीकृति-सूचक सिर हिलाया।

'हिचक के साथ नहीं, दृढ़तापूर्वक कहो—'हाँ' एमिल का प्रस्ताव उस्तादी से ख़ाली नहीं होता। हम लोगों ने जो रास्ता चुना है वह दो कारणों से। सड़क पर यदि कोई मोटर वाला हमें चढ़ा ले तो बड़ा ही अच्छा है; यदि उसने साथ नहीं लिया तो नदी में बहुत से स्टीमर चला करते हैं, वे ही चढ़ा लेंगे। पैदल उतनी दूर का रास्ता केवल बैल या ऊँट ही पार कर सकते हैं, आदमियों के बस का नहीं; क्यों? मुझे उतनी दूर पैदल चलने में थकावट तो नहीं, पर शरम आयगी। जब ऊँट की तरह सारा रास्ता पैदल ही पार करना था तो फिर आदमी का चोला ही क्यों धारण किया?

'और दूसरी एक बात यह अच्छी है कि इस रास्ते पर के गांवों से मैं परिचित हूं; किसान भोले-भाले तथा बेवक़ूफ़ होते ही हैं और उनकी औरतें तथा लड़कियां आम तौर पर तन्दुरुस्त और ख़ूबसूरत होती हैं; ख़ासकर डिजों के इलाके में सब कुछ ऐसा ही है। वहाँ मेरी एक प्रेयसी भी रहती है, उससे भी तुम्हें मिलाऊँगा। ऐसी प्रेयसियां वहां हज़ारों मिलती हैं, तुम भी एक ढूँढ़ लेना।'

जब कभी हमें खलिहान में रात बितानी पड़ती, उसके दूसरे दिन नींद टूटने पर एमिल कहा करता—

'मुझे भूख लग आई है। अगला गांव यहाँ से दूर नहीं; चलो वहाँ चलें! इस गांव में कुछ नहीं मिलने का, इसका नाम हम लोग दे दें—'कुत्तों का घर।'

गाँव निकट आने पर वह कभी भी चुपचाप आगे नहीं बढ़ता था। जब कभी किसी औरत को सामने से आते देखता, अपने होंठ ज़रूरत से ज्यादा सिकोड़ सीटी देता हुआ गंदे गाने गाने लगता। औरतों की ओर आँखें फाड़-फाड़ कर घूरता मानो उनसे छेड़-छाड़ करना चाहता हो ; पर नहीं, जब वे बग़ल से गुज़रने लगतीं तो रास्ते के बिलकुल किनारे हट आता और औरत के कुछ दूर चले जाने पर उसके बारे में नुकता-चीनी करने लगता। एक बार उसने एक औरत को दिखलाते हुए कहा—

'देखो न ! यह औरत कैसी मटक-मटक कर चलती है। मालूम पड़ता है, जैसे अपने सामने किसी को कुछ गिनती ही नहीं, पर साथ ही अपने मन-ही-मन यह भी भली भाँति जानती है कि उसे पूछने वाला सारी दुनिया छान आने पर भी कोई पुरुष नहीं मिलेगा। चटक-मटक यदि किसी को सीखनी हो तो ऐसी ही औरतों से सीखी जा सकती है। ऐसी औरतों के लिये हमारे कोष में उपयुक्त शब्द है—ठंढी चा।'

एमिल का गाँव वालों से भोजन माँगने का भी ढंग निराला था। एक बार उसने एक स्त्री के पास जाकर कहा—

'दयालु माँ ! रोटी का एक टुकड़ा दीजिये। अपनी काकी के पास जा रहा हूँ।'

'मैं तेरा या तेरी काकी का कुछ खाये बैठी हूँ?' उस औरत ने कहा। फिर मुझसे कहने लगी—'ऐसे-ऐसे चोर रिश्ता जोड़ जोड़ कर घर में घुसने का रास्ता देखने आया करते हैं।'

एमिल आँखें बड़ी-बड़ी निकाल कर कहने लगा—

'मैं तुझे ठोक-पीट कर तेरे साथ रिश्ता जोड़ूँगा।'

'ऐं,—ज़रा इनकी बातें तो सुनो ! रोटी माँगने आये हो या मार-पीट करने ?'

इतना कहती हुई वह औरत घर के भीतर चली गई। उसके जाते-जाते एमिल ने उससे कहा—

'तू मेरी चचेरी काकी लगेगी, इसीलिये इतनी बातें बना कर रोटी देगी।'

मुझे यह डर लग रहा था कि वह स्त्री स्वयं डंडा लेकर निकलेगी या किसी पुरुष को बुलाती आयगी जो हम दोनों की ख़बर लेगा। मैंने एमिल के कान में धीरे से कहा—

'चलो, भाग निकलें।'

मेरा भयभीत चेहरा देख एमिल ज़ोरों से हँसने लगा। इसी समय वह औरत काठ की एक बड़ी तश्तरी में चाय से भरा हुआ एक बर्तन, दो प्याले और मक्खन-चुपड़ी हुई रोटियों के कई टुकड़े लिये बाहर निकली और मेरी ओर देखती हुई बोली—

'तुम्हारा साथी तो रिश्ता जोड़ना ख़ूब जानता है !'

भोजन कर हम लोग आगे बढ़े। थोड़ा दूर निकल जाने पर मैंने कहा—

'मैं तो समझने लगा था कि रोटी के बदले हमें डंडे मिलेंगे।'

'तुम क्या समझते हो कि वह दया करके हमें कुछ देती ? यदि हमारी हालत पर उसे तरस होता तो ऐसी सूखी रोटी, जो उसके किसी काम न आती और जिसे अपने कुत्ते तक को नहीं देती, हमारे आगे फेंक जाती। पर तुमने तो देखा—रोटियों में मक्खन लगा था। यह हम लोगों पर दया आने के कारण नहीं, बल्कि हमसे डर जाने के कारण हुआ। आख़िर हम भी तो आदमी ठहरे। हमसे उन्हें डर रहता है कि यदि वे हमें ख़ाली हाथ और नाराज़ होकर लौट जाने देंगी तो उससे उनका अपना निज का ही भला नहीं। घर में चोरी हो जाने अथवा

डाका पड़ने का भय उन्हें और भी अधिक सताता रहता है, इसीलिये सूखी रोटी ही नहीं, मक्खन और काफ़ी भी दिया।'

'लेकिन यदि उसके घर में कोई पुरुष होता तो?' मैंने पूछा।

'तो क्या कर लेता? हम-जैसे लोगों से सभी डरते हैं; केवल हम लोग अपना मूल्य आप नहीं समझते। डांट कर माँगने से अगर कुछ मिल सकता है तो दाँत दिखाने से क्या फ़ायदा?'

मैं एमिल के चेहरे की ओर ध्यान-पूर्वक देखने लगा। उसने सर हिलाते हुए कहा—

'हाँ, हाँ, हमें यह कभी भी नहीं भूलना चाहिये कि हम भी आदमी हैं।'

जब कभी हम किसी गांव से बाहर निकल आते, सड़क बिलकुल सीधी तथा रास्ता बहुत दूर तक दिखाई देता; मालूम पड़ता मानो उस सड़क का कहीं अन्त ही नहीं। सामने जितनी दूर तक निगाह दौड़ाई जा सकती, दौड़ा कर एमिल कहा करता—

'आख़िर हमें जल्दी ही क्या पड़ी है? पैदल चल कर उतनी दूर का रास्ता तो पार करना नहीं है, फिर फ़िज़ूल पांव थकाने से क्या फ़ायदा? यहां बैठ कर ठीक मौके देखते रहें; यदि किसी मोटरवाले ने चढ़ा लिया तो जल्दी ही सीन-किनारे पहुँच जायँगे।'

'पर जब कोई चढ़ा ले तब तो?'

'इतनी मोटरें आती-जाती हैं, कोई-न-कोई तो चढ़ा ही लेगी, और यदि किसी मनहूस ने न भी चढ़ाया तो भी हमारा इसमें घाटा ही क्या है? दुनिया में हम चाहे जहां भी रह सकते हैं, हमारे लिये सब जगहें बराबर हैं। काकी के यहाँ ही कौन सी राजगद्दी खाली पड़ी है कि वहाँ पहुँचने के लिये हम उतावले बनें।'

पर ऐसा बहुत कम ही होता था कि हमें कोई मोटर या लारी वाला चढ़ा न लेता। एमिल ड्राइवरों की ओर इस भाँति देखता मानो उनसे उसकी बहुत दिनों की पुरानी जान-पहचान हो। वह कहता—

'चाचा! तुम कहाँ जा रहे हो? लियौं, डिजौं? हाँ, वहाँ मेरी भी एक नानी रहा करती है। बहुत दिनों से उसे नहीं देखा वह। अकेली और विधवा है, पर उसके यहाँ ठहरने पर वह खिलाती-पिलाती बड़ी मुस्तैदी से है। हाँ, ज़रा उसकी नाक बेतरह ऊँची है। अगर तुम कृपा न दिखलाओगे तो फिर आज रात को भी मारे-मारे फिरना होगा ना चाचा?.........'

एमिल के इस प्रकार बोलने का ढङ्ग ही निराला था। चाहे जिस शहर का नाम कोई लेता, सब जगह उसका कोई न कोई रिश्तेदार निकल आता। अपने रिश्तेदारों का वर्णन भी वह इस रोचक ढङ्ग से करता कि उसे बीच में टोकना किसी को अच्छा न लगता।

जिस दिन उसके मन में उमंग रहती उस दिन शाम को कहा करता—

'डरने की कोई बात नहीं है। आज की रात पिछली रात-जैसी नहीं होगी। आज हम आराम से और कम्बल ओढ़ कर सोएँगे।'

अचरज की बात तो यह थी कि सचमुच ही हमें उस दिन अवश्य ही वैसी जगह मिल जाया करती।

एमिल के साथ की यात्रा के कई दिन इसी भाँति आनन्दपूर्वक कटे। एक दिन हम लोगों ने एक रोटी वाले के घर में डेरा डाला। सोने का स्थान दिखलाने के लिये एक जवान लड़की हमारे साथ चली। एमिल उससे कहने लगा—

'आप बहुत ही सुन्दर हैं। आपके भूरे बाल तो गजब ढाते हैं।'

उत्तर में लड़की केवल थोड़ा मुसकराई और वहाँ से चली गई। कुछ देर तक हम लोग चुपचाप बिछौने पर लेटे रहे। फिर एमिल कहने लगा—

'यह लड़की असल में अपनी सुन्दरता के कारण किसी को पागल बना दे सकती है। तुम्हें कैसी लगी?'

मैंने एमिल को चिढ़ाने के ख्याल से कहा—

'तुम तो अलौकिक सुन्दरियों की बातें किया करते थे! क्या यहीं पर तुम्हारी सुन्दरता की भावना सीमा पार कर गई?'

उत्तर में एमिल ने भी चिढ़ कर कहा—

जब कभी अपनी जिन्दगी में उतनी लड़कियों से तुम्हारी जान-पहचान और मुलाकात हो जाय जितनी से मैंने की है, तब कहीं मुझसे उनके विषय में बातें करना। तुम इस मामले में अभी बिलकुल नासमझ बच्चे हो।'

उसी दिन से एमिल के साथ मेरी खटपट शुरू हो गई।

पर उससे आगे की यात्रा में कोई बाधा नहीं पहुँची। हमारी यात्रा की यही परिपाटी बन गयी थी कि जब कभी मोटर वाले किसी स्थान पर उतार देते तो आगे पैदल चलने के बजाय हम उसी स्थान पर रुके रहते और पीछे से जो कोई भी मोटर आती उसे रुकने के लिये इशारा करते। यदि मोटर वाला चढ़ा लेता तब तो ठीक ही, पर यदि उसने हमें न चढ़ाया अथवा गाड़ी बिलकुल खड़ी ही नहीं की तो एमिल उसकी ओर देख कर उसे भद्दी-भद्दी गालियाँ देने लगता। एक बार मैंने उससे कहा भी कि आखिर मोटर वाले हमें चढ़ा लेते हैं तो इसमें उनकी कृपा ही तो है; पर यदि नहीं चढ़ा लेते तो उन्हें गाली देने का हमें हक ही क्या है?'

इसके उत्तर में एमिल ने कहा—

'इन मोटर वालों को ही क्या हक है कि वे गाड़ी में बैठे-बैठे धूल उड़ाते चलें जब कि हमारे पास कोई गाड़ी नहीं है ?'

एमिल का यह तर्क मेरी समझ में नहीं आया, पर मैंने इस विषय में उससे अधिक जिरह भी नहीं की।

कई सप्ताह तक यात्रा करते रहने के बाद हम लोग सीन नदी के किनारे के उस गांव में पहुँचे। नदी बिलकुल शांत थी। उसके किनारे के वृक्ष भी मूक हो खड़े थे। नीले आकाश में शरद ऋतु के हलके बादल पनीर के रङ्ग का छाता लगाये चहलकदमी करते दिखाई दिये। सारी प्रकृति स्वप्नाविष्ट थी।

भय और अकेलापन दोनों ही मुझसे बहुत दूर पर जा खड़े हुए। अब वे मुझे गिरफ्तार नहीं कर सकते थे। फ्रेंच ज़बान अब कानों के पर्दे पर व्यर्थ आघात करने वाली नहीं रही। उसका बहुत सा रस छन-छन कर भीतर जा पहुँचता और कभी-कभी वहां एक अजीब तरह की गुदगुदी सी पैदा हो जाती। कई तरह के स्रोत, जिनका मुँह अब तक बन्द था, इस समय उस गुदगुदी से ही खुलने लगे थे।

नदी किनारे लेटा-लेटा घंटों स्वप्न देखता रहा। आकाश की तरह क्षितिज भी मेरी ही रक्षा के लिये तत्पर दिखाई दिया। बहुत दूर तक मैदान ही मैदान! सब शांत! कभी-कभी एक पत्ता आकर मेरी छाती पर लोटने लगता।

आदमियों की आवाज़ बिरले ही सुनाई पड़ती। उस रास्ते से जानेवाला कोई किसान अपने मुँह में लम्बी पाइप लटकाये यदि कभी सामने आ निकलता तो मेरी ओर देख कर मुसकराता हुआ मुझे 'बोंझूर' कह कर नमस्कार कर लेता। कभी कभी उधर से किसान-कुमारियां

जाती दिखाई देतीं। उनकी आंखें चमकती हुई और चञ्चलता से भरी होतीं। वे सर ऊँचा करके अपना खुला सीना फुला कर चलती थीं। उनकी चाल और उनका रूप मेरे लिये अत्यन्त आकर्षक था। उनमें से किसी को पहले कभी न देखने पर भी मैं उन्हें अपरिचित मानने के लिये तैयार नहीं था।

एमिल द्वारा जगाये जाने पर मैंने उससे पूछा—

'आख़िर हम आ कहाँ पहुँचे ?'

नदी किनारे पर के गांव की ओर देखते हुए उसने उत्तर दिया—

'फ़्राँस के हृदय में !'

सीन-किनारे

वह मेरे सामने खड़ी थी। मुझसे छोटी। उसकी दृष्टि मेरे चेहरे पर थी। पता नहीं, यह कम रोशनी रहने के कारण था अथवा अन्य किसी कारण, कि मुझे उसकी आँखें मखमल जैसी नरम और स्निग्ध दिखायी पड़ीं। उनका रंग काला था। और लड़कियों से तुलना करने पर यह स्पष्ट हो जाता था कि उसकी आँखें युवकों को लुभा लेने में वैसी कुशल नहीं होंगी। बाल काले और सुनहले के बीच के रंग के थे। गालों पर बहुत कम पाउडर लगा था जिससे उनका स्वाभाविक गुलाबी रङ्ग छिप नहीं पाया था। पोशाक ग्रामीण थी।

'मेरी बहन आनेत्त,' उससे परिचय कराते हुए एमिल ने कहा—'काकी की एकलौती सन्तान!'

उसका ललाट चूम कर वह अपनी काकी से बातें करने लगा। संकोची स्वभाव रहने के कारण आनेत्त का मेरे जैसे अपरिचित नवयुवक से बातें करने का साहस नहीं हो रहा था। पर इस समय वैसा करने के लिये बाध्य होने के कारण निरपराध हरिणी की भांति चारों तरफ दृष्टि फेरने लगी थी।

उसे भली भांति देखने का मेरे लिये यह पहला ही मौका था। फिर भी मैं मन ही मन सोच रहा था कि फ्रेंच रमणियों का सौन्दर्य मापने

का अगर उसे ही पैमाना बना लूँ तो कहीं बहुत अधिक गलती तो नहीं होगी ?

कन्धे उसके ढके थे। यूरोपीय चित्रकारों की दृष्टि से देखने पर शायद उसे पुरानी रोमन टाइप की श्रेणी में रखा जा सकता था। उसकी ठुड्डी पतली और ललाट गोल था। चेहरे की विशेषता यह थी कि उसके मन का प्रत्येक भाव उस पर तुरंत ही व्यक्त हो जाता था।

मुझे अवाक हो अपनी ओर ताकते देख शायद वह कुछ कहना चाहती थी। पर शर्म के मारे उसका मुँह आधा ही खुला रह गया। मुसकराहट द्वारा लज्जा को ढक रखने की कला में वह प्रवीण दिखाई दी।

'मुझसे डर रहे हैं ?' आखिर उसने प्रश्न किया।

उत्तर में मैं सिर्फ मुसकरा कर रह गया।

'मैं तो काटती नहीं !' उसने विश्वास दिलाया।

'यह मैं अनुमान कर सकता हूँ।' धीमी आवाज़ में मेरे मुँह से निकला।

'फिर इस प्रकार मुझे ताक क्यों रहे हैं ? काठ की भांति इस तरह हमें खड़ा देख लोग क्या कहेंगे ?'

मैं एमिल की ओर देखने लगा। वह अपनी काकी को मुझसे परिचित होने के दिन का वृत्तांत सुना रहा था। उसके पास की दो कुरसियाँ खाली थीं। मैं उधर ही जाने लगा।

आनेत का चेहरा लाल हो आया था। यह क्रोध के कारण था अथवा लज्जा के कारण, यह मैं ठीक-ठीक समझ नहीं सका। हम लोग आमने-सामने बैठ गये। उसकी मां ने हम लोगों की ओर देखते हुए पूछा—

'तुम लोग परिचित हो गये ?'

'मुझे ये कुलिरात समझते हैं,' आनेत्त ने उत्तर दिया—'इसीलिये शायद मेरे साथ बातें नहीं करते।'

इस इलाके का प्राकृतिक दृश्य जैसा आडम्बर-शून्य था उसी प्रकार एमिल की चाची का स्वभाव भी सरल था। कपड़े वे इस तरह पहनतीं कि उनकी उम्र वस्तुतः जितनी थी उससे ज्यादा ही दिखाई देती। हाव-भाव में सांसारिकता की अपेक्षा धार्मिक रुचि अधिक स्पष्ट थी।

उनके पति महासमर के समय वरदों के लड़ाई में मारे गये थे। फ्रेंच सरकार से उन्हें जो आजीविका मिलती थी उसीसे वे अपना तथा अपनी लड़की का खर्च चलाती थीं। सीधा-सादा जीवन था। किसी बात की कमी नहीं होती थी। और संयोगवश कभी किसी चीज़ की कमी पड़ी भी तो वह उन्हें खटकती नहीं थी।

समय उनका आनेत्त और उसकी सखियों को सजाते रहने में ही जाता। उनके लिये वे ऊन की तरह तरह के किस्म की पोशाक बनाया करतीं, और फूलों के मौसम में दोनों वक्त दुष्प्राप्य फूल चुन चुन कर उनके गुच्छे बना बना उन्हें उपहार दिया करतीं।

घर में अतिथियों के आकर ठहरने पर उन्हें बड़ी खुशी होती थी। मुझे भी, जब तक मेरी खुशी हो, अपने घर में रहने की उन्होंने इजाज़त दे दी थी। धार्मिक मामलों में दान आदि करने के लिये उनके पास पैसे नहीं बचते थे, इसीलिये मुर्गियों के पालने और अण्डे बेचने का वे व्यवसाय आरम्भ करना चाहती थीं।

'न हो, तुम अण्डे बेच लाया करना!' मुसकराते हुए मुझसे कहा—'तुम्हारे मुँह से फ्रेंच सुन कर लोग जरूरत न रहने पर भी अण्डे खरीद ले जाया करेंगे।

मेरे मुंह से टूटी-फूटी फ्रेंच सुन कर उन्हें सचमुच ही खुशी होती थी। फ्रेंच सिखाने के इरादे से वे मुझे सरल भाषा में पेरिस और वहां की लड़कियों के बारे में हँसाने वाली कहानियां सुनाया करतीं।

मैं ज्यों-ज्यों अधिकाधिक तादाद में फ्रेंच शब्द समझता जाता था, त्यों-त्यों मेरे परिचितों का भी दायरा बढ़ता जा रहा था। अपनी उम्र के लोगों से परिचय घनिष्ट होने लगा। एमिल की बातों का भी अब सारांश नहीं, बल्कि उसके शब्दों का वास्तविक अर्थ तक समझने लगा था।

फ्रेंच लोगों के बीच रहने का यह मेरे लिये पहला ही मौका था। पहली दृष्टि में ये बड़े आमोदप्रिय और बहुत कुछ लापरवाह तबीयत के दिखाई दिये। वे अव्वल दर्जे के मिलनसार भी जँचे। पर साथ ही उनकी यह ख़ूबी भी स्पष्ट हो गयी कि उनके जीवन में सबसे अधिक और सबसे ऊँचा स्थान औरतें ही लेती हैं। एक क्षण के लिये मुझे यह भी सन्देह होने लगा कि कहीं फ्रांस की औरतें जादू तो नहीं जानतीं? नहीं तो भला पुरुषों को इस प्रकार मन्त्र-मुग्ध करके रख पाना उनके लिये क्योंकर सम्भव हो पाता है?

वहां की औरतों को मैं बड़े ग़ौर से देखने लगा। कुछ दूर तक तो यों ही वहां का समाज इसकी इजाज़त देता था, पर जब मेरी दृष्टि किसी पर एकटक हो जाती और बड़ी देर तक मैं उसी भांति उसे ताकता रहता तो वह नाराज़ हो जाती। और मैं शब्दों द्वारा नम्र बन जाने की कला से अब भी अनभिज्ञ था, यहां तक कि उसके यह पूछने पर भी कि—'मेरे सौन्दर्य पर तुम्हारा इतना अविश्वास?'—मैं उसे कोई समुचित उत्तर न दे पाता।

ख़ूब भली-भांति देख लेने पर मैं अपने आप से प्रश्न करता—

'और जिस फ्रांस ने क्रांति की थी, वह कहां गया ?' वह तो मुझे कहीं भी दिखाई नहीं दिया। कभी कभी अपनी दृष्टि पर ही अविश्वास करके कहता—'यह सम्भव नहीं ! मैं भूल कर रहा हूँ। इनके भीतर गहरे तह में और भी कुछ अवश्य ही छिपा है। मैं उसे देख नहीं पा रहा हूँ।'

जब इसकी चर्चा मैंने एमिल से की, तो वह हँस पड़ा और सामने रखी अंगूर की शराब का ग्लास खाली करने के लिये मुझसे कहा।

'तुम तो जानते हो, मैं पीता नहीं।' मैंने उत्तर दिया।

'तुम सचमुच ही बड़े मनहूस हो ! अगर फ्रेंच तौर-तरीका सीखना चाहते हो, तो यह तुम्हारे लिये अनिवार्य है।'

'दरअसल ?' मैंने प्रश्न किया।

'अजी, हमारी जाति जरमन लोगों जैसी बेतुकी दार्शनिकों की जाति नहीं ! हम कलाकार हैं, हमारी जाति ही कलाकारों की जाति है। अधिक विश्लेषण करने और गहरे उतरने पर हमें भय लगता है कि हमारे सामने का सारा सौन्दर्य ही खिसक जायगा ; इसलिये हम कभी उस बखेड़े में नहीं पड़ना चाहते ! देखो, अब तुम क्वाड्रिल नृत्य सीखना शुरू करो। यह नाच बहुत आसान है। फिर देखना, हमारे जीवन में कैसी मस्ती और मौज है ! यह नाच तो तुम्हें आनेत्त ही सिखला देगी।'

जब मैं आनेत्त की ओर ताकता या उससे फ्रेंच पाठ पढ़ता, अथवा क्वाड्रिल नृत्य सीखता तो एमिल अक्सर जरमन ज़बान में गुनगुनाया करता—

'पारी, पारी, वो दि मेडल सिन्द सो शोन !'
(सुन्दरी पेरिस की अप्सरायें हैं कुमारी)

'किस बेतुकी ज़बान में तुम यह गुनगुनाया करते हो ?' यह प्रश्न जब मैं उससे कर बैठता तो वह उत्तर देता—

'अजी, यहां पर अगर मैं फ्रेंच में गुनगुनाऊँ तो मेरी क़द्र ही कौन करेगा ? मेरी कुछ विशेषता तो ज़रूर ही रहनी चाहिये !'

उसकी दलील मैं ठीक ठीक समझ नहीं पाता, तब पूछता—

'आख़िर उस विशेषता की आवश्यकता ही क्या है ?'

'इतना भी नहीं समझ सके तो तुमने नाहक़ ही इस दुनिया में जन्म लिया ।' वह उत्तर देता ।

'फिर भी ?'

'बिना पेरिस की झांकी लगाये तुम आदमी बन ही नहीं सकते ! यहां अपनी जिन्दगी तुम फ़िज़ूल ही बरबाद कर रहे हो ।'

'और तुम भी तो यहीं हो ?'

'मेरी बात छोड़ दो ! मैंने एक बहुत भारी ग़लती की है, उसीका फल अभी कुछ दिन और मुझे भोगना पड़ेगा !'

'वह ग़लती कौन सी है ?'

'तुम्हें बता दूँ ? अच्छा सीख रखो । रुपये और लड़कियां—दोनों में से अगर सिर्फ़ एक को चुनने का कभी मौका आये, तो हमेशा रुपये को ही चुनना ! हम फ्रेंच लोग ऐसा कर नहीं पाते, यही हमारी सबसे बड़ी ग़लती होती है । हम लोग हिसाब करना नहीं जानते । भाव के ही पीछे ढुलक पड़ते हैं । हमारी बुद्धि खुलती है तब, जब हमारी जवानी ढलने लगती है । सूद के बल मौज उड़ाने के लिये, बैंक में रुपया जमा करने की कोशिश हमारी तब शुरू होती है । हम अपने इस आदर्श में सफल भी होते हैं, पर उस समय तक काफ़ी देर हो जाती है । मौज करने की उम्र ही बीत जाती है ।'

वह और भी आगे कुछ कहना चाहता था, पर इसी समय सामने से

एक जवान लड़की को गुज़रते देख होंठ सिकोड़ कर सीटी देने लगा। पास आने पर उसने छेड़ा—

'आप तो गज़ब की सुन्दर हैं। आपकी तलवार सी भौंहों ने मुझे दरअसल क़त्ल कर डाला।'

लड़की हमारी ओर एक नज़र डाल अपने बतीसों दाँत दिखाती वहां से चली गयी। एमिल मुझसे कहने लगा—

'तुम्हारा क्या ख़याल है? गांव की यह सुन्दरता भी किसीको पागल बना दे सकती है! पर फिर भी यह पेरिसियन सुन्दरी का मुकाबला नहीं कर सकती! इसके शरीर पर ढङ्ग के कपड़े भी नहीं! सारे शरीर को बिलकुल जेलख़ाना बना रखा है! किसी तरफ़ से भी झांकी लगाने की सम्भावना नहीं! तभी तो कहते हैं—गांव की कुमारियां बड़ी असभ्य होती हैं! तुम्हें यह बात खटकी नहीं?'

'मैंने तो कभी पेरिस देखा ही नहीं, फिर तुलना ही कैसे कर सकता हूँ।'

'बेवकूफ़! पेरिस की सब कुमारियां ही अप्सराओं को मात करती हैं! बेवकूफ़! बेवकूफ़!'

कभी कभी वह बहुत रात बीते लड़खड़ाता हुआ आता। उसका सूट कीचड़ से सना और कई स्थानों पर फटा हुआ रहता। चेहरे पर भी कई स्थानों से ख़ून निकलता होता। उसने कैसा मज़ा लूटा होगा, यह उसके चेहरे से साफ़ मालूम हो जाता! पर वह स्वयं गर्व के साथ सीना तान कर कहता—

'सीधे पेरिस से आ रहा हूँ।'

उससे और कुछ पूछने की आवश्यकता नहीं पड़ती। वह पेरिसियन कुमारियों के सौन्दर्य की तारीफ़ों की झड़ी लगा दिया करता।

उसकी वर्णन-शैली ऐसी सुन्दर होती थी कि मेरी आँखों के सामने एक अनोखे, अब तक अपरिचित, सुन्दर, मधुर, ऐश्वर्यमय संसार का चित्र खड़ा हो जाता। इस प्रकार के संसार का भी पृथ्वी पर होना सम्भव है, यह बात पहले पहल उन्हीं दिनों मेरे मन में स्थान ग्रहण करने लगी।

एक बार उसने बतलाया कि वह दो साल पहले अपनी खलासीगिरी की तीन महीने की तनखाह लेकर इतमीनान से 'लुव्र' देखने गया था। वहां पर सङ्गमरमर की बनी नग्न स्त्रियों की अनेक अवस्थाओं और भावों की मूर्तियां उसने देखीं। उन्हींके काट के आधार पर वह आदर्श सुन्दरी पाने के लिये पागल हो उठा। जब शाम हुई और वह सीन नदी के किनारे टहलने निकला, तो ठीक उन्हीं मूर्तियों के समान एक सुन्दर स्त्री स्वयं हँसती हुई उसके सामने आयी और उसे लुभाने की तरह तरह की चेष्टायें करने लगी। वह सुन्दरी उस पर बिलकुल मुग्ध हो गयी। यहां तक कि पैसे चुक चलने पर भी वह अपने यहाँ उसे रखे रहने के लिये तैयार थी।

'फिर तुमने उससे शादी क्यों नहीं कर ली ?' मैंने पूछा।

'उसकी सबसे बड़ी कमी यह थी कि मेरा भी जिन्दगी भर भरण-पोषण कर सकने भर धन उसके पास नहीं था।'

एक दिन रात को अपने लिहाफ़ में भली भांति लिपट भी नहीं पाया था कि बाहर कोलाहल सुनाई दिया। खिड़की से बाहर झांक कर देखा, तो रास्ते पर एक अजीब तरह का जुलूस जाता हुआ दिखाई दिया। सब से आगे आगे एमिल—'पारी, पारी' वाला अपना प्रिय गीत गाता जा रहा था। उसके साथ उसीके हमउम्र गांव के और भी बहुत से युवक थे। इन युवकों में कई लड़खड़ाते

हुए, मस्त, झूमते-झामते अपना अलग राग अलापते जा रहे थे। मालूम पड़ता था कि किसी भी स्वर में कोई क्यों न गाये, युवकों के उस 'कंसर्ट' में, बिना रस-भङ्ग होने की आशंका किये, वह स्थान पा ही जायगा।

युवकों के पीछे पीछे बहुत सी युवतियां थीं। वे युवकों के राग में कभी कभी 'डूएट' की तरह अपना ऊँचा स्वर मिला देती थीं। जिस युवती का स्वर तीव्र होता, उसे दो युवक दोनों ओर से पकड़ कर हवा में झुला देते। युवती 'ऐ! ऐ!' करती और युवकों के उसे छोड़ देने पर भी वह उनके कन्धे से लटकती चलती।

रास्ते के किनारे वे जिस किसी युवा-युवती को देखते उसे भी खींच कर अपनी जमात में शामिल कर लेते। जो संकोची स्वभाव के थे अथवा जिनके लिये शर्म नाम की कोई चीज़ होती वे जुलूस के पास आने के बहुत पहले ही रास्ते से दस क़दम दूर हट कर खड़े हो जाते।

आगे के चौराहे पर जुलूस पहुँच जाने पर मुझे होश आया कि मैं भी कमरे से न जाने कब निकल कर उनकी जमात की ओर खिंचता जा रहा हूँ। सब लोग उस गांव के सर्वप्रधान काफ़ेघर (चायख़ाने) 'काफ़े पारी' में पहुँचे। उस दिन के उत्सव के लिये उसका नाच-घर पहले से ही सजाया गया था। उस अवसर के बारे में दरियाफ्त करने पर एक परिचित ने कहा—

'आज हम जितने युवक यहां पर इकट्ठे हुए हैं, प्रायः सबका जन्म एक ही साल में हुआ है। कल सबेरे से हम फ़ौजी तालीम के लिये अपने यहां के फ़ौजी विभाग को सुपुर्द कर दिये जायँगे। दो साल तक हमें सैनिक बन कर फ़ौजी बैरेकों में रहना पड़ेगा। वहां का जीवन बड़ा ही सख्त और रूखा-सूखा होता है, इसीलिये हम उसके

बदले आज ही बहुत सा सुख और मज़ा बटोर कर उपभोग कर लेना चाहते हैं।'

युवतियां उन युवकों को बिदाई देने आयी थीं। उनके प्रस्ताव के अनुसार, अठारहवीं शताब्दी में लॉके द्वारा आविष्कार किये गये काड्रिल नृत्य के साथ उत्सव आरम्भ हुआ। दो दो जोड़े एक साथ मिल कर नाचने लगे। अपने यहाँ की भाषा में यदि हम इसका यौवन-नृत्य नाम दें तो अधिक उपयुक्त होगा। युवा-युवती जी खोल कर अपने भीतर के छिपे भाव इस नृत्य द्वारा व्यक्त करना चाहते थे। इस नृत्य के लिये साधारणतया जितने उछाल मारने की आवश्यकता होती है, जवानी की उमङ्ग में आकर युवा-युवती उससे कहीं अधिक उछाल मार रहे थे।

पर साथ ही इस नृत्य की एक और विशेषता थी। गहरे मिलन का भाव व्यक्त करने वाला यह नृत्य था इसमें सन्देह नहीं, पर साथ ही, नाच के प्रत्येक घेरे के समाप्त होने के समय, वियोग दरवाज़ा खटखटा रहा है—यह भी व्यक्त हुए बिना नहीं रहता था।

यह वियोग का दुःख नृत्य के सिवा और कई ढंग से प्रदर्शित हो रहा था। यदि एक दल उस वियोग को जड़-मूल से भुला डालने की इच्छा से अपनी युवावस्था की संगिनी का गहरा आलिंगन कर रहा था तो साथ ही एक और ऐसा दल भी था, जो उस गहरे आलिंगन की सार्थकता पर अविश्वास कर पहले से ही वियोग का सामना कर पाने के लिये एक और ढङ्ग से अपने को तैयार कर रहा था। इस दूसरे दल के लोग एकाध बार रस्म अदा करने के खयाल से नाच कर एक कोने में जा बैठते। इन जोड़ों में कई ऐसे भी दिखाई दिये, जिनमें शुरू शुरू में बड़ी गाढ़ी दोस्ती थी, बीच में आकर मनमोटाव हो गया

था और आज फिर वे बिदा लेने के समय, अपनी प्रथम-प्रेम वाली सीढ़ी पर आकर खड़े होने की चेष्टा कर रहे थे। इस ढङ्ग की आलाप-प्रिय युवतियों की भीतर की अधीरता इस समय फूटी पड़ती थी ; वे इसे दबा कर सिर्फ़ अपना आन्तरिक प्रेम प्रकाश करने की चेष्टा कर रही थीं।

जब इसी ढङ्ग के कई जोड़ों का एक ही स्थान पर जमघट लगने लगता तो उनमें से संकोची स्वभाव वाले जोड़े उठ कर काफ़ेघर के बाहर वाले मैदान में आ जाते। यहाँ इस समय चांदनी छिटक रही थी। किसी किसी लड़की ने प्रथम यौवन के प्रेम की स्मृति-स्वरूप अपने सर के कई बाल उखाड़ कर कागज़ में लपेट अपने अपने प्रेमी युवकों को भेंट किये।

'मैं तुझे कभी भी नहीं भूलूँगा।' एक लड़के ने कहा।

'और देखो! तुम उस ऊपर के चमकते हुए तारों को रोज़ इसी समय देखा करना। तुम्हारी स्मृति में मैं भी ऐसा ही किया करूँगी।' उसकी प्रेयसी ने जवाब दिया।

'उस तारे में मैं तुम्हारी शक्ल देखा करूँगी।' एक और लड़के ने प्रेम-विह्वल होकर कहा।

'और मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करती रहूँगी! और किसी भी लड़के के साथ कभी घूमने नहीं निकलूँगी।' उसकी प्रेयसी ने विश्वास दिलाया।

'और मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि प्रति सप्ताह तुम्हें एक न एक ख़त अवश्य लिखूँगा।' एक युवक अपनी संगिनी का हाथ पकड़ कर कह रहा था।

'नहीं! नहीं!' उसकी प्रेमिका अविश्वास सा दिखा रही थी—

'बैरेक में रहते रहते पुरुषों का मिज़ाज बदल जाता है! तुम प्रतिज्ञा करो कि तुम सारी ज़िन्दगी मुझे ऐसा ही प्यार करते रहोगे!'

और ये जोड़े अपने आँसुओं से तर रूमाल आपस में बदलते और आख़िरी बार आलिङ्गन कर पाने के मौके की प्रतीक्षा में बाहर जग-मगाते हुए तारों से भरे आसमानी चँदोवे के नीचे घण्टों सिहरते और कांपते हुए खड़े रह जाते।

'आओ, आओ! मौज करो!' क़ाड्रिल का सिर्फ़ यही ताल मेरी समझ में आ रहा था। आँखों के सामने जो कुछ भी चल रहा था, वह मुझे खिलती जवानी का खेल ही मालूम हो रहा था। पर यह खेल अकेले नहीं खेला जा सकता था।

'अजी, यह सब सौन्दर्य तो देखने के लिए नहीं, भोग करने के लिए है।' एक परिचित युवक ने मुझसे कहा—'और तुम चुपचाप बैठे हो!'

'सचमुच सौन्दर्य से इतना डरने की क्या जरूरत!' मैंने मन ही मन स्थिर किया और उठा। मैंने हॉल में चारों ओर दृष्टि दौड़ायी। आनेत्त एक कोने में अकेली बैठी थी। उसकी दो सहेलियाँ क़ाड्रिल में शामिल हो गयी थीं। वह गम्भीर मुद्रा धारण किये उनका नाच देख रही थी।

उसके चेहरे पर एक खास तरह का संघर्ष चलता दिखाई दे रहा था। उस मण्डली में क्यों आयी, शायद इसके लिये वह अपने आपको फटकार सुना रही थी। उठ कर शायद जाना भी चाहती थी, पर किसी विशेष प्रकार के असमञ्जस के कारण वैसा कर भी नहीं पाती थी। उसकी भी दृष्टि मेरे ऊपर पड़ी। मैंने झुक कर उसे नमस्कार किया। उसकी आँखें मुझे बुलाती हुई सी नज़र आयीं।

एक मकान में ही रहने के कारण अब तक हम लोगों की दोस्ती इतनी बढ़ गयी थी कि हम एक-दूसरे को 'तू' कह कर सम्बोधन किया करते थे।

'तू तो आज की इस मण्डली में विदेशी दिखाई दे रही है!' मैंने उससे कहा।

'कैसे?'

'ऐसी गम्भीर मुद्रा धारण किये बैठी है!'

'फ्रांस में गम्भीर लोग भी तो रहते हैं।'

'नहीं!' मैंने ज़ोर देकर कहा।

'तब तो अच्छा है कि तुम लुई-चौदहवें नहीं हुए; नहीं तो मुझे फ्रांस के बाहर कर दिया होता।'

मैं उसके पास बैठ गया। उसके लहरदार बाल ठुड्डी तक पहुँच रहे थे। कपड़े अन्य दिनों की अपेक्षा अधिक चटकीले थे। आँख, गाल और होंठ मुसकरा रहे थे।

'तू नाचती क्यों नहीं?' मैंने पूछा।

'तुम यह संगीत समझ पाते हो?'

'यह तो ऐसा-वैसा ही धुम-धाम दीखता है!'

'फिर भी बड़ा सुन्दर है। तुम्हें अच्छा नहीं लगता?'

'एक बार वैसा कोमल स्वर सुन लेने पर धुम-धाम बड़ा कर्कश मालूम पड़ता है।'

'यह तो संगीत का चढ़ाव-उतार है। तुम जानते हो यह किस गीत का स्वर है?'

'नहीं।'

'तुम्हारे सामने कहने में शर्म आ रही है!'

'तो कागज़ पर लिख दो।'

मैंने पाकेट से कागज़-पेन्सिल निकाल कर उसके सामने रख दिया। उसने उस पर कुछ लिखा और कागज़ मोड़ कर मेरी जेब

में रख दिया। जब मैं पढ़ने के लिये उसे निकालने लगा, तो उसने मेरा हाथ पकड़ लिया और कहा—

'अभी नहीं! जब मैं न रहूँ तब पढ़ना।'

जब अगले नाच का बाजा आरम्भ हुआ तब हम दोनों भी उठ खड़े हुए। नाचने की जगह तक गये। उसने मेरे हाथ पकड़ने के लिये अपने हाथ भी ऊँचे किये। वे मुझे मानो दूध से धुले नज़र आये। मैं अवाक हो उन्हीं की ओर देखता रहा, उन्हें पकड़ने के लिये अपने हाथ ऊँचे नहीं कर सका।

'ये तो रूखे व्यवहार के लिये नहीं बनाये गये–' मैंने मन ही मन कहा—'यह स्निग्ध कोमल पदार्थ तो देख कर ही सन्तोष किये जाने लायक है।'

नाच आरम्भ हो गया था। नाचने वालों की मण्डली के बीच उस प्रकार खम्भे की तरह दूसरों का भी रास्ता रोक कर खड़ा रहना अच्छा नहीं दिखाई देता था। पर मैं कुछ निश्चित भी नहीं कर पाता था।

'क्यों, क्या हुआ?' उसने पूछा।

'नहीं—' कह कर मैं वहाँ से अपने स्थान की ओर बढ़ा।

उसने नाच के एक टैक्ट के समय अपना पांव पटक कर मेरा ध्यान अपनी ओर खींचा और कहा—

'लोग क्या कहेंगे? कम से कम मुझे अपने साथ तो ले चलो! जहाँ से उठा लाये, वहाँ तक तो पहुँचा दो!'

हम लोग फिर अपनी पुरानी जगह पर जा पहुँचे। वह बैठ भी नहीं पायी थी कि उसी समय एक युवक ने आकर उसके सामने अपना सर झुकाया और अपने साथ नाच करने के लिये आमन्त्रित किया।

आनेत्त मेरी ओर एक दृष्टि डाल उस युवक के साथ नृत्य करने चली गयी।

मेरा ख़ून ठंडा सा पड़ने लगा। जिसे मैं अभी अभी आदर्श माने बैठा था, उसे ही टांगो-नृत्य जैसा भद्दा नाच करते हुए देखा। हृदय में वेदना सी होने लगी। मालूम पड़ा जैसे मेरे मन के भीतर की किसी सुन्दर मूर्ति का चेहरा किसीने कुरूप बना दिया हो—उसके सङ्गमरमर से चमकते हुए चेहरे पर पहले तो स्याही छिड़क दी है और अब उसका गला दबाने लगा है। वह मूर्ति छटपट कर रही है। शायद उस मूर्ति का प्राण उड़ा जा रहा है। मैं जलने लगा।

नाच ख़त्म होने पर वह फिर मेरे पास आयी। उसके चेहरे पर मुसकराहट थी। मैंने भी हँसने की चेष्टा की, पर सफल नहीं हुआ। एक शब्द तक मुँह से निकालना कठिन हो रहा था। मेरे भीतर का यह परिवर्तन उसकी समझ से बाहर की बात थी।

बाजे वालों ने फ्रांस के राष्ट्रीय संगीत—'मारसयेज' का सुर आरम्भ किया। उस जमाव के लोग अन्यमनस्क से थे। मालूम पड़ा जैसे राष्ट्रीय संगीत सिर्फ़ रस्म अदा करने के लिये गाया जा रहा है।

भीड़ भी तितर-बितर होने लगी। एमिल ने अपना 'पारी, पारी' का सुर आरम्भ किया। लोगों को मानो उसमें अधिक रस मिल रहा था। वे जिस तरह का उत्पात मचाते हुए रेस्टुराँ में आये थे, ठीक उसी भाँति वहां से लौटने भी लगे। फ़र्क सिर्फ़ इतना हो गया था कि बहुत से जोड़ों के पहले ही खिसक जाने के कारण इस वक्त की भीड़ बहुत हलकी पड़ गयी थी। पर इस समय भी जो लोग लौट रहे थे उनमें अधिकांश जोड़े बने हुए थे।

जो युवक अभी थोड़ी देर पहले आनेत्त को अपने साथ नाचने के

लिये बुला ले गया था, वह उससे विदा लेने आया। आनेत्त मुसकराती हुई उससे हाथ मिलाने लगी।

मुझे उस युवक पर जलन होने लगी। मुझे वह सौन्दर्य नष्ट करने वाला, उसे चबा डालने वाला जानवर सरीखा दीखने लगा। इस समय वह ज़ोरों से हँस रहा था और उसने आनेत्त का हाथ भी कस कर पकड़ रखा था। मुझे उस पर घृणा हो गयी।

मुझसे भी विदा लेते समय उसने हाथ मिलाया। मेरे मन में आया कि अगर मेरी उँगलियों में साधारण नाख़ून के बदले बाघनख होता तो मैंने उसे अवश्य ही उस युवक के हाथ में चुभा दिया होता।

उस दिन हम दोनों अलग ही अलग घर लौटे।

उस दिन से एक अजीब तरह का भूत मेरे सर पर सवार हुआ। आनेत्त को सन्देह की दृष्टि से देखने लगा। उसका सौन्दर्य देख कर बजाय खुशी के मुझे गुस्सा आता था। उसकी स्वच्छता में भी कालिमा ढूँढ़ निकालने की कोशिश करता था। उसके अन्तःकरण तक की निर्मलता पर से विश्वास उठ गया था। अपनी कल्पना द्वारा मैं नीचे जाने वाली सीढ़ियों पर उतरता हुआ उस सीमा तक पहुँच जाया करता, जिसे अब तक मैंने मनुष्य-हृदय का सबसे भद्दा अंश समझ रखा था। उस भद्देपन को हमेशा ढका ही देखना चाहता था; यदि कभी उसने अपना पर्दा हटाने की कोशिश भी की थी तो उसे जबर्दस्ती नीचे दबा कर उस पर और भी मोटा पर्दा डाल दिया था। इस समय वही भद्दा—एक भूत का रूप धारण कर—मुझे नचाने की कोशिश करने लगा था।

उसके सोने जाने के समय उसके पांवों की आहट बड़े ध्यान से सुनता। मेरे कमरे के बगल में ही वह सोया करती थी। रात में

नींद खुलने पर कभी कभी उसकी सांस सुनाई देती। अब उस पर भी सन्देह होने लगा था। अब उस तरफ़ की हवा भी आती तो उसमें उसके और किसी से बात करने की 'फुसफुस' सुनाई देती।

उससे बोल-चाल तक बन्द हो गई थी। पहले उसके साथ पता नहीं कितने तरह के खेल रोज़ाना खेला करता था। पर अब अपना अहंकार छोड़ कर यदि वह कभी उन खेलों को फिर से खेलने के लिये कहती भी तो मैं उसे रूखा जवाब दे देता था। पहले उसे अपने निकट से निकट देखते रहने में ही आनन्द आता था, पर अब उसे दूर, और भी दूर, देखना चाहता था। अब भी वह चौबीस घण्टे पहले की ही तरह मेरे निकट रहा करती थी, पर वह कितनी दूर हो गयी है मैं यही मापने की कोशिश किया करता था।

उसकी मां की दृष्टि से अपना यह परिवर्तन छिपा रखना चाहता था, पर इसमें सफल नहीं हुआ। उन्होंने स्वयं ही एक दिन आनेत्त को और मुझे चुपचाप अलग अलग किताब लिये पढ़ते हुए देख कर पूछा—

'मालूम पड़ता है, तुम दोनों में कुछ खटपट हो गयी है?'

वह चुप रही। मैंने ही उत्तर दिया—

'नहीं तो!'

पर उन्हें अपने नकार पर विश्वास नहीं दिला सका। उन्होंने हम दोनों में फिर से मेल करा देने की तरह तरह की चेष्टायें कीं। पर मुझे अपने और आनेत्त के बीच का फ़ासला बढ़ता ही जाता दिखाई दिया।

यह फ़ासला इस हद तक बढ़ गया कि उस घर में मेरा और टिक पाना कठिन हो गया। उस स्थान का प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक वस्तु, यहां तक कि वहां की प्रकृति तक मुझे दुःख देती हुई महसूस होने

लगी। जब आनेत्त के चेहरे पर भी उसी तरह के दुःख की एकाध रेखायें देखने लगा तो परिस्थिति मेरे बर्दाश्त के बाहर की हो गयी। पता नहीं एक दिन सवेरे वह मुझसे क्या पूछने आयी थी! बिना उसके चेहरे की ओर ताके अथवा प्रश्न सुने ही झिड़क कर मैंने कहा—

'मैं आज ही पेरिस चला जाता हूं।'

फ्रेंच लोगों को पेरिस के नाम में ही अद्भुत जादू भरा दिखाई देता है। उनसे उसके सौन्दर्य का ऐसा विवरण सुन चुका था कि उस नाम के लेते ही मेरी आँखों के सामने एक बड़ी कोमल तथा सुन्दर स्त्री का चेहरा नाचने लगता था। वैसी सुन्दरता वास्तव में मैंने कभी अपनी आँखों नहीं देखी थी, पर चित्र आदि देख कर सौन्दर्य की पराकाष्ठा की जो कल्पना की जा सकती है, वही पेरिस की कल्पना करते समय मेरी आँखों के सामने मँड़राने लगती थी। अपनी कल्पना के सौन्दर्य का भी मैं उसे अगाध समुद्र देखने लगा था। इसीलिये सीन-किनारे अतृप्त रह जाने पर उस समुद्र में गोते लगाने का जी चाहता था।

रवाना होने के दिन एमिल ने अपनी एक दोस्त लड़की का ठिकाना देते हुए कहा—

'पेरिस पहुँच कर उसे मेरा नमस्कार जतला देना। वह तुम्हें ठहरने की जगह दे देगी। तुम इतने से ही सन्तोष करना। यदि तुमने दोस्ती आगे बढ़ाने की कोशिश की, तो भाई, और लाज-लिहाज़ नहीं, हमारी-तुम्हारी अनबन हो जायगी।'

अपनी फ्रेंच काकी से बिदा लेकर मैं चुपचाप घर के बाहर निकल आना चाहता था। पर आनेत्त दरवाज़ा रोक कर खड़ी हो गयी।

रोटी और फल का एक पैकेट रास्ते के व्यवहार के लिये उसने मेरे हाथ में पकड़ा दिया। चुपचाप।

मुझे अपने व्यवहार पर शर्म आने लगी। पछताने लगा। स्पष्ट देखने लगा कि व्यर्थ ही उतना कष्ट स्वयं झेला और उसे भी दिया। पर इसके लिये उससे माफ़ी मांगने का साहस नहीं हो रहा था।

'तुम्हें गम्भीर फ्रेंच लड़कियां पसन्द नहीं?' मुसकराहट द्वारा अपनी पीड़ा छिपाने की चेष्टा करते हुए उसने पूछा। पहले पहल जिस दिन उसे देखा था ठीक वैसा ही चेहरा मेरे सामने था।

'तुम्हें मैंने नाहक.......' उसने मेरा मुंह अपने हाथ से बन्द कर दिया।

'पेरिस पहुँच कर मुझे याद रखोगे?'

'यह भी पूछना पड़ेगा?'

'क्या जानूँ! मेरे जैसी बदसूरत फ्रेंच लड़कियां सबको कष्ट ही पहुँचाया करती हैं।'

'उस कष्ट के ही कारण वे अधिक प्रिय बन जाती हैं!'

'तुम मुझ पर नाराज़ नहीं रहोगे, तो पेरिस आकर तुमसे मिलूँगी।'

'वादा रहा! ज़रूर आना?'

'अपना पता तो लिख ही भेजोगे?' उसने पूछा।

मन को ख़ूब समझा-बुझा कर तैयार रखने पर भी अपने भीतर के धक्के का आघात संगीन मालूम पड़ रहा था। घाव अब तक शायद पूरा पूरा भर नहीं पाया था।

'आडियो (बिदा)!' मैंने कहा।

'नहीं, नहीं, ओरिवुआर (फिर मिलने तक)!'

'ओ रिप्रआर !' मैंने दोहराया।

'फिर—' कस कर मेरा हाथ दबाते हुए उसने पूछा—'दोस्त ?'

'हाँ, दोस्त ।'

'यह मुझे पेरिस ले जायगा—' नदी में चलने वाले छोटे स्टीमर पर सवार होते-होते मैं सोच रहा था—'वहाँ एक दिन लुव्र में जाकर अपनी आँखों संगमरमर की मूर्तियाँ देखूँगा और सन्ध्या समय सीन नदी के किनारे 'उस' अलौकिक सुन्दरी का प्रेम-पात्र बनूँगा ।'

'हाँ, उधर ही तो पेरिस है !' पश्चिमोत्तर दिशा की ओर देख कर मैंने निश्चय किया ।

उस तरफ़ के आकाश में एक विचित्र प्रकार की लाली थी। वह मुझे आनेत्त के गाल जैसी दिखाई दी। अधखिली कली सा रंग खिल रहा था।

धीरे-धीरे बादलों ने आकर उसे ढक लिया। अँधेरा छाने लगा। सीन-किनारे के गांव की रोशनी भी लुप्त हो गयी।

जहाज़ आगे बढ़ता जा रहा था।

द्वितीय खण्ड

जेनेट

जिस समय मैं पेरिस पहुँचा, नवम्बर का महीना समाप्त हो चला था। जिधर दृष्टि जाती, उधर ही पृथिवी रुई के फाहों के समान नई गिरी हुई 'स्नो' (बर्फ़) से ढकी हुई दिखलाई देती थी। लोगों तथा सवारी-गाड़ियों के दिन भर चलते-फिरते रहने के कारण सड़क तथा उसके किनारे के रास्तों पर बर्फ़ कीचड़-जैसी दीखने लगी थी। हवा में सूखापन था और अधिक चहल-पहल रहने वाले स्थान भी उजड़े हुए से दीखते थे।

सुबह सात बजे से ही एमिल की दोस्त लड़की की तलाश कर रहा था; पर कहीं भी पता न चला। जिस रेस्तराँ का उसने पता दिया था उसे पेरिस में ढूँढ़ निकालना कोई आसान काम नहीं था। मेरी ज़बान समझने की तो बात ही दूर रही, लोग मेरा हिन्दुस्तानी रङ्ग ही देख कर दोनों कंधे ऊँचे कर विचित्र ढङ्ग से कहते—

'ज-न-से-पा !' (मैं नहीं जानता।)

जो कुछ अधिक नम्र होते वे 'बी···एकुटे···आले···गोश···' मालूम नहीं क्या-क्या कुछ समय तक बुदबुदाते रहते और फिर जल्दी से अपना रास्ता लेते। ज़मीन के नीचे चलने वाली रेल में घण्टों सफ़र करता रहा। फिर ट्राम, बस आदि से चार घण्टे तक सफ़र

करते रहने के बाद उस रेस्तराँ का पता लगा। उसकी मालकिन से बातें करने पर पता चला कि एमिल की दोस्त कुछ महीने पहले वहाँ काम तो अवश्य करती थी, पर कई महीने हुए, एक-ब-एक, मालूम नहीं कहाँ लापता हो गयी! कई बार और प्रश्न करने पर झुँझलाया हुआ उत्तर मिला—

'किसे पता? सम्भव है, वह पेरिस में ही हो—सम्भव है, हिन्दुस्तान, अमेरिका अथवा जहन्नुम को चली गयी हो।'

मेरी निराशा की सीमा न रही।

पर निराश होकर बैठ रहने से काम नहीं चल सकता था। उस रेस्तराँ की मालकिन ने दया कर वह रात रसोई-घर में बिताने दी। मैं बहुत थक गया था, इसलिये गन्दगी की परवा किये बिना एक गोश्त काटने वाली टेबुल पर सो रहा। मुझे यह विश्वास नहीं हो रहा था कि मैं सचमुच ही पेरिस पहुँच चुका हूँ।

बीच पेरिस में ही 'ट्रोकाडेरो' नाम का एक रात्रि-विहार है। यों तो पेरिस में उससे बड़े-चढ़े और संसार में प्रसिद्धि-प्राप्त कई दूसरे स्थान भी हैं, फिर भी 'ट्रोकाडेरो' की एक निजी विशेषता है। उसके सदर दरवाज़े पर दोनों ओर जो तख्तियाँ लगी रहती हैं, उन पर लिखा रहता है—'अनमोल अलौकिक अप्सराओं-जैसी औरतें: कम-से-कम कीमत!' इसके अलावा उसकी एक दूसरी विशेषता भी है। सदर दरवाज़े के सामने दरबान के स्थान पर अक्सर यूरोप में बिरले पाये जाने वाले रङ्ग के लोग रक्खे जाते हैं, जिससे वे रास्ता चलने वालों का आसानी से अपनी ओर ध्यान खींच सकें और उस घर की आमदनी बढ़ायें। पहले उस स्थान पर अफ्रिका का एक असली हब्शी खड़ा रहा करता था, पर कुछ अर्से से मैं उसी काम पर रख लिया गया था। मेरा रूप-

रङ्ग हब्शियों से बिलकुल विभिन्न होने पर भी उस स्थान-विशेष की परिपाटी के अनुसार लोग मुझे नेगर (हब्शी) के नाम से पुकारा करते थे। मेरा काम शाम के सात बजे से तीन बजे रात तक दरवाज़े के सामने खड़े रहना था। 'ट्रोकाडेरो' के भीतर के गरम कमरों की तो बात ही दूर रही, उसके बरामदों तक में प्रवेश करने की मेरे लिये मनाही थी!

उस दिन बाहर सर्दी थी और ठंडी हवा चल रही थी। मैं अपनी तिपाई दरवाज़े के बाहर डाल वहाँ से ही सड़क की ओर देख रहा था। सड़क पर आने-जाने वाले लोग बहुत ही कम थे। उस स्थान से होकर गुज़रने वालों में केवल कई-एक विचित्र पोशाक पहने लड़कियाँ थीं। स्नो पड़ती रहने पर भी लड़कियों के शरीर पर ओवरकोट नहीं था। वे नीचे मलमल-जैसे महीन कपड़ों से बनी पोशाक पहने थीं, जो ऊपर से गरम कोट डाले रहने पर भी कई स्थानों पर खुली दिखलाई देती थीं—ख़ासकर गले के नीचे और छाती के ऊपर का भाग तो बिलकुल खुला सा ही था। यदि उनमें से किसी ने ख़रगोश की खाल का उपयोग भी किया था तो इस प्रकार कि उसे केवल गले में लपेट लिया था, और इस बात का पूरा ध्यान रखा था कि छाती का ऊपरी भाग खुला तथा बाहर से दिखलाई देता रहे। उनके होंठ लाल रङ्ग से तथा चेहरे पाउडर से इस प्रकार पुते थे कि वे हाड़-मांस की नहीं, बल्कि पाउडर तथा रुई के फाहों की बनी दीखती थीं। उनकी भौंहें उस्तरे से मुँड़ी हुई थीं और वहाँ एक काली लकीर सी थी। आँखों की प्राकृतिक पपनियाँ उखड़ी हुई तथा उनके स्थान पर लम्बी-लम्बी कृत्रिम लगी हुई थीं। उनके पाँवों की जूतियों की एड़ियाँ बेतरह ऊँची थीं और चलते समय उनसे निकलने वाली 'टिक-टिक' की आवाज़ बड़ी दूर तक सुनाई देती थी। वे केवल सौ-दो सौ गज़ के फ़ासले के भीतर ही

बार-बार चक्कर लगाया करतीं। यदि उनके माफ़िक कोई आदमी उन्हें दिखलाई देता, तो वे आसपास के 'शो-विंडो' की ओर देखने लगतीं। सर्दी के कारण जब उनके पाँव ठिठुरने लगते, तो वे एक विशेष ताल में उन्हें पटकने लगतीं।

उन्हीं लड़कियों में से एक 'ट्रोकाडेरो' के दरवाज़े पर आ खड़ी हुई। यूरोप के हज्जामों की दूकानों पर रखे मॉडेलों में युवा लड़कियों की जो अर्द्धनग्न आकृति दिखलाई जाती है, उस लड़की की शक्ल भी बहुत-कुछ उसके ही समान थी। मेरे सामने आकर एक बार भीतर झाँकते हुए उसने कहा—'आ······आज तू वहाँ जा बैठा है! पहले तो तुझे देखा ही नहीं। समझा था, तू बीमार पड़ गया है! हे··· हे···हे···हे···सर्दी लग रही है?'

मैंने हँकार-सूचक सर हिलाया।

'हे···हे···हे···इतने में ही? अभी तो सर्दी शुरू ही हुई है। अगर अभी से तेरा यह हाल है, तो फिर फ़रवरी के महीने में क्या होगा? तेरे पास तो ओवरकोट भी है, फिर भी ऐसा सिकुड़ कर बैठा है! मैं तो बिना कोट के ही स्नो में खड़ी हूँ।'

'तुझे ओवरकोट की क्या ज़रूरत? तेरे भीतर तो वैसे ही भट्टी जलती रहती है।'

'हे···हे···हे···वही तो कहा। मुझसे सभी खुश रहते हैं। मेरे यहाँ से सभी सन्तुष्ट होकर लौटते हैं। जो एक बार आता है, मेरा घर सारी जिन्दगी नहीं भूलता।'

बातें करते समय वह बड़े ही अद्भुत ढङ्ग से अपने शरीर का ऊपरी भाग हिला रही थी। इसी समय उसकी बाईं आँख की पपनी एक सेकेण्ड के लिए इतनी फुर्ती से हिली कि मैं अवाक् रह गया।

फिर हँसते हुए उसने कहा—'यहाँ बैठे-बैठे दाँत क्यों कटकटा रहे हो? मेरे साथ चलो, जेनेट के यहाँ सबका स्थान...।'

वह अपनी बात पूरी भी नहीं कर पाई थी कि एक बार उसकी दृष्टि सड़क पर दौड़ी और वह क़दम आगे बढ़ाती हुई चली गई। उधर से वर्दी-पेटी लगाये गश्त लगाता हुआ एक सिपाही आ निकला। जिस सड़क पर लड़कियाँ टहल रही थीं, उधर बिना देखे ही वह चौराहे पर से दूसरी ओर निकल गया। जेनेट फिर मेरे पास आकर कहने लगी—'मालूम नहीं, इस बेहूदे यमदूत को किस पागल कुत्ते ने काट खाया है कि ऐसे मौसम में भी गश्त लगाने निकला है।'

'आज उस पर ऐसी नाराज़गी क्यों? अभी परसों ही तो तुम उससे मीठी-मीठी प्यार की बातें कर रही थीं!'

'वह जहन्नुम में जाये। उस शैतान ने मुझे कम नहीं सताया है। परसों बुलवार-द-मैदलिन तक मुझे सर्दी में ठिठुरते हुए जाना पड़ा, तब जाकर उससे पिंड छूटा। शैतान ने मेरी दुर्दशा कर डाली। मालूम नहीं, हमें सता लेने में ही इन जल्लादों को क्या मिल जाता है?'

दरवाज़े के भीतर से किसी के निकलने की आवाज़ आई। वह वहाँ से हट गई। भीतर से कोई निकला नहीं। मैं अपने स्थान पर ही बैठा रहा। बाहर स्नो गिर रही थी। रास्ते पर कीचड़ के स्थान पर जमी हुई स्नो दिखलाई दे रही थी। जेनेट फिर मेरे सामने आ खड़ी हुई। इस बार उसने अपने कोट के कालर से कान ढक लिये थे। मैंने उसे छेड़ते हुए पूछा—'आज कोई हाथ नहीं आया?'

'मन बड़ा उदास है; सर्दी लग रही है।'

'फिर घर क्यों नहीं जाती?'

'तेरे लिए रुकी हूँ।'—उसने हँस कर कहा।

'मेरे लिए?'

'मुझे घर तक पहुँचा दे !'

'नहीं।'

वह थोड़ी अपमानित हुई सी दिखलाई पड़ी। अपना वह भाव छिपाते हुए उसने कहा—'मौसम कैसा रूखा है! मन बिलकुल उचाट हो गया है। अब घर जाती हूँ। फिर कल। बिदा! हाँ···'

अपने-आप ये शब्द दुहराती-तिहराती वह आगे बढ़ गई। मैं अपने स्थान पर बैठा रहा!

चारों ओर वही उदासी छाई हुई थी।

क्रिसमस के दिन आये और चले भी गये। हर साल की भाँति इस साल भी पेरिस ने यह त्योहार अपनी शान के अनुसार ही मनाया। सड़कें कई दिनों तक सजी-सजाई रहीं। शाम के समय दीपावली की भाँति सारा पेरिस नगर कई दिनों तक जगमगाता रहा। आमोद-प्रमोद के स्थान लोगों से ठसाठस भरे रहे। बच्चों से लेकर बूढ़ों तक सभी नर-नारियों ने अपने भोग-विलास में कोई कोर-कसर नहीं रखी। उन्होंने साल का सारा दुःख भुला दिया और जहाँ तक बन पड़ा, आगे के लिए सुख बटोर कर अपने भीतर भर लिया।

हाँ, मेरे लिए ये दिन कोई विशेष महत्त्व के न थे। मैं इन त्योहार के दिनों में सदा यह मनाता रहता था कि ज्यों-त्यों करके ये दिन जल्दी-जल्दी कट जायें। इसका मुख्य कारण यह था कि इन दिनों मुझे 'ट्रोकाडेरो' के सामने शाम के छः बजे से लेकर सबेरे के पाँच बजे तक—जब तक मौज करने वाले अतिथि अपने-अपने घर न लौट जाते—बैठे रहना पड़ता था।

जब नये वर्ष का त्योहार समाप्त हो गया, तब मेरे सर का बोझ हल्का हुआ। जिस समय मैं 'ट्रोकाडेरो' से घर के लिए चला, उस

समय भी रास्तों पर बत्तियाँ जल रही थीं; पर रास्ता चलने वाले नहीं के ही बराबर थे। साँमिशेल की चौमुहानी से अपने घर की ओर मुड़ना ही चाहता था कि मुझे एक ओर कुछ लोगों का ठहाका सुनाई पड़ा। उनके पास पहुँचने पर मैंने देखा कि बीच में एक युवती पड़ी है, जिसकी कमर में स्त्रियों का पहनने वाला नकली रेशम का जाँघिया और ऊपर वैसा ही रेशम से बना हुआ एक जम्पर चिपका है। उसके शरीर के दूसरे कपड़े तथा ऊपर का कोट पास ही फेंका हुआ है।

लड़की या तो पागल रही होगी, अथवा उसे मिरगी की बीमारी होगी। यदि ऐसा न होता तो भला इस सर्दी में, जब स्नो पड़ रही थी और हवा चल रही थी, वह सड़क पर आकर क्यों लेटती? जो भी हो, लड़की आधी बेहोशी की अवस्था में दीखती थी, और जो लोग उसे घेर कर खड़े थे, उनके लिए वह एक तमाशे की वस्तु हो गई थी। एक ने कहा—'नंगी लड़कियों को देखने के लिए थिएटर तथा सिनेमा आदि में जाकर पैसे खर्च करने की क्या आवश्यकता है? यहाँ तो मुफ्त में ही देखा जा सकता है।'

यह सुन कर सभी लोग हँस पड़े। इसी बात से प्रोत्साहित होकर एक ने अपनी छड़ी से उस लड़की की कमर के रेशमी जाँघिये को भी हटा देना चाहा; पर 'सिपाही आया'—'सिपाही आया' की आवाज़ सुन कर वह रुक गया। भीड़ के एक आदमी ने उस लड़की का हाथ पकड़ कर उसे उठाना चाहा; पर लड़की बेहोशी की हालत में थी, उठ न सकी। फिर वह आदमी 'अपने किये का मज़ा चख' कहता हुआ वहाँ से चलता बना।

जिस समय मैं उस स्थान पर पहुँचा, एक आदमी कह रहा था—'जो भी हो, पुलिस बुलानी चाहिये, नहीं तो यह लड़की सर्दी में ठिठुर कर यहीं मर जायगी।'

तुरन्त ही उसे उत्तर मिला—'मर जायगी तो मर जाने दो न! इसे ऐन सड़क पर आकर ऐसे खुले बदन लेट जाने के लिए किसने कहा था?'

'और आज इतने बड़े त्योहार के दिन और ऐसे समय में पुलिस की ही खोज कहाँ पर की जाय?'

एक ने हँसते हुए कहा—'इसे यहीं पड़ा रहने दो। लोगों का एक बार नंगी स्त्री देखने का शौक तो मिट जाय!'

मैंने बिना कुछ कहे-सुने लड़की का हाथ पकड़ कर ऊपर उठाया और अपने सहारे उसे चलने के लिए बाध्य किया। लड़की बेहोशी की हालत में कुछ क़दम आगे बढ़ी, पर उसके पाँव काबू में न थे। वह अपना भार न सँभाल सकने के कारण फिर ज़मीन पर गिर पड़ी। लोग ठहाका मार कर हँसने लगे। एक ने उसके चेहरे पर से बाल हटा कर उसका चेहरा देखते हुए कहा—'देखो न, जवान लड़की है; पर शरम रत्ती-भर भी नहीं।'

लड़की को इस प्रकार चलाने का प्रयत्न करना व्यर्थ था। सर्दी में खुले बदन पड़े रहने के कारण उसके हाथ-पाँव काठ-जैसे अकड़ गये थे। उसे कन्धे पर लाद कर घर तक ले जाना भी मेरे लिए असम्भव था। मैंने लोगों की ओर देखते हुए कहा—'इसके लिए गाड़ी का प्रबन्ध करना चाहिये।'

विदेशी के लहज़े में अपनी भाषा सुन कर कई आदमियों की दृष्टि मेरी ओर फिरी। एक ने कहा—'तुझे क्या पड़ी है? इसे अगर अपनी जान की फ़िक्र होगी, तो ख़ुद ही उठ कर घर चली जायगी।'

एक दूसरे ने कहा—'अगर इसे दुनिया को अपना सुहावना नग्न रूप न दिखलाना होता, तो यहाँ सड़क पर आकर यह लोटती ही क्यों?'

'अभी यह शराब के नशे में है।'—मैंने धीमी आवाज़ में कहा।

'जब शराब बर्दाश्त नहीं कर पाती, तो पीती ही क्यों है ?'

'और अगर पी भी, तो चुपचाप घर बैठे रहना अच्छा था कि यहाँ पर लेट कर अपनी फ़जीहत कराना ?'

इतना कह कर वह अपने जूते से लड़की की छाती से चिपटा नकली रेशम का जम्पर हटाने लगा। मुझसे यह बर्दाश्त न हो सका। मैंने उसे धक्का देते हुए कहा—'यह भले आदमी का काम नहीं।'

उस आदमी को मेरे शब्द बुरे लगे। उसने डाँटते हुए कहा—'और तू बड़ा भला आदमी बना है ? तुझे हमारे देश की लड़कियों से क्या मतलब ? हम जो चाहें, उसके साथ करेंगे। जा, तू अपना रास्ता ले।'

इतना कह कर वह मेरी ओर लपकना चाहता था; पर मुझे गम्भीर और अपने स्थान पर अटल देख वह रुक गया। मैंने उसकी बात का कुछ उत्तर नहीं दिया। जहाँ पर वे लोग खड़े थे, उसके पास ही एक घर के भीतर स्नो पर फिसलने वाली बच्चों की एक छोटी सी गाड़ी खड़ी थी। उसी गाड़ी को लाकर मैंने उसमें उस बेहोश लड़की को लादा। लड़की अपने-आप कुछ गुनगुना रही थी; पर बिना उसकी ओर ध्यान दिये ही मैं गाड़ी खींच कर आगे ले चला। जो आदमी अभी कुछ मिनट पहले मुझसे झगड़ना चाहता था, वह भी गाड़ी के साथ-ही-साथ दो-चार क़दम लपका और बोला—'बेशरम औरत !' इतना कह कर युवती के मुंह पर थूकते हुए वह बिदा हुआ। दूसरे लोग ठहाका मार कर हँसने लगे।

उन दिनों मैं रुए-दू-सें-जाक के एक पँचतल्ले मकान में सबसे ऊपर की छत वाली कोठरी में रहा करता था। कोठरी छोटी थी; पर सुविधा की लगभग सभी चीज़ें उसमें मौजूद थीं। कोठरी का तीन-

चौथाई भाग चारपाई ने घेर रखा था। घर में घुसने के दरवाज़े के पास एक छोटी सी मेज़ और एक छोटी कुर्सी पड़ी रहती थी। दीवारों में कीलें गड़ी थीं, जिनके सहारे बड़ी लापरवाही से कपड़े लटका दिये जाते थे।

सबेरे के आठ बज चुके थे, पर सर्दी के मौसम में जैसा पेरिस में रहा करता है, उस समय तक अन्धकार छाया हुआ था। मेज़ के ऊपर दीवारगीर जल रहा था। उसी मेज़ के सहारे मैं अपनी दाहिनी कुहनी टेके, सर का भार हाथ पर दिये, चारपाई पर लेटी उस लड़की की ओर एकटक देख रहा था। लड़की काठ के समान अकड़ी हुई खाट पर पड़ी थी। मेरे लिये किसी सफ़ेद चमड़े वाली लड़की को उतने निकट से निहारने का यह सबसे पहला अवसर था।

पिछली सन्ध्या को उसने अपने होंठ लाल रङ्ग से रँगे थे, वे अब फीके हो चले थे; पर बाहर स्नो में पड़े रहने के कारण गालों पर जो लाली आ गई थी, वह अब तक दूर नहीं हुई थी। यदि मुझसे पहले किसी ने कहा होता कि लड़कियों के गाल स्वाभाविक ही इस प्रकार लाल हो जाया करते हैं, तो शायद मैं कभी उस बात पर विश्वास न करता। उसके हाथ गाल के नीचे दबे थे, फिर भी पतली उँगलियाँ और उनके लम्बे तिकोने कटे नाख़ून स्पष्ट दिखलाई देते थे। हाथ का चमड़ा दूध की तरह सफ़ेद था। मुझे यह कुछ अजीब सा लग रहा था। मैं बहुत देर तक एकटक उसकी ओर देखता रहा। वह नींद में ही दाँत कटकटाने लगी। मैंने सोचा, शायद उसे सर्दी लग रही है; दीवार की कीलों पर लटका हुआ एक कोट उतारा और ऊपर डाल दिया। 'शैतान, तुझे शैतान ले जाय' कहती हुई वह जाग पड़ी। चारों तरफ़ कमरे में ही दृष्टि दौड़ा कर उसने पूछा—'आख़िर मैं हूँ कहाँ पर?'

'मेरी कोठरी में।'

'तू मुझे यहाँ क्यों लाया? पैसे तो तूने अभी मुझे दिये नहीं?'

मैं चुप रहा। एक झपाटे में खाट से नीचे कूद कर उसने लैम्प बुझा दिया। अब उसे ध्यान आया था कि वह केवल कपड़ों के नीचे पहनी जाने वाली पोशाक में है। उसने यह भी देखा कि उसकी वह पोशाक केवल कीचड़ में सनी ही नहीं, बल्कि स्थान-स्थान पर फट भी गई है। अभी थोड़ी देर पहले मैंने जो कोट उसे ओढ़ा देने का प्रयत्न किया था, वही मैंने फिर से उसकी ओर बढ़ा दिया।

उसने हँसते हुए कहा—'मेरे लिये तेरे पास पैसे ही नहीं!'

मुझसे उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही उसने खूँटी से मेरा ओवरकोट उतार कर पहन लिया और दरवाजा खोल कर बाहर जाने लगी; पर सीढ़ियों तक पहुँचने के पहले ही रुक कर उसने मुझसे कहा—'दिन में सड़क पर अकेले चलने में मुझे भय लगता है। मेरे घर तक मुझे पहुँचा दो न!'

उसने एक दिन मुझे अपने घर बुलाया। उस दिन वह नशे में चूर थी; पर मेरी खातिरदारी के लिए उसने कहा—'सबसे पहले थोड़ी ब्रांडी पी जाय।'

उसने आलमारी से सुनहले चमकते हुए कागज़ में लिपटी हुई लम्बी गर्दन वाली एक शराब की बोतल तथा दो शीशे के छोटे गिलास निकाल कर मेज़ पर रखे और उन्हें शराब से भरते हुए कहा—'बाहर कैसी ठण्ड है! हु···हु···हु···हु···गरमाने के लिए ब्रांडी आवश्यक है। राइन या मोज़ल की बनी शराब या 'शेम्पेन' मुझे अच्छी नहीं लगती। 'बिअर' तो मैं छूती तक नहीं। हाँ, 'लिकर' चाहे जितना उड़ेलो, मैं पी जाऊँगी; पर सबसे अच्छी 'ब्रांडी' है। अच्छा, खुश रहो!'

उसने एक बार में ही अपना गिलास खाली कर दिया। थोड़ी देर में अधिक नशा चढ़ जाने पर वह अपने स्वभाव के विपरीत बहुत गम्भीर बन गई, और कहने लगी—'तुम समझते होगे कि मैं नशे में मस्त रहने के लिए ब्रांडी पीती हूँ, पर बात ऐसी नहीं है। मैं इसे इसलिए पीती हूँ कि इसके पीने पर मेरे भीतर सबसे प्रबल भाव यह उठता है कि मैं मनुष्य-समाज को अन्तःकरण से घृणा करूँ; किसी आदमी के हक़ में जो भी बुरे-से-बुरा काम किया जा सकता है, वह कर गुज़रूँ। और वह भी ऐसा कार्य नहीं कि जिससे उसे केवल थोड़ी ही तकलीफ़ बरदाश्त करनी पड़े, बल्कि इस प्रकार की कि उसका रोआँ-रोआँ ज़हरीले-से-ज़हरीले विष से भर जाय, उसके जीवन के प्रत्येक क्षण में यह विष उसके हृदय को जलाता रहे, उसके शरीर के रोएँ-रोएँ को—उसके हृदय के प्रत्येक कण को—बराबर पेरता रहे, विषैला बनाता रहे और उसे मार्मिक-से-मार्मिक पीड़ा पहुँचाता रहे।'

अन्तिम शब्द कहते-कहते वह दाँत पीसने लगी। उसी उन्माद में सामने का गिलास उसने फिर से खाली कर दिया और आगे कहने लगी—'हमें मनुष्यों से इस प्रकार घृणा करने का, उन्हें पीड़ा पहुँचाने का, उनसे बदला लेने का अधिकार है। अगर मेरा वस चले तो मैं सारे मनुष्य-समाज को ही शैतान के घर भेज दूँ। उन्हें मार्मिक पीड़ा पहुँचाते रहने का मैंने प्रण कर लिया है; शायद इसीलिए मैं ज़िन्दा भी हूँ। अगर मैं आदमियों को ज़िन्दा जलते हुए देखूँ, तो भी मेरे भीतर उनके लिए नाम को दया का भाव तक न आयेगा। नहीं, नहीं, दर्द के मारे उनका चिल्लाना सुन कर मैं हँसूँगी, ठहाके लगाऊँगी, अट्टहास करूँगी।'

वह पागलों की भाँति ठहाका मार कर हँसने लगी। जल्दी-जल्दी अपने सामने का गिलास दो बार और भरा और उसे इस प्रकार गले के

नीचे उतार लिया, मानो उसके जीवित रहने की वही एकमात्र प्रिय औषध हो। फिर उसने देखा कि बोतल में बहुत थोड़ी शराब बाकी बच रही है; उसे भी उसने पी लिया और ख़ाली बोतल सोफ़े के नीचे लुढ़का दी। बोतल के लुढ़कते ही शीशे के चूर-चूर होने की आवाज़ आई। वह सँभल कर बैठ गई और कहने लगी—'कुछ दिन पहले जब मैं डाक्टर के यहाँ गई थी तो उसने कहा कि मेरा फेफड़ा शराब से बिलकुल चलनी हो चुका है। उसने एक दवा भी दी थी; पर मैंने उसे रास्ते की नाली में फेंक दिया और घर लौट कर फेफड़े का चलनी होना रोकने के लिए फिर उसे ६० डिग्री तेज़ ब्रांडी से तर कर लिया। अब डाक्टर कहा करते हैं कि मेरे जीने की बिलकुल ही आशा नहीं।'

वह और कुछ कहना चाहती थी; पर मैंने कहा—'आख़िर तुम्हें इसकी आदत कैसे लगी?'

उसने मेरे प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया। वह मेरा प्रश्न टालना चाहती थी, इसीलिए उसने कहा—'ज़रा जाकर एक फ्रैंक की सिगरेट तो ख़रीद लाओ।'

फ्रैंक उसने मेरे सामने पटक दिया। मुझे उसका हुक्म अच्छा नहीं लगा, फिर भी मैं सिगरेट लाने चला गया। मेरे लौटने पर उसने सिगरेट ले ली और सर-दर्द का बहाना कर मुझे बिदा कर दिया।

उस दिन के बाद जेनेट से और कई बार मुलाकात हुई; पर अपने निज के जीवन-सम्बन्धी प्रश्नों के छिड़ते ही वह बातचीत का रुख़ बदल दिया करती। वह अपना पिछला इतिहास छिपाये रखना चाहती थी, इसलिए मैंने भी उसे जानने की उत्कण्ठा नहीं दिखलाई।

एक दिन शाम को सर्दी लग जाने के कारण मैं अपने काम पर नहीं गया। मेरा सारा शरीर दर्द कर रहा था। अभी दरवाज़ा बन्द कर और दीवारगीर बुझा कर सोने की तैयारी कर ही रहा था कि एक-ब-एक सीढ़ी पर किसी के ऊपर आने की आहट सुनाई दी। मैं पहचान गया, जेनेट थी। उस दिन उसने, न मालूम क्यों, अपने जीवन का पूरा इतिहास खोल कर मुझे बतला दिया। मैंने समझा, शायद वह शराब के नशे में रही हो; पर उसके मुँह से बदबू का नाम-निशान तक न था।

उसने स्वयं ही चर्चा छेड़ी—'मेरा इतिहास सुनोगे? आज मैं तुम्हें जी खोल कर सुनाऊँगी। बात आज से पाँच वर्ष पहले की है। उस समय मेरी मा ज़िन्दा थी और मेरी छोटी बहन 'इंगे' भी साथ ही रहा करती थी। पिता 'लिल' के कपड़े के कारख़ाने में काम करते थे। उनके मरने के बाद हम लोगों का गुज़ारा चलना मुश्किल हो गया। मैं ही बड़ी लड़की थी, इसलिए बूढ़ी मा और छोटी बहन को अपनी आँखों के सामने भूखों मरते देखना मुझसे बर्दाश्त न हुआ। पहले मैंने कपड़े के कारख़ाने में काम पाने की बहुतेरी चेष्टा की, पर असफल रही; फिर पेरिस आई। बहुत धक्के खाने के बाद भूख की ज्वाला को और अधिक न सह सकने के कारण मैंने एक 'रात्रि-विहार' में काम करना स्वीकार किया। यदि तुम वहाँ पहुँचने के पहले मुझसे परिचित होते, तो तुमने मुझे किसी दूसरे ही रूप में देखा होता और उस समय तुम मेरे आज के इस स्वरूप को देखने का अनुमान तक न कर पाते। उस समय मैं कुछ दूसरी ही थी।'

इतना कह कर जेनेट ने एक लम्बी साँस ली, जिससे मालूम हुआ कि उसके भीतर कोई वेदना छिपी हुई है, और वह उस वेदना के प्रति बिलकुल उदासीन है। वह आगे कहने लगी—'भूख की ज्वाला से

पीड़ित होकर मुझे पहले ही दिन अपनी लज्जा और शर्म धोकर पी लेनी पड़ी। तुम मेरी आज की यह चाल-ढाल देख कर कहते होगे कि मेरा चाल-चलन कभी अच्छा रहा ही नहीं होगा; पर किसी भी कुरूप-से-कुरूप षोडशवर्षीया बालिका से पूछ देखो, उसे पहले-पहल अपना यौवन बेचना कितना अखरता है, वह उसे बेचने के पहले कितना रोती है! और सबसे बुरी बात तो यह होती है कि उसका अन्तःकरण उसे इतना कोसता है कि उसका पागल न हो जाना ही आश्चर्य की बात है।

'रात्रि-विहार में जिस दिन मैंने प्रवेश किया, उसी दिन से मैंने एक दूसरे ही संसार में पाँव रखा। लोग इस संसार को नरक कहा करते हैं; पर इसके बिना उनका काम चलता भी नहीं। वे इस स्थान पर जितना समय बिताते हैं, उसे अपने जीवन की सबसे सुन्दर घड़ियों में गिनते हैं: पर हम लोगों पर कैसी बीतती है, यह हमीं जानती हैं।

'पहले दिन शीशे में अपना बदला हुआ चेहरा देख कर चीख़ कर रोने की इच्छा हुई; पर फिर ख़याल आया कि अब बहुत देर हो चुकी है, पीछे लौटना असम्भव हो चुका है। अपने-आपको भूख के मारे बेच चुकी थी; अपने ही शरीर पर मेरा अधिकार नहीं रह गया था। मैं दूसरों की बन चुकी थी। दूसरे अब मुझे जिस रूप में देखना चाहते, मुझे वैसा ही बनना पड़ता था।

'शायद तुमने मनुष्यों का वह स्वर्ग नहीं देखा है। कुरूप-से-कुरूप, बूढ़े-से-बूढ़ा पुरुष वहाँ पर जाता है और सुन्दरियाँ उसे अपने प्यार से वंचित नहीं रखती हैं। कुरूप बुड्ढे कमरे में जाकर एक स्थान पर बैठ जाते हैं; हम उनके पास से होकर निकलती हैं। हमें कमर के ऊपर का भाग ढके रखने की मालिक की ओर से मुमानियत रहती है, और दूसरे भाग भी वैसे ही ढके होने चाहिए कि हमारे शरीर की पूरी-

पूरी गठन दिखलाई देती रहे और पुरुष अपने इच्छानुसार चुनाव कर सकें। फिर भी वह चाहे जो भी हो और वह चाहे जिस रोग से भी पीड़ित क्यों न हो, यदि उसने हमें चुन लिया, तो हमें उसके पास जाना ही पड़ता है और उसके इच्छानुसार हँसना तथा उसके प्रति प्यार प्रकट करना ही पड़ता है।

'यही है पुरुषों का स्वर्ग! उन्हें 'स्वर्गीय' आनन्द पहुँचाने के लिए हमें कितना कष्ट सहन करना पड़ता है! उस विहार-गृह में इस प्रकार के कितने लोग आया करते हैं, जिन्हें केवल उतने से ही सन्तोष नहीं होता। वे हमें नशे में ज़मीन पर लोटती हुई तथा बेचैनी के मारे अंटसंट बकती हुई देखना चाहते हैं। उन्हें इसीमें आनन्द आता है।

'अब ज़रा आमदनी का हाल सुनो। अपना उतना 'प्यार' सारी रात उड़ेलते रहने और सब कुछ बर्दाश्त करते रहने के बाद जब मैं घर लौटती, तो मालिक से मुझे केवल उतना ही द्रव्य मिलता, जितने में मैं अपनी कोठरी का किराया चुकता कर पाती तथा दूसरे दिन शाम तक खाने का ख़र्च चला सकती।

'पुरुषों के स्वर्ग ने मुझे शराब से खोखला कर दिया। अभी बीस वर्ष की ही उम्र में सत्तर वर्ष की बुढ़ियों की तरह खांसने लगी हूँ! यदि ऐसा न होता, तो पुरुषों के 'स्वर्ग' की नींव ही कैसे कायम रह सकती थी?'

इतना कह वह रूखी हँसी हँसने लगी। वह अपने जीवन के प्रति कितनी हताश हो चुकी है, यह उसकी हँसी में स्पष्ट दिखलाई देने लगा। उपर्युक्त बातें कहते समय उसका कलेजा रो रहा था, यह उसके चेहरे से जान लेना कठिन नहीं था; पर वह इसे प्रकट नहीं होने देना चाहती थी। वह स्वयं ही आगे कहती गई—'तुम्हारे जैसे सीधे-सादे लोग हमारे संसार से परिचित नहीं। तुम मनुष्यों को एक दूसरी

ही आँख से देखते हो ; पर हमें किसी भी मनुष्य के चेहरे में भयावनेपन के सिवा और कुछ दिखलाई ही नहीं देता। वे जितने ही भयावने होते हैं, हम उनके उतने ही निकट जाती हैं ; वे जितने ही कुरूप होते हैं, हम उनकी सुन्दरता की उतनी ही सराहना करती हैं ; वे जितने ही मूर्ख होते हैं, हम उनके गुणों का उतना ही बखान करती हैं। इसी प्रकार तो हम अपने को बेच पाने में समर्थ होती हैं। मुझे सड़क पर अपना चेहरा दिखलाने में शरम आती है, इसीलिये ख़ास चौराहों पर जाकर खड़ी होती हूँ। वहाँ जिन पुरुषों का भद्दा, कुरूप चेहरा देख कर मुझे भय लगता है, उनके ही पास हँसती हुई जाती हूँ। वे अपने हाथ में मेरा हाथ लेकर मेरे घर आते हैं। उनके नाली से भी अधिक गन्दे तथा बदबूदार होंठ जब मुझे चूमने के लिये आगे आते हैं, तो मैं भी अपने होंठ आगे बढ़ा देती हूँ और हँसती हूँ।

'हाँ, उस समय मेरे हृदय में जो आग जलती रहती है, तुम उसका अनुमान भी नहीं कर पाओगे। जिस समय वे मुझे एक खिलौने के रूप में, एक वैसी चीज़ के रूप में देखते हैं, जिसे उन्होंने एक संध्या के लिये ख़रीद लिया हो, तो मुझे ठीक वैसा ही प्रतीत होता है, जैसे मैं मधुमक्खियों के छत्ते में बैठा दी गई हूँ। जिस समय वे मेरा आलिंगन करने के लिये आगे बढ़ते हैं, उस समय इच्छा होती है कि यदि मेरे हाथ में एक लम्बी छुरी होती, तो मैं उसे उनकी छाती के आरपार कर देती। पर मुझे अपना वह भीतरी स्वरूप दिखलाने का अवसर नहीं मिलता। अगर वैसा अवसर मिले, तो एक ही बार में सभी पुरुषों को जहन्नुम भेज दूँ।'

वह दाँत पीसती हुई चारपाई पर लेट गई। मैं उसके चेहरे की ओर एकटक देख रहा था। आँखें खोलने पर उसने कहा—'क्या देखते हो ? संसार इसी को 'प्यार' 'सुख' 'स्वर्ग' के नाम से पुकारता है।

इसके लिये हमें शरीर का रोआँ-रोआँ बेच देना पड़ता है ; केवल इतना ही नहीं, वह इतना सस्ता बना दिया जाता है कि जिसके पास एक टुकड़ा हो, वही हमें जिस रूप में चाहे देख सकता है। मैं हूँ खिलौने की वस्तु और पुरुषों ने उसका दाम लगा रखा है—यदि रक्त-मांस के सहित लो तो दो रुपये और यदि कागज़ पर तो एक टुकड़ा ! आज भी यदि इस शहर के अनेक भागों में जाओगे तो देखोगे कि व्यवसायियों ने लेटरबक्स के समान कई बक्स लगा रखे हैं, जिनमें एक टुकड़ा डालने पर तुम मेरा तरह-तरह के वेश में स्वरूप देख सकोगे। उसका नाम मेरे चित्र से पैसे कमाने वालों ने दे रखा है—'नग्न सौंदर्य', 'खिलती जवानी', 'रात का शृङ्गार', 'प्रातःकाल का शृङ्गार', इत्यादि ! मेरी कीमत भी बाज़ार में और दूसरी वस्तुओं की ही भाँति लगाई जाती है।

'और इतना सब होने पर भी हमें हर समय हँसते रहना पड़ता है। हा···हा···हा···हा····'

ऐसा लगने लगा, मानो वह स्वयं मेरा आलिंगन करने जा रही हो ; पर नहीं, उसने मेरे दोनों हाथ पकड़ कर मुझे फिर बैठा दिया और गम्भीर होकर कहने लगी—'नहीं, तुम सुन्दर हो, मुझसे दूर रहो।'

मैं अवाक् सा बना रहा। जेनेट स्वयं चिल्ला कर कहने लगी—'यही मेरा संसार है। यहाँ का मज़ा लूटो। पैसे निकालो, हैं कुछ पास में ?'

मैं काँपने सा लगा। ज़मीन की ओर देखते हुए मैंने कहा—'मुझे भय लग रहा है।'

जेनेट पहले की ही भाँति ठहाका मार कर हँसने लगी और साथ ही उसके गाल भी आँसुओं से तर होने लगे।

सैर

सर्दी का मौसम ख़त्म हो चुका था। एक दिन सदा की भांति, जैसे ही मैं काम पर पहुँचा, मैनेजर ने एक वाक्य में ही मेरा सारा मामला निपटा दिया—

'अब यह ऋतु समाप्त हो गयी, आप अपना काम और कहीं दूसरी जगह ढूँढ़िये। मुझे बड़ा अफ़सोस है, पर कुछ किया नहीं जा सकता।'

जो आदमी मुझे मैनेजर के पास ले गया था उसने मेरी ओर एक लिफ़ाफ़ा बढ़ाते हुए कहा—

'आपका आज तक का हिसाब साफ़ कर दिया गया है।'

मैं रेस्टुराँ के फाटक पर बिना एक क्षण रुके ही साँमिशेल की ओर चल दिया।

आज वास्तव में मेरे लिए पहला दिन था जब मैं शाम को बत्ती जलने के समय पेरिस की सड़कों पर टहलने निकला था। रास्ते पर बहुत से सिपाही और बहुत सी लड़कियाँ चक्कर लगा रही थीं। इसमें मेरे लिए कोई नवीनता नहीं थी। रेस्टुराँ में अपने बैठने के स्थान से मैं नित्य ही यह तमाशा देखा करता था। पर रेस्टुराँ के भीतर का दृश्य, जो सड़क की ओर लगी शीशे की बड़ी-बड़ी खिड़कियों से दिखलाई देता था, अवश्य ही मेरे लिए नवीन था।

साँमिशेल के पास शीशे की खिड़की से देखा कि एक कमरे में मेज़ें सजी-सजाई रखी हैं और उनके दोनों ओर लोगों के बैठने के लिए कुर्सियाँ हैं। और सब कुर्सियाँ ख़ाली थीं, केवल एक पर एक बड़ा मोटा आदमी भूरे रङ्ग का ओवरकोट पहने बैठा था और उसके सामने बिअर का एक बड़ा गिलास फेन से भरा रखा था। उस आदमी की खोपड़ी टेढ़ी-मेढ़ी हाँड़ी सी और बिलकुल घुटी हुई चिकनी थी। सर के पिछले भाग में उँगलियों पर गिने जाने लायक कुछ-एक सफ़ेद बाल जहाँ-तहाँ बिखरे हुए थे। नाक बहुत चपटी तथा होंठ बड़े मोटे थे। चेहरे का रङ्ग आग में तपने वाली हाँड़ी-जैसा लाल हो रहा था। अभी मैं वहाँ खड़ा ही हो पाया था कि उस आदमी ने बिअर के कई घूँट पिये और दाहिनी ओर देख कर आँखें मारने लगा; उसी ओर से बाजे की आवाज़ आ रही थी। थोड़ी देर में उधर से अपने हाथ में एक छोटी सी वाएलिन लिए हुए एक दुबली-पतली और लम्बी सी लड़की आकर उस आदमी के सामने खड़ी हो गई और कुछ बोली। उनकी बातें खिड़की के बाहर तक सुनाई नहीं पड़ीं। उस आदमी ने लड़की का कपड़ा पकड़ उसे अपनी गोद में बिठा लिया। लड़की हाँफती हुई वाएलिन बजाने लगी। वह आदमी उस लड़की को एक बच्ची की तरह हिलाने लगा। साथ ही, उसकी आँखों की ओर देख अपनी आँखें मटकाने लगा। लड़की हिलते-हिलते थोड़ी देर में पीछे की ओर खिसक जाती, पर वह आदमी उसे फिर सीधा करके बैठा देता।

बड़ी देर तक खड़ा-खड़ा मैं उनकी ओर देखता रहा। जब लड़की वाएलिन बजाना बन्द कर देती तो वह आदमी भी अपने दोनों होंठों को इकट्ठा कर उस लड़की का कस कर आलिंगन करता। फिर जब वह अपनी बांहें ढीली करता तो लड़की हँसने लगती और दोनों ताली पीटने लगते। बीच-बीच में वह आदमी अपने सामने के गिलास से

पहले उस लड़की को बिअर पिलाता और तब स्वयं पीता। उनके गाने-बजाने और आलिंगन आदि का कोई अन्त होता नहीं दिखलाई देता था।

चौराहे के दूसरे कोने पर पहुँचने पर मैंने देखा कि एक रेस्टुराँ के सामने की तख्ती पर लिखा है—'बिना मूल्य प्रवेश।' मैं शीशे के भीतर से झाँकना ही चाहता था कि दरवान बाहर निकल कहने लगा—

'वहाँ से क्या झाँकते हो, भीतर चले आओ। 'प्रवेश-फी' कुछ भी नहीं; कुछ पीने की इच्छा हो, पियो; न पीना हो, तुम्हारी खुशी। कोई तुम्हें बाध्य नहीं करता।'

मैं रेस्टुराँ के भीतर चला गया। बरामदे से ही देखा कि एक बड़े से कमरे में ज़ोरों से बाजा बजाया जा रहा है और बड़ा शोरगुल मचा हुआ है। मैं उस दरवाज़े के पास ही एक पाये के सहारे खड़ा हो गया। यह बाजे बजाने वालों के लिए दम लेने का वक्त था। मजलिस अपने ढङ्ग की बिलकुल निराली थी। जितनी औरतें वहाँ पर थीं, लगभग सभी की उम्र ढलती जवानी की थी; कई तो बिलकुल बूढ़ी थीं। पर उनके कपड़े बड़े भड़कीले थे और चेहरा पाउडर से ऐसा पुता था कि सर हिलाते समय झड़ कर नीचे गिर रहा था। कितनों को उतने से भी सन्तोष नहीं हो रहा था; हर दो मिनट के बाद वे अपना बस्ता खोलतीं, आइने में मुँह देखतीं और चेहरे को पाउडर से और भी अधिक पोतने लगतीं। पर अनेक प्रयत्न करते रहने पर भी वे अपनी असली उम्र छिपा नहीं पाती थीं। चेहरे पर पड़ी हुई झुर्रियाँ बड़ी स्पष्ट दीखती थीं, और कितनी ही तो रंगे हुए लाल-लाल गालों के कारण सुन्दर होने के बजाय कहीं अधिक भयङ्कर दीख रही थीं। बाजा बजाने वालों के बीच जो दो औरतें बैठी थीं, वे भी बेतरह मोटी थीं और उनमें एक के बाल बिलकुल लाल थे, जिससे उसका चेहरा देखने

से ही डर लगता था। कोई भी नया भलामानस यदि पहले-पहल उस कमरे में प्रवेश करता तो वह पहले तो यही समझता कि यहाँ पर बदसूरत औरतों की नुमाइश की गई है।

पर नहीं! जिन मेज़ों के सामने ये औरतें बैठी थीं, वहाँ कुछ नौजवान भी बैठे दिखलाई देते थे। कई युवक तो ऐसे थे, जिनकी अभी किशोरावस्था थी। उतनी और उस प्रकार की स्त्रियों की मजलिस में वे थोड़े से युवक क्योंकर टपक पड़े, कुछ पता नहीं चलता था।

मैं यह सब सोच ही रहा था कि बाजा बजने लगा और नाच शुरू हो गया। जो लोग यूरोपीय नाच देखने के अभ्यस्त होंगे, उनके लिए भी यह नाच अवश्य ही निराला था। हाथ इस प्रकार बेतरह हिलाये जा रहे थे और पाँव ऐसे पटके जा रहे थे कि बाजे के साथ उनका भी एक अपना अजीब ताल मिलता जा रहा था। शरीर में स्वाभाविक लचक न होनेपर भी जब औरतें अपना निराला 'कलापूर्ण' नाच दिखलाने लगतीं तो कोई नया आदमी उसे देख अपनी हँसी नहीं रोक सकता था। मैं मुँह नीचा कर हँसने लगा। इसी समय एक मेज़ के सामने बैठी दो औरतें उठ कर मेरे पास आईं। एक के ऊपर के दाँत सदा ही बाहर निकले रहते थे और दूसरी को पता नहीं इस समय क्या हो गया था कि वह बिलकुल बेचैन होकर हाँफ सी रही थी। मैंने समझा, वे बाहर जाना चाहती हैं; इसलिए रास्ते से एक किनारे, जितना संभव हो सका, हट गया। पर वे औरतें वहाँ से गुज़रीं नहीं; मेरे सामने आ खड़ी हुईं। जिस औरत के दाँत निकले हुए थे, उसने मुझसे कुछ पूछा। मैं उसका कुछ भी मतलब न समझ सिर्फ़ यही जान सका कि उसकी आवाज़ बड़ी कर्कश है। दूसरे ही क्षण मुझे स्पष्ट हो गया कि वे नशे में चूर हैं। मैंने उन औरतों के प्रश्नों के समझने की भी चेष्टा

नहीं की और केवल बाजा बजाने वालों की ओर देखता रहा। पर वे औरतें भी बाज़ आने वाली नहीं थीं। कर्कश आवाज़ वाली औरत ने डांटते हुए पूछा—

'बहरे! सुनता है कि नहीं? तेरा यहाँ पर क्या काम?'

उन औरतों के चेहरे पर स्त्री-भाव का नाम-निशान तक नहीं था। शराब के कारण चेहरा और भी भयानक दीखता था। मैंने बिना उनकी ओर देखे ही उत्तर दिया—

'मैं बाजा सुन रहा हूँ।'

'धत्तेरे बाजे की! अभी तुझे शैतान के घर भेजती हूँ। निकल..........'

अब मुझे वे और भी भयावनी दीखने लगीं। मेरे मन में आया कि उनके पाउडर से पुते चेहरे और शराब की बू से भरे मुँह और साथ ही उनके बेशकीमत कपड़ों पर थूक कर वहाँ से भाग निकलूँ; पर मैंने अपने को रोक लिया। इस समय तक उन औरतों का साहस और भी बढ़ गया था। हाँफती हुई औरत अपनी लड़खड़ाती ज़बान में मुझसे कहना चाहती थी—

'चल! निकल यहाँ से!'

पर उसके मुँह से ये शब्द साफ़-साफ़ नहीं निकल पाते थे। मुझे निकालने के बजाय स्वयं लुढ़क पड़ने से वह अपने को बड़ी कठिनाई से रोक रही थी। पर दूसरी औरत मेरा हाथ तक पकड़ने लगी।

'मुझे तो तुझ पर थूकने में भी शरम आयगी।'

इतना कह मैं बाहर निकल आया। उस मजलिस से मेरी तबीयत ऐसी भिनक गई थी कि दूसरी खिड़कियों में बिना झाँके ही रेलवे स्टेशन तक चला गया। वहाँ पर एक बड़ा सा काफ़े-घर (चाय-गृह) था, जिसके निचले तल्ले पर नाच हो रहा था। उस ओर

अनायास एक निगाह दौड़ाने पर दिखलाई दिया कि एक जोड़ा नाचते हुए एक कोने तक आ पहुँचा था और पुरुष अपने साथ नाचने वाली का मुँह ज़बरदस्ती अपने निकट लाने का प्रयत्न कर रहा था, पर वह औरत उससे अपने को बचाना चाहती थी और हँस रही थी।

उस दिन वह रास्ता मुझे सिनेमा के फ़िल्म-जैसा दिखलाई पड़ा। मैंने लोगों को एक-दूसरे पर बिअर की बोतलें तथा गिलास फेंकते, मार-पीट करते, ताश खेलते, नाचते और चूमते देखा। एक क्षण के लिये यह विश्वास कर लेना भी असंभव नहीं था कि यह वास्तविक जीवन नहीं, बल्कि एक नाटक था और लोग फ़िल्म में चित्रित होने के लिए यह खेल खेल रहे थे।

इस प्रकार के अनेक दृश्यों ने मेरे मन पर अपनी गहरी छाप डाल दी। कभी कभी उस अनोखी मजलिस का ख़याल कर मन में आता—

'यह सब भठियारखाना है, इसमें कुछ मज़ा नहीं।'

और, कभी यह भी मन में आता—

'काफ़े में बैठी लाल झुलिया वाली लड़की वास्तव में सुन्दर थी।'

इस प्रकार प्रेम और घृणा, राग और द्वेष, आकर्षण तथा धिक्कार के भावों से मैं उस शाम को ऐसा घिरा रहा कि उस दिन काम न करने पर भी घर उसी समय लौटा जिस समय पिछले महीनों में काम से छुट्टी पाने पर लौटा करता था। आज मेरी नौकरी छूट गयी है, मेरी जीविका का दूसरा कोई ठिकाना नहीं, अपने निर्वाह के लिये न जाने कहाँ-कहाँ भटकना पड़ेगा; सुख-ऐश्वर्य की कौन कहे, निश्चिंत जीवन से—नित्य के जीवन की आवश्यकताओं तक से—मुझे कितनी दूर तक वंचित रहना पड़ेगा, आदि बातें मेरी स्मृति में थीं और वे खटक भी रही थीं; पर उन पर जान-बूझ कर मैं एक प्रकार का पर्दा

सा डाल लेना चाहता था। उन चिन्ताओं के बार-बार मन में उठते रहने पर भी उन्हें अपने भीतर स्थान नहीं देना चाहता था।

बहुत देर के बाद मुझे चेत हुआ कि भूख बड़ी देर से लगी है, पर इस विचार को भी यह समझा कर कि घर पास है, शांत कर लिया। फिर भी ज्यों-ज्यों घर के पास पहुँचता जाता था, मेरे भीतर एक विचित्र प्रकार के क्रोध की भावना आती जा रही थी! क्रोध का क्या कारण है, क्रोध किसके प्रति और क्यों है, आदि बातें मेरे लिये स्पष्ट नहीं थीं। स्पष्ट केवल इतना था कि मेरा मिज़ाज चिड़चिड़ा सा होता जा रहा है।

जिस समय घर का दरवाजा खोलने लगा उस समय मेरे भीतर का यह भाव यहाँ तक पहुँच गया कि मैं कह उठा—

'मरे, सारी दुनिया मरे। मुझे किसी से वास्ता नहीं।'

कमरे में पहुँच कर देखा कि खाने की कोई चीज़ नहीं है; पर खाट की ओर दृष्टि जाने पर ढाढ़स बँधा—

'ख़ैर, सोने का तो ठिकाना है न!'

फिर बिस्तर पर लेटते-लेटते सोचने लगा—

'कल क्या होगा? कल कहाँ रहूँगा?'

थोड़ी देर में मन में यह बात आई कि 'कल जो होना होगा, होगा। देखा जायगा। आज अब सोऊं।' मन में यह कहते-कहते सोने का प्रयत्न करने लगा। कुछ ही मिनटों में सचमुच ही सो गया। पर उस नींद में देखा कि एक अपरिचित लड़की आलिंगन करने के लिए आगे आ रही है। और तब जी-भर तृप्त होकर मैंने अपने-आपसे कहा—

'मेरा जीवन कैसा सुखमय है !'

मैं कई दिन से आनेत्त के पत्र की प्रतीक्षा में था। एमिल को मैंने पेरिस से एक ख़त डाला था, इसीलिए आशा कर रहा था कि उसने आनेत्त को अगर वह ठिकाना दिया होगा, तो उसका ख़त अवश्य ही अब तक आ जाना चाहिये था।

डाकिया उस दिन भी मेरे लिए कोई ख़त नहीं लाया। मैंने सोचा, आनेत्त मुझे अवश्य ही भूल गई होगी। पर इस विचार को स्वीकार कर पाना भी मेरे लिए कठिन हो रहा था। बिस्तरे के नीचे उतरते समय पाँव बेदम से मालूम हुए।

उसी दिन मैं अपना आगे का कार्यक्रम ठीक करना चाहता था, पर घर से निकलते ही एमिल से मुलाकात हुई। वह मुझे ही ढूँढ़ता आया था।

'आनेत्त ने तुम्हें नमस्कार कहा है।' हाथ मिलाते हुए उसने मुझसे कहा।

'और ?'

'और, और क्या ? कुछ भी नहीं। उस गाँव में और रखा ही क्या है; सब-के-सब असभ्य हैं। वहाँ से मेरी तबीयत ऊब गयी। अब मैं फिर देशाटन के लिए निकल रहा हूँ।'

उसने अपना प्लैन बतलाया। नैपल्स में अफ़ीम और कोकेन की तिजारत से फ़ायदे के साथ-साथ दक्षिण इटली की कुमारियों के सौंदर्य का उसने विस्तार से वर्णन किया। मुझे वह अपना शागिर्द बनाना चाहता था।

'तुम्हारा रङ्ग इटालियनों जैसा है। ज़बान सीख लेने पर तुम पूरी

तरह से दक्षिण इटली के बाशिन्दे बन जाओगे और हमारे काम में बहुत अधिक सहूलियत हो जायगी।'

'तो तुम किसी इटालियन को ही अपना शागिर्द क्यों नहीं बनाते?'

'वे अव्वल दर्जे के धोखेबाज़ होते हैं; उन पर मेरा विश्वास नहीं।'

पुलिस के भय की मैंने उससे चर्चा की तो उसने कहा—'जब तुम्हारा नाम ही उनके काले रजिस्टर में दर्ज नहीं, तो फिर किसी पागल कुत्ते ने उन्हें थोड़े ही काट खाया है कि वे तुम्हारी पेशवाई के लिये आगे आयँगे।'

अपने प्लैन में मेरी अधिक दिलचस्पी न देख वह बोला—

'यहाँ आकर भी तुम पूरे बेवकूफ़ ही बने रहे।'

मैं चुप रहा। वह कहता ही गया—

'मैंने तो तुमसे पहले ही कह दिया था कि पास में अगर पैसे न रह जायँगे, तो पेरिस शैतान का बसाया हुआ दीखने लगेगा। नैपल्स से एक महीने में तुम मालामाल होकर लौटोगे; फिर देखना यहाँ की बहार!'

मैं उसके प्लैन में शरीक होने के लिए तैयार नहीं हुआ। उस समय और अधिक ज़ोर देना शायद उसने भी उचित नहीं समझा। बातों का सिलसिला बदल कर कहने लगा—

'अच्छा, न जाओगे तो न सही। आज मेरे साथ चल कर पेरिस की सैर तो करो!'

'यहाँ रखा ही क्या है?'

तुम तो बिलकुल मनहूसों सी बातें करते हो! चलो, न हो किसी बुलवार के मेले से ही शुरू किया जाये।'

मेरे रहने के स्थान से वह मेले वाला बुलवार दूर नहीं था। एमिल ने वहाँ पहुँचते-पहुँचते कहा—

'सर्दी न रहने पर यूरोप के प्रत्येक बड़े शहर में इस प्रकार के मेले लगते हैं ; पर उन सबकी अपनी-अपनी विशेषता होती है। मुझे तो यहीं का सबसे अच्छा लगता है।'

दूर से ही मेले के एक आदमी पर मेरी दृष्टि पड़ी। न जाने क्यों मेरे मन में एक-ब-एक यह भाव जम गया कि आज मैं फिर शैतान के पाले पड़ा हूँ।'

जैसा मेलों में प्रायः हुआ करता है, चारों तरफ़ काफ़ी शोर-गुल मचा हुआ था। पहली सड़क पर ही दाहिनी ओर एक दृश्य देख कर हम लोग उसके सामने खड़े हो गये। वहाँ पर एक विचित्र पोशाक में एक आदमी आ खड़ा हुआ था और चिल्ला - चिल्ला कर सामने खड़े हुए लोगों से कुछ कह रहा था। उस आदमी ने अपने सर पर एक साफ़ा सा बांध रखा था। नीचे की पोशाक होटलों के दरवाज़े पर खड़े रहने वाले दरबानों जैसी थी ; अन्तर केवल यह था कि उसकी पोशाक में चारों ओर चमकते हुए शीशे से लगे हुए थे, जो होटल वालों की पोशाक में नहीं रहा करते। वह आदमी दुहरा-तिहरा कर एक ही बात बार-बार कह रहा था और जब उसका व्याख्यान ख़त्म हो जाता तो फिर शुरू से आरंभ करता। वह कह रहा था—

'सज्जनो! आप लोगों ने कभी पेरिस के सितारे देखे हैं? अगर आप यहाँ रहते भी होंगे, तो भी आपने वह सुन्दरता न देखी होगी जिसे दिखाने के लिए मैं यहाँ खड़ा हूँ। यह एक अपूर्व सुन्दरता है। यहाँ ये सितारे सभी रूप में दिखलाये जाते हैं। शाम के वक़्त,··· प्रातःकाल, आधी रात को···· । प्यार में, क्रोध के वक़्त, ईर्ष्या दिखलाते

समय, विभिन्न मौकों पर ये सितारे कैसे बदलते हैं, यह भी आपको प्रत्यक्ष खोल कर दिखलाया जायगा।

'साथ ही आप इस बात का पक्का इतमीनान रखें कि उन सितारों के शरीर पर चार अंगुल क्या, अंगुल भर की धज्जी भी नहीं होगी। अगर वे बिलकुल ही नंगी न हुई तो आपके टिकट के केवल दाम ही नहीं, बल्कि उसका दसगुना मैं अपनी गाँठ से वापस कर दूँगा! यह बहार और कहीं अथवा और कभी नहीं मिलने की। परियों की, स्वर्ग की, अप्सराओं की कीमत आप लोगों के लिए केवल एक आना लगा रखी है। आइये! आइये!! आप सभी सज्जन इस तम्बू के भीतर पधारिये और सिर्फ़ एक आने के खर्च में स्वर्गीय आनन्द—अप्सराओं के नग्न सौन्दर्य का आनन्द—लूटिये। आइये! आइये!! आपके लिए फिर दरवाज़ा खोल दिया जाता है।'

हम दोनों भी तमाशा देखने गये। वहाँ से बाहर आते ही मेरे मुँह से निकला—

'अजीब बेहूदगी है! पेरिस में बेहूदगियों की नुमाइश लगी हुई है!'

सचमुच उस प्रकार की बेहूदगी मैंने अपने जीवन में और कभी नहीं देखी थी।

मैं घर लौट आना चाहता था, पर एमिल ने कहा—

'अभी से घर जाकर क्या करेंगे? चलो, आज एक बिअर पीयें। यहाँ बिअर की कुछ अच्छी दूकानें हैं जो और शहरों की अपेक्षा कहीं ज्यादा सस्ती हैं।'

हम लोग एक गली में पहुँचे। कुछ दूर सामने एक तख्ती पर 'इन्द्रा' लिखा हुआ जगमगा रहा था। रङ्ग-ढङ्ग से ही दीखता था कि यह कोई 'बार' होगा। हम लोग उसीकी ओर बढ़ते जा रहे थे। एमिल ने कहा—

'कितनी भी कंजूसी करूँ, तो भी जो दस रुपये मेरे पास अभी बचे हुए हैं, उनसे अधिक-से-अधिक कुछ दिन ही और कट सकते हैं। इन कुछ दिनों के बाद क्या होगा? कहाँ से खाना मिलेगा? कुछ भी पता नहीं! उस समय हमें मारे-मारे फिरना ही है। तो फिर कल के ही दिन को हम वह दिन क्यों न मान लें? जो बात कई दिन बाद आने वाली है उसे कल ही आया क्यों न समझ लें? इसमें हमारा कुछ बिगड़ता तो है नहीं—और फ़ायदा यह है कि एक दिन तो मज़ा लूट लेंगे! यह अफ़सोस नहीं रह जायगा कि जीवन में मज़ा न लूट सके। अगर कुछ दिन बाद चाहेंगे भी तो फिर इसे लूटने में असमर्थ रहेंगे। चलो, आज जम कर पिया जाय।'

वह बड़ी तेज़ी से आगे बढ़ने लगा मानो उसकी कोई बड़ी आशा सफल होने जा रही हो; पर वह आशा नहीं, उसकी निराशा की सीमा थी। मैं अपना भाग्य भी उससे कुछ भिन्न नहीं समझता था।

हम लोग 'इन्द्रा' नाम के जिस आमोद-गृह में घुसे वह वास्तव में ही एक 'बार' था। वहाँ एक बड़े से हॉल के बीच का भाग घिरा हुआ था और आँगन सा दिखलाई देता था। उसीके एक ओर बाजा बजाने वाले बैठे थे। लड़कियाँ जमात बाँध-बाँध कर आती थीं और बैलेट के तर्ज़ पर नाचती थीं।

उस आँगन के चारों ओर उसारे से पड़े थे और उन उसारों में कपड़ों से घिरे हुए छोटे छोटे कमरे से थे। उन कमरों में लाल रङ्ग की धीमी बत्तियाँ जल रही थीं। वैसे ही एक कमरे के भीतर से दो लड़कियों ने हँसते हुए हमारी ओर देख कर कहा—

'आप लोग चक्कर लगाते-लगाते थक गये होंगे। आइये, यहाँ बैठ कर थोड़ा आराम कीजिये। यह केबिन ख़ाली ही है।'

वे दोनों लड़कियाँ आमने-सामने बैठी थीं। हम दोनों भी वहाँ

जा बैठे। बिअर तथा ब्रांडी के गिलास ढलने लगे। थोड़ी देर में ही सर्वसाधारण के नाच का बाजा बजने लगा और एमिल बगल में बैठी हुई लड़की के साथ नाचने के लिए उठ खड़ा हुआ। मेरी बगल में बैठी हुई लड़की से उसने कहा—

'आप इन्हें सिखलाइये।'

वह भी उठ खड़ी हुई और बिना एक शब्द उच्चारण किये ही मेरे कन्धे पर हाथ रखा। फ़ौक्सट्रौट का बाजा बज रहा था। मैं उसके ताल में नाचना चाहता था; पर ऐसा चक्कर आने लगा कि सीधे खड़ा रहना भी मुश्किल था। पहले इस क़दम में ही कई बार उस लड़की के पंजे अपने जूते से दबा दिये। वह दबी ज़बान से चिल्लाने लगी—

'अउ! ज़रा ख़याल रखिये, मेरी उँगलियों में घट्टे पड़े हैं।'

उस लड़की के साथ नाचने की वैसे ही मेरी इच्छा नहीं थी। इसलिए मैंने उससे माफ़ी भी नहीं माँगी। पता नहीं क्यों, इस समय वहाँ पर जितनी लड़कियाँ थीं उन पर मुझे घृणा सी आ रही थी। वे मुझे बाज़ारू लड़कियों से भी कहीं सस्ती दिखाई दे रही थीं। और सबसे बड़ी बात तो यह थी कि जो चाहे वही उन्हें साथ ले जा सकता था, इसलिए उनके पास बैठने में भी मुझे अपना अपमान सा हुआ दीखता था।

नाचना बन्द करने पर भी मैंने उसे धन्यवाद नहीं दिया और जब मैं अपनी केबिन की ओर आने लगा उस समय भी उसे आगे न घुसने देकर खुद पहले घुस आया और जा बैठा। मैं समझ रहा था, वह ज़रूर ही मुझ पर नाराज़ हो गई होगी, पर नहीं, वह मुसकुराने की चेष्टा कर रही थी। मैं अपने सामने का बिअर का गिलास उठा कर पीना चाहता था; पर वह मेरे हाथ से छूट गया और मेज़ पर लुढ़क गया। सौभाग्य से उसमें थोड़ी ही सी बिअर थी, और इसीलिए केवल मेज़ ही भीगी, हम जहाँ बैठे थे वह स्थान नहीं भीगा।

वह लड़की फिर मेरी बगल में आ बैठी और एमिल जिस लड़की के साथ नाचने गया था वह और एमिल मेरे सामने अपने पहले के स्थान पर आ बैठे। एमिल ने मेरी ओर देख कर अपनी बाईं आँख दबाई। मैं उसका कोई मतलब न समझ सका। फिर उसने अपनी बगल में बैठी लड़की को अपनी गोद में बिठा लिया। उसे वहाँ बैठने में कोई एतराज़ भी नहीं हुआ! हाथ में लटकाने वाले चमड़े के बैग से छोटा आइना निकाल कर वह अपने चेहरे पर पाउडर पोतने लगी; साथ ही उसने अपनी एक टाँग दूसरी पर इस तरह रख ली थी कि जांघ के मोज़े बाँधने वाले फ़ीते तक दीखने लगे थे! उसने मेरी ओर देखते हुए कहा—

'आप तो ऐसे गुस्से में भरे दीखते हैं मानो किसी को खा जाने पर उतारू हों।'

'हाँ, बच कर रहिये। कहीं मैं आपको ही न चट कर जाऊँ।'

हम सब लोग हँसने लगे, विशेषकर दोनों लड़कियाँ; और उनमें भी जो मेरी बगल में बैठी थी वह और भी अधिक।

'ऐसी नाराज़ी क्यों?' उसने पूछा।

मैंने कोई जवाब नहीं दिया। मेरा क्रोध बढ़ता जा रहा था। किसके ऊपर वह क्रोध था यह मुझे ठीक नहीं मालूम था—उन लड़कियों पर, जो इतनी बेशर्म थीं, या अपने ऊपर, जो बिना समझे-बूझे ऐसी बेहूदी जगह आ फँसा था? मेरे दिल पर एक गहरा आघात पहुँचा था। नारी-जाति के प्रति मेरी जो उच्च भावना थी उसे उन लड़कियों ने नष्ट सा कर दिया था। जिसे मैं अपनी कल्पना में कहीं सुन्दर समझ बैठा था उसे ही उन दोनों ने इस रूप में पेश किया कि वह सुन्दरता तो जड़-मूल से नष्ट होती मालूम ही पड़ी, साथ ही उसके स्थान पर एक प्रकार की घृणा ने नई जड़ सी जमा ली। इस समय मुझे नारी-जाति में पशुता के सिवा और कोई चीज़ दिखाई ही नहीं दे

रही थी। पहले उनके प्रति मेरे मन में एक सहज आकर्षण था, जिसके कारण मैं उनके लिए सब कुछ त्याग सकने की क्षमता रखता था; पर अब वे मुझे इतनी पतित दिखलाई दे रही थीं कि उनके साथ बैठने में न केवल घृणा हो रही थी, बल्कि ऐसा लग रहा था मानो मैं स्वयं पतन के गहरे खड्ड में गिरने जा रहा हूँ।

मुझसे कोई जवाब न पाकर और उसके बदले मेरे चेहरे पर इस तरह के उतार-चढ़ाव देख कर उस लड़की ने मानो आग पर घी डालने के लिए ही पूछा—

'ज्वालामुखी किस पर फटना चाहता है?'

'तुम लोगों की बेशर्मी और बेहयाई पर!' मैंने आवेश में कह डाला।

दोनों लड़कियाँ और एमिल भी स्तब्ध से रह गये। थोड़ी देर में उन लड़कियों का आश्चर्य क्रोध में बदल गया और वह लड़की, जो एमिल की गोद में बैठी थी, बोल उठी—

'आपको हमारा अपमान करने में शर्म नहीं आई?'

'माफ़ कीजियेगा, मेरे दोस्त को शराब पीने की आदत नहीं, थोड़ा नशा चढ़ आया है। नहीं तो वैसे उनका स्वभाव ऐसा नहीं है।' एमिल ने लड़कियों को शान्त करने के लिए कहा।

'जी नहीं, मैं नशे में नहीं हूँ।' मैंने उसी आवेश में एमिल की बात काट दी।

'तो फिर हम बेशर्म और बेहया हैं?' मेरे पास बैठी लड़की गरज उठी।

'बेशर्म और बेहया ही नहीं हैं, आप लोग गन्दगी की खान हैं, आप लोगों के साथ बैठने से मेरा जी मचलाने लगा है।' मैंने भी गरमी के साथ जवाब दिया।

'तुम्हें क्या हो गया है आज, कैसी बातें बक रहे हो ?' एमिल ने घबड़ा कर कहा। पर उसकी गोद में बैठी लड़की बोली—

'आपके मुँह से हम भद्र फ्रेंच महिलाओं के प्रति ऐसे भद्दे शब्द निकल रहे हैं, और आप उनके लिए माफ़ी माँगने के बजाय उलटा उन्हें सत्य सिद्ध करने की कोशिश कर रहे हैं! आपकी अभद्रता तो कुछ साधारण नहीं है !'

'मेरी अभद्रता ?' मैं और भी जल-भुन कर बोला—'ज़रा खुद अपनी ओर तो देखिये, आपमें किधर से भद्रता के लक्षण दिखाई दे रहे हैं ?'

'आप तो ऐसी बातें कर रहे हैं मानो मेरे ऊपर आपका पूरा अधिकार ही हो। आप कुछ ऐसा तो नहीं समझ बैठे हैं कि इस शराब और बिअर का दाम चुकता कर देने से मेरे शरीर पर आपका अधिकार हो जायगा ? हम लोग वैसी लालची नहीं, और न हमें वैसे किसी पैसे की ही दरकार है। मेरा पति खुद यहाँ के बड़े इंजीनियरों में एक है; हैसियत मेरी ऐसी है कि आपको ख़रीद ले सकती हूँ।'

उस लड़की की बात काटती हुई मेरी बगल में बैठी लड़की कहने लगी—

'शायद इस खर्च के कारण आप बहक रहे हैं। यहाँ आपने भी जो कुछ पी है उसका दाम हम लोग चुकायँगी। आप हमें कोई ऐसी-वैसी ख़रीदी जा सकने वाली लौंडी-बाँदी न समझिये। हम आपकी तरह अशिक्षित भी नहीं हैं। हम लोग अभी पिछले साल यूनिवर्सिटी से पढ़ाई ख़त्म करके निकली हैं और केवल छः माह ही पहले मेरा विवाह हुआ है।'

मैं सन्न हो गया। एक-ब-एक मन में आया—'सबसे अधिक सभ्य लोगों में इन्हीं की गिनती होती है ?'

'मेरे दोस्त की बातों का आप लोग ख़याल न करें। वे इस समय नशे में हैं।' एमिल ने कहा।

'पर जब वे हमें बेशरम, बेहया ठहराने लगे हैं तो हम कैसे चुप रह सकती हैं?'

'जी हाँ! अगर मैंने अपने भीतर सच्ची बात छिपा कर आपसे यह कहा होता कि आपका चेहरा बड़ा ही सुन्दर तथा आकर्षक है तो आप ज़रूर ही नाराज़ न होतीं, पर मैं यह कह ही कैसे सकता था? मेरे मन की असली बात……'

मेरी बात काट कर सामने बैठी लड़की कहने लगी—

'यही न कि हम बड़ी कुरूपा हैं?'

'नहीं, नहीं! इन्हें ही कहने दो! आपके मन की असली बात हमारे सम्बन्ध में क्या थी?' मेरी बगल में बैठी लड़की ने पूछा।

'जाने भी दीजिये! यह बात कुछ मज़े की नहीं! अजी, तुम भी यहाँ क्या बातें करने लगे!' एमिल ने कहा।

'हाँ, हाँ, आप अपनी बात तो पूरी कर डालिये।'

'जी हाँ! असली बात यही है कि मुझे पाउडर की पुतलियाँ बिलकुल ही पसन्द नहीं और मैं उन्हें देखना नहीं चाहता।'

'जब उन्हें देखना ही नहीं था तो फिर आप यहाँ आये ही क्यों?'

'अनजाने।'

'पर अब तो जान गये हैं।'

'इसीलिए जा भी रहा हूँ।'

'आनन्द से, खुशी से रहिये।' दोनों लड़कियों ने दुहराया।

मैं उस आमोद-भवन से बाहर निकला। बाहर इस प्रकार साँस लेने लगा मानो अब तक उस घर के भीतर दम घुट रहा था, साँस लेने

की साफ़ हवा मिल ही नहीं रही थी। फिर उस स्थान से सटे एक पार्क की ओर निकल गया और बहुत देर तक वहाँ घूमता रहा।

'इतने दिनों से मनुष्य-समाज में रहता चला आ रहा हूँ, पर अब तक उसे पहचान नहीं पाया। कवि, कलाकार, साहित्यिक खुद धोखे में रहते हैं और दूसरों को भी धोखा दिया करते हैं। उनके ही बहकावे में आकर लोग 'रोमैंटिक जीवन' के फेर में पड़ते हैं। अपने दैनिक जीवन के कड़वेपन को लोग स्वीकार नहीं करना चाहते और इसीलिए वे बहकावे में आ भी जाते हैं।'

यही सोचता हुआ घर लौटने का विचार कर पुनः साँमिशेल के पास आया। अभी कुछ देर पहले जैसी मेरे मन की अवस्था थी, इस समय ठीक उसकी प्रतिक्रिया सी दिखलाई देने लगी। इस समय मन में आने लगा—

'मैं भी कैसा मूर्ख हूँ। नाहक एक बड़ा ही अच्छा मौका हाथ से निकल जाने दिया। लोग संसार में जिसे सबसे बड़ा सुख कहा करते हैं, उसका उपभोग न सही, पर कम-से-कम उससे एक बार भली भाँति परिचय तो प्राप्त कर लेता। सचमुच ही मैंने बहुत बड़ी भूल की है। नारी-जाति के प्रति मैं जैसे ऊँचे विचार रखा करता हूँ, उन्हें जितना ऊँचा स्थान दिया करता हूँ, दर-असल यह सब कल्पना-जगत् अथवा कविता के लिए ठीक है। असली जिन्दगी में उन्हें कोई उसी दृष्टि से देखना चाहे तो दर-असल ही उससे बड़ा मूर्ख दूसरा और कोई नहीं। मुझे यही अचरज हो रहा है कि आखिर उस लड़की ने मुझे मूर्ख क्यों नहीं कहा। स्त्रियों के सम्बन्ध में जैसी मूर्खता मैं दिखलाया करता हूँ उससे बढ़ कर दूसरी और क्या हो सकती है? मैं उन्हें एक प्रकार का खिला हुआ फूल समझा करता हूँ, जिसका सौन्दर्य देख कर ही तृप्त हो

जाने में मुझे औचित्य दिखलाई देता है। उसे डाली से अलग कर हाथों से मसल डालने वाला मेरी दृष्टि में बड़ा क्रूर बन जाता है, और मसली जाने वाली स्त्रियों की सुन्दरता भी नष्ट हो जाती है।

'पर उन्हें देख कर ही सन्तोष कर लेना कैसे निभ सकता है? उनके सम्बन्ध में ये बातें, ये भाव कागज़ पर लिखने के लिए हैं। असली जीवन में उनका स्वभाव ही ऐसा होता है कि वे मसला जाना पसन्द करती हैं। जो इस दृष्टि से उनके समीप नहीं पहुँचता उसे वे अवश्य ही मूर्ख कहती होंगी, और उनका यह कहना भी जायज़ है।'

साँमिशेल में बहुत से स्त्री-पुरुषों को हाथ में हाथ डाले हुए जाते देख रहा था। उन्हें देख कर सोचने लगा—

'सब लोगों का रास्ता एक ही तरह का है। मैं ही क्यों उनसे भिन्न एक दूसरे ही रास्ते पर चलना चाहता हूँ? उस सुख से, जिसे मैं भी भीतर-ही-भीतर सुख मानता हूँ, अपने को अलग क्यों रखूँ? उससे वंचित रहने पर अपना जीवन नीरस बनाने के सिवा मेरे हाथ और क्या चीज़ लग सकती है?

'एमिल ही मेरे सामने एक मिसाल है। अवश्य ही उसका जीवन मेरे जीवन से कहीं सुखमय है।'

एमिल शायद अब भी उसी इन्द्रा नाम के आमोद-भवन में हो, इस ख़याल से उपर्युक्त बातें सोचता हुआ उसी ओर बढ़ता जा रहा था। अभी उस गली में मुड़ना ही चाहता था कि पीछे से किसी ने पुकारा—

'नेगर!'

आवाज़ बिलकुल परिचित स्वर में होने के कारण मैं चौंक गया और मुड़ कर देखा। जेनेट हँसती हुई सामने से आई और अपना हाथ बढ़ाया। उसके शरीर पर वही कपड़े थे जिन्हें मैं पेरिसियन करार दिया

करता था। केवल चेहरा थोड़ा और भी बदल गया था। पाउडर से पुते रहने पर चेहरे का फीकापन तथा पीलापन दूर नहीं हो पाया था। आँखों के पास तथा गालों पर की ढलती जवानी की रेखाएँ इस समय साफ़-साफ़ दिखलाई दे रही थीं।

'अब तुम बड़े आदमी हो गये हो, मुझे पहचानना भी नहीं चाहते?' उसने ताना कसा।

जिस पार्क से मैं अभी आ रहा था, हम लोग फिर से उसी ओर चले। थोड़ी देर इधर-उधर की बातें करते रहने के बाद उसने कहा—

'माफ़ करना! मैं थक गई हूँ। मुझे थोड़ा सहारा दो।'

इतना कह वह मेरी बाँह पकड़ कर चलने लगी। रास्तों पर काफ़ी रोशनी थी। उसका मेरे साथ इस तरह चलना देख कर लोग मेरे विषय में क्या धारणा बनायेंगे, यह बात मुझे खटकने लगी। पर यह सोच कर अपनी तसल्ली कर ली कि आख़िर यहाँ मुझे जानता ही कौन है?

जेनेट के कथनानुसार उसका जीवन पहले की ही तरह चल रहा था, सर्दियों के बाद से अब तक कोई परिवर्त्तन नहीं हुआ था। इधर अक्सर बीमार रहने के कारण व्यवसाय भली भाँति नहीं चल पाता था, इसलिये गरमी के दिनों के लिये उसने मेलों में तमाशा दिखाने वालों के हाथ पट्टा लिख दिया था और उन्हीं के साथ बुलवार के मेले में तमाशा दिखलाया करती थी। वह कौन सा तमाशा दिखलाती होगी, यह बात मैं सोच ही रहा था कि उसने तुरन्त 'पेरिस के सितारे' नाम के ख़ीमे का ज़िक्र किया; बस पूरा दृश्य ही मेरे सामने आ गया। उसका बात करने का ढङ्ग अब भी पहले की ही भाँति था। रूखी हँसी चेहरे पर दिखलाते हुए उसने कहा—

'अब ज्यों-ज्यों जवानी पीछे हटती जाती है, मेरी कीमत भी कम

होती जाती है। यह स्वाभाविक ही है। पुरानी चीज़ों की कीमत दिन-ब-दिन कम ही हुआ करती है। पहले मेरे चित्र देखने की कीमत एक आना थी और अब साक्षात् देखने की उतनी हो गई है! कुछ दिनों के बाद मेरी कीमत इतनी भी नहीं रह जायगी।'

मेरा ध्यान उसकी बातों की ओर नहीं था और न मैं उसके चेहरे को ही देख रहा था। उसका चेहरा मैं बहुत-कुछ अपनी कल्पना में देख रहा था और वह मुझे स्वप्न में दिखलाई देने वाली छाया-जैसी दीख रही थी। उसने अपने गले में, बाहर सर्दी न रहने पर भी, वही अपनी पेरिसियन ढङ्ग की पुरानी खाल लपेट रखी थी और कोट भी पहने थी; पर मुझे अपनी कल्पना में वह ऐसी दीखती थी मानो सर्दी के कारण वह थर-थर काँप रही हो। मुझसे बातें करते समय जब वह अपना मुँह खोलती तब उसके दाँत दिखलाई देते; पर मुझे ऐसा जान पड़ता मानो उसके दाँत बिलकुल हैं ही नहीं। चेहरा उसका अब भी अपनी पूरी जवानी को न पहुँचा हुआ सा दीखता था; पर दृष्टि ऐसी साठ वर्ष की बुढ़ियों जैसी थी जो जीवन में बहुत-कुछ झेल चुकी होती हैं। चेहरा भरा रहने पर भी वह मुझे हड्डियों की माला सी बनी दीख रही थी। मैं डर रहा था कि वह मेरे हाथ का सहारा लिये अपने को घसीटती आ रही है, कहीं एक-ब-एक अचेत होकर वहाँ सड़क पर ही न गिर पड़े। अपने भीतर मैं उसके चेहरे पर कोमलता और भयानकता का एक साथ ही अद्भुत मिलन देख रहा था और वह मिलन इस प्रकार का था कि मुझे भीत सा कर रहा था।

सबसे अधिक मार्के की बात यह थी कि उस लड़की में मुझे ऐसा दिखलाई देता था मानो संसार को दोष, पाप अथवा भयानकता से भरने वह नहीं आई है, जैसा कि बाहर से पहली दृष्टि में वैसी लड़कियों का चेहरा अक्सर दिखलाई दिया करता था। जवानी और बुढ़ापे का

जैसा मिलन उसके चेहरे से टपकता था उसके भीतर से भी वैसा ही दोष तथा निर्दोष, कोमलता तथा भयानकता का चलता हुआ द्वन्द स्पष्ट झलक रहा था। एक क्षण के लिये अपने को यह सोचने से भी नहीं रोक सका कि मैं जिस प्रकार के द्वन्द उसमें देख रहा हूँ, वह लड़की भी अपने भीतर चल रहे इस द्वन्द का अनुभव कर रही है।

'आख़िर हम लोग जा कहाँ रहे हैं?' वह एक-ब-एक मुझसे पूछ बैठी।

'उस पार्क की ओर।'

'मुझे सर्दी लग रही है। पार्क की हवा मुझे पसन्द नहीं। इन गलियों में तथा यहाँ रहने वाले लोगों में जो विशेष प्रकार की गन्ध का अनुभव करती हूँ, उससे मैं अपने को अलग नहीं कर सकती। नहीं, स्वच्छ हवा से मुझे चिढ़ है। चलो, लौट चलें।'

हम लोग जिस रास्ते से अभी आ रहे थे उधर ही लौट चले। वह लड़की स्वयं आगे बकती-झकती जा रही थी; वह शायद कुछ देर के लिये यह भूल गई थी कि मैं उसके साथ-साथ चल रहा हूँ। वह बहुत-कुछ अपने आपसे बातें कर रही थी। वह कह रही थी—

'इन गलियों और ऐसे मकानों से मुझे बिलकुल ही भय नहीं लगता, अपने को यहाँ पर बिलकुल ही सुरक्षित पाती हूँ; पर ज्योंही यहाँ से निकल कर किसी खुले मैदान अथवा बाग में जा पहुँचती हूँ, मेरा कलेजा धड़कने लगता है; मालूम पड़ता है, मेरे चारों तरफ़ लोग खड़े हैं जो मेरी ओर अन्धाधुन्ध पत्थर फेंकते जा रहे हैं। तुरंत ही ख़याल आता है कि अगर अपने को बचाना है तो सर नीचा कर लेना चाहिये, ज़मीन में अगर कहीं पर खड्ड या गढ़ा हो तो वहाँ छिप जाना चाहिये। अभी-अभी हाल की बात है, मैं अकेली एक दिन टहलने निकली थी। जिधर निकली उधर एक खुला मैदान सा था। दिन का समय था। अभी

आधा मैदान भी पार नहीं कर पाई थी कि दीखने लगा मानो चारों ओर से लोग मेरी ओर पत्थर फेंक रहे हैं और उनकी चोटों के कारण मेरे सारे शरीर से ख़ून बहने लगा है। मैं ज़मीन में गड़ कर बैठ गई, घण्टों वैसी ही बैठी रही; जब अन्धेरा हो गया तब जाकर मेरा मन शांत हुआ और उठ कर घर आई। अन्धेरे में मुझे अपनापन दीखता है, उससे मुझे भय नहीं लगता; पर मैदानों का अन्धेरा नहीं, इन गलियों का। इन गलियों में ही और विशेषकर अन्धकार के समय जब किसी परदेशी का यहाँ दम घुटने लगता है, मैं भली भाँति खुल कर साँस लेती हूँ। पर बाहर खुले मैदान में मेरी साँस घुटने लगती है।'

वह आगे और भी कुछ कहना चाहती थी, पर यह देख कर कि मैंने उसका हाथ छोड़ दिया है और सामने से आते हुए लोगों की ओर देखने लगा हूँ, वह चुप हो गयी। हमारे सामने की ओर से एमिल अपने दोनों ओर की दोनों लड़कियों की बाँह में बांह डाले चला आ रहा था। मैं उनसे अपनी नज़र बचाना चाहता था, पर बचा नहीं पाया। एमिल के दाहिनी ओर की लड़की बोल उठी—

'ओः! कहिये, यह जनाब आप ही हैं? अभी कुछ देर पहले तो आप सदाचार की ऐसी डींग मार रहे थे कि उसका कोई ठिकाना ही नहीं। और अब वेश्याओं के साथ जाने में आपके सदाचार को धक्का नहीं लग रहा है?'

मैं सर नीचा किये उसकी बात सुन रहा था; पर मेरी बगल में खड़ी जेनेट अपने पाँव इस प्रकार पटक रही थी मानो हज़ारों मच्छर तथा खटमल उसे एक साथ ही काट खाये जा रहे हों।

'इन्हें भली औरतों से क्या मतलब?' दूसरी लड़की आगे कहने लगी—'ये तो डायनों के ही—और वह भी ऐसी कि जिन्हें देख कर ही भय लगे—पीछे जाया करते हैं।'

जेनेट का चेहरा तमतमा आया। पाउडर से पुते सफ़ेद चेहरे पर भी क्रोध की लाली स्पष्ट दीखने लगी। वह बिना किसी की ओर देखे ही आगे बढ़ने लगी। उसके पाँव इस प्रकार पड़ रहे थे मानो उसके भीतर जितना कुछ अभिमान का भाव है उसे इस समय वह अपनी चाल में दिखलाना चाहती है। उसका उस प्रकार से चलना देख कर मेरे सामने खड़ी लड़कियाँ हँसने लगीं।

एक ने मेरा हाथ पकड़ कर मुझे रोकते हुए कहा—

'ज़रा रुकिये। यह तो मुझे बतलाइये कि आप अभी तो हमें और हमारे साथ-ही-साथ सभी सभ्य फ्रेंच महिलाओं को पाउडर की पुतलियाँ बतला रहे थे और बदसूरती का नमूना सिद्ध करना चाहते थे, पर क्या वह डायन ही आपकी पसन्द के अनुसार सुन्दरी कही जाने योग्य है?'

मुझे उन 'सभ्य' तथा उस 'डायन' में इस समय कोई भी अन्तर नहीं दिखलाई दे रहा था।

सेलीन

सॉमिशेल के पास ही पेरिस का विश्वविद्यालय सौरबोन था। कभी-कभी मैं उस ओर टहलने निकल जाया करता था। मेरी दृष्टि एक खास किस्म के चेहरों पर पड़ती। वे जगे हुए दिखाई देते—नीरोग शरीर, पतली ठुड्डी और प्रशस्त तथा उन्नत, गोल ललाट। बुद्धि उनमें कूट-कूट कर भरी दिखाई देती। ऊपर ऊपर आनन्द पाने की इच्छा अपना खेल दिखाती होती और उसके पीछे से गम्भीर, सरल, सच्चा हृदय बाहर को झाँक रहा होता। आनन्द पाने की इस इच्छा और हृदय की सरलता के बीच किसी किस्म का संघर्ष चलता नहीं दिखाई देता था—दोनों समान रूप से साहस और निष्कपट भाव धारण किये होते।

भली भाँति उन्हें देख पाने के लिये कभी कभी मैं ऐसे चेहरे वालों के पीछे हो लिया करता। वे मुझे कतरी हुई दाढ़ी वाले, कानों पर न अटकाये जाने वाले चमकते हुए चश्मे लगाये प्रोफ़ेसरों के व्याख्यान देने वाले कमरे में ले जाते। जिनका चेहरा अधिक गम्भीर होता वे किताबों से भरे हॉल में पहुँचा दिया करते। मैं समझ जाता, यह ज्ञानोपासना का मन्दिर है।

पेरिस का सबसे बड़ा उपासना-मन्दिर मैं पहले ही देख चुका था। अलखला की तरह का लम्बा कोट धारण किये भक्तों की सी शक्ल के दिखाई देने वाले व्यक्ति एक ख़ास तरह के घण्टे की आवाज़ सुन कर सीन के एक टापू पर जाते। उनके साथ हो जाने पर मैं पेरिस के प्रख्यात गिरजे—नोत्रदाम—के सामने जा खड़ा होता। 'गौथिक' ढङ्ग की कला में उस गिरजे को तैयार कर फ्रेंच लोगों ने वास्तव में ही उसमें अपना हृदय झांकने की कोशिश की है। इसमें सचमुच ही फ्रांस का सार्वजनिक हृदय छिपा है। शताब्दियों से यही अकेला गिरजा पेरिस का सार्वजनिक उपासना-मन्दिर रहता चला आया है। इसीलिये जब जब फ्रांस पर बड़ी-बड़ी विपत्तियां आयी हैं लोग वहाँ जाकर उपासना करते, सान्त्वना पाते और आगे के जीवित रहने के संग्राम के लिये वहीं से शक्ति पाते आये हैं।

सौरबौन में भी मुझे घण्टी की टुनटुनाहट सुनाई देती। यह भी नोत्रदाम के घण्टे की तरह कानों को पार करती हुई हृदय तक पहुँच जाती थी। इन दोनों ही आवाज़ों में मुझे शुद्ध फ्रांसीसी हृदय की धड़कन सुनाई देती थी।

पर तुरन्त ही ख़याल आता कि उस आवाज़ को अनसुनी करते रहने वालों की ही तो संख्या पेरिस में अधिक है। जिन कई अन्धेरी गलियों की झाँकी लगा चुका था वहाँ तक तो वह आवाज़ पहुँचती ही नहीं थी। उन गलियों में चक्कर काटने वाले चेहरे सौरबौन और नोत्रदाम के चेहरों का मज़ाक उड़ाते हुए, उनको चिढ़ाने के ख़याल से मुँह बनाते हुए से नज़र आते।

जब सौरबौन का दरवाज़ा बन्द होने लगता तब मैं शुद्ध हवा की खोज में नदी किनारे जा निकलता। वास्तविक पेरिस को स्वप्न की यथार्थता की तरह सुन्दर मैं वहीं से देख पाता था।

सन्ध्या के कोलाहल में पेरिस के संगीत की स्वरलिपि दिखायी देती। मोटरों का जर्क् जक् और स्टीमरों का क्रिप् क्रिप् उसका एक अंश मात्र होता। उसका मुख्य भाग तो मनुष्यों के भीतर का प्राणभरा संगीत होता। मेरे सामने चलने-फिरने वाले मनुष्य शरीरधारी नहीं, बल्कि स्वरलिपि के अक्षर दिखाई देते। उनका कोलाहल उन अक्षरों के ताल पर निकला हुआ ही जान पड़ता।

सन्ध्या की उस रोशनी के प्रकाश में मैं उन सबका भीतरी चेहरा देखता। यह मुझे बड़ा नम्र और सहानुभूति से भरा जान पड़ता। मेरी इच्छा उनसे दोस्ती करने की होती। यह दोस्ती मेरे अनजान में ही गहरी हो जाती। वे कौन हैं और किस जगह के रहने वाले हैं, आदि बातों का अनुसन्धान करने की मुझे आवश्यकता नहीं पड़ती थी, बिना बातचीत किये ही मैं उनके हृदय का संगीत अच्छी तरह समझ पाता था।

किसी-किसी का चेहरा थका-माँदा दिखाई देता। कारखाने में काम करने वाली कई लड़कियों को जम्हाई लेते देखता। उनके भीतर की ज्ञान की पिपासा मन्द हुई दिखाई देती। वही बाहर के चेहरे पर आकर उदासी का रूप धारण कर लेती। दूसरी ओर पेटभर खाने और कीमती कपड़े धारण करने वालों को भी आलसी के रूप में देखता। उनकी आंखें कठोर रहतीं। ज्ञानोपासना से वे और भी अधिक दूर दिखाई देते।

नदी-किनारे पैदल चलने वालों का रास्ता बहुत तङ्ग था। दैनिक जीवन के गहरे संग्राम में जुटे रहने वाले मज़दूर स्त्री-पुरुषों की रफ्तार धीमी रहती। उनमें से जिनके चेहरों पर शिकन न होती वही मुझे विशेष प्रकार से आकर्षित करते थे। कभी कभी कारखानेदार या धनी दूकानदार जैसे दीखने वाले व्यक्ति अपनी लापरवाही दिखाते हुए

उन्हें धक्का देकर आगे निकल जाते। जो ज़रा सज्जन होते वे पीछे फिर कर 'पारदों' (क्षमा) कह दिया करते। मज़दूर इसकी उपेक्षा कर आगे बढ़ते। कोई कोई अपनी वास्तविक मुस्कान द्वारा धक्का देने वालों को क्षमा करते हुए आगे बढ़ जाते। इस प्रकार के उदार चेहरों में मुझे एक विशेष प्रकार का सौन्दर्य दिखाई देता।

पेरिस की उस सन्ध्या की रोशनी में उन सबको देख कर मैं अपने आपको सम्बोधित कर कहने लगता—

'तुमने अभी कुछ भी नहीं देखा।'

पेरिस की उस रोशनी में मेरी दृष्टि साँमिशेल के पुल पर एक किताब वाली कुमारी पर पड़े बिना किसी दिन भी न रहती। मैं उससे परिचित नहीं था पर चेहरे का काट देख कर मैंने उसका नाम जान-द्-आर्क दे रखा था। इतिहास की कहानियों में ओर्लियेन्स की उस कुमारी की वीर-गाथा पढ़ चुका था और उसीके आधार पर अपनी कल्पना में उसका जो चित्र बनाया था उसी की दो-एक रेखाएँ उस किताब वाली कुमारी में दिखाई दीं।

उसका चेहरा मध्य-फ्रांस की लड़कियों के काट का था। आँखों में कान्ति उतनी नहीं थी, जितनी आकार में वे बड़ी थीं। भौंहें बहुत लम्बी और आँखों के किनारे तक पहुँचने वाली थीं। चेहरे के अनुपात में नाक छोटी थी। होंठ पतले और वेदना-द्योतक थे। गाल कुछ धँसे हुए होने पर भी सौन्दर्य को कम नहीं करते थे, यह एक अजीब बात थी। उसका चेहरा किसी अपरिचित के हृदय में भी उसके प्रति सहानुभूति उत्पन्न करने वाला था। अवस्था यद्यपि लगभग बीस साल की ही थी, पर चेहरे में तारुण्य की अपेक्षा प्रौढ़ता अधिक थी—जिसके कारण वह गम्भीर मालूम होती थी। हृदय के भीतर यौवन-

सुलभ महत्वाकांक्षा के भाव अगर होंगे भी तो चेहरे की निराशा-द्योतक रेखाएँ उन्हें छिपाये हुए थीं।

दूकान पर किसी ग्राहक के न रहने पर वह किताब पढ़ती रहती, पर किसीके वहाँ पहुँचते ही अपनी छोटी कंघी का चिह्न लगा कर पुस्तक रख देती और उठ कर खड़ी हो जाती। उसे निकट से देख सकने के लिये एक दिन मैं भी उसकी दूकान पर जा खड़ा हुआ। पास से उसका चेहरा मोम की तरह फीके रंग का, पर बड़ा आकर्षक जँचा। आँखों में ऐसी उदासी भरी थी कि सान्त्वना देने के लिये सहसा उसे आलिंगन कर लेने को जी चाहा।

उसकी आँखें तो और कुछ पूछ रही थीं, पर मुँह से दूकानदारों जैसी नम्र भाषा में उसने पूछा कि मैं कौन सी किताब चाहता हूँ।

'आप अभी कौन सी किताब पढ़ रही थीं?' मेरे लिये कुछ कहना आवश्यक हो गया था, इसीलिये मैंने पूछा।

'यह तो साँ सिमोन की याददाश्त है।' कहते हुए उसने मेरी ओर वह पुस्तक बढ़ाई।

'इसकी ज़बान तो मेरे लिये बहुत सख्त है।' मैंने उसे पुस्तक लौटाते हुए कहा।

'फिर आप खुद ही चुन लें।' कह कर वह फिर पुस्तक का चिह्न हटा कर आगे पढ़ने लगी।

मैं किताबें उलट-पलट कर देखने लगा। पर उनसे कहीं आकर्षक उस बेचने वाली का चेहरा था। मैं उसकी ओर बेशर्म हो एकटक देखने लगा। अपनी किताब के पन्ने उलटते समय जब वह अपनी आँखें ऊपर उठाने को होती उससे पहले ही मैं सामने पड़ी जिस-किसी किताब के पन्ने उलटने लगता।

दूकान बन्द करने का समय आने पर उसने पूछा—

'आपको कोई किताब पसन्द आयी ?'

'अभी मैं निश्चय नहीं कर पाया।' अपना पाकेट टटोलते हुए मैंने कहा।

'कोई हर्ज नहीं, अगले दिन आप और ढूँढ़ लीजियेगा।' उसने हँसते हुए कहा—'मैं रोज़ सन्ध्या समय ही दूकान खोला करती हूँ।'

उसके चेहरे पर हँसी देख कर मेरा साहस कुछ और बढ़ा। मैंने पूछा—

'आप अब किधर जायँगी ?'

'मैं मोमात्र की तरफ़ जाऊँगी। वहीं मैं रहती हूँ।'

'मुझे भी उधर ही जाना है,' कह कर मैं भी उसके साथ हो लिया।

'आप बहुत दिनों से यह दूकान कर रही हैं?' रास्ते में मैंने पूछा।

'छः महीने से! लेकिन अब मैं इसे छोड़ना चाहती हूँ।'

'क्यों ? इसमें कोई आमदनी नहीं ?'

'है क्यों नहीं, पर""फिर भी छोड़ दूँगी।'

मैंने उसे बातें करने के लिए प्रोत्साहित किया। वह अपने जीवन की नीरसता प्रकट करने लगी। अपने जीवन से वह असन्तुष्ट थी। पर उस असन्तोष का कारण बाह्य परिस्थिति नहीं, बल्कि उसका अपना मन ही था।

'यह दुनिया आदमियों के रहने योग्य नहीं। हम लोगों का संसार बड़ा ही मन उबाने वाला है।'

इसका कारण पूछने पर उसने सिर्फ़ इतना ही कहा—

'यहाँ के हर एक क्षेत्र की भूमि ऊसर दीखती है।'

'ऐसा क्यों ?'

'क्या आप फ्रेंच लोगों के बीच नहीं रहे ?'

'रहा क्यों नहीं हूँ ! लेकिन मैंने तो उन्हें मौज करते हुए ही देखा है !'

इसका उत्तर उसने रूखी हँसी द्वारा दिया। मेरी आँखों के सामने से एक परदा सा उठता जान पड़ा। उससे और कुछ पूछने की हिम्मत नहीं हुई।

हम लोग बस खड़ी होने वाली जगह पहुँच गये थे। अगले दिन मिलने का वादा कर मैं उससे अलग हुआ। बस छूटने के पहले परिचित की भाँति उसने हाथ मिलाया। उस समय उसके चेहरे पर की और भी कई ख़ूबियाँ स्पष्ट होती दिखाई दीं।

जीविका-उपार्जन करने के संघर्ष में वह अपने को अकेला पाती थी। शायद अपने भाग्य को भी वह कोसती रहती थी। दुनिया में अन्याय का ही साम्राज्य है, यह सिद्धान्त भी मन-ही-मन पक्का कर चुकी थी। पर इतना होने पर भी बाह्य आघात उसके हृदय की स्वाभाविक कोमलता पर अपना किसी भाँति का भी प्रभाव डाल पाने में समर्थ नहीं हुए थे। वही कोमलता उसकी आँखों में छलकला उठती थी और उन्हें बहुत आकर्षक बना देती थी।

उसका चेहरा मुझे अपने आपको कोसने के लिये बाध्य करता—

'इसकी दृष्टि कितनी उदार है और मेरी कितनी नीच, कि मैं एक दो व्यक्तियों को नहीं, बल्कि सारे फ्रांस को ही वैसा नीच देख रहा था। मैंने उन्हें उस दृष्टि से देख कर अपने साथ, उनके साथ और साथ ही मनुष्यता के प्रति, कितना बड़ा अन्याय किया है ?'

उस अन्याय के लिये उस दिन शाम को मैं उनसे बहुत देर तक माफ़ी मांगता रहा। उनके देश में यदि आवारों की तरह जीवन

व्यतीत करने के लिये मुझे बाध्य होना पड़ा था तो उसका भी अपराधी मैं अपने आपको ही मानने लगा था।

उसके चेहरे ने लोगों को देखने की अपनी दृष्टि ही बदल डालने के लिये मुझे बाध्य किया। उसमें मैं सारा फ्रांस केन्द्रीभूत हुआ देखने लगा। उसके प्रति मेरा आकर्षण मुझे फ्रांस के प्रति अपना आकर्षण दीखने लगा।

फ्रांस को प्यार करने के लिये मैं उसे प्यार करना चाहता था।

सौन्दर्य मुझे इतनी प्रचुर मात्रा में बिखरा हुआ दिखाई दिया कि अकेले-अकेले उसका उपभोग कर पाना मेरे लिये सम्भव नहीं था। उसमें हिस्सा बँटाने के लिये मुझे एक संगी की आवश्यकता थी। इसीलिये ऑपेरा में जाने के दिन जब टिकट ख़रीदने गया तो बिना अधिक सोचे-विचारे ही दो टिकट ख़रीद लाया। अपने सात दिन के भोजन के बदले में मैं ये दो टिकटें ख़रीद कर लाया हूँ—यह भी मैं अच्छी तरह से जानता था; पर उस समय मुझे इसकी परवाह न थी। वह दिन ख़ास तौर से सुन्दर ढङ्ग से बिताने की योजना मैंने बनाई थी; आगे के खर्च की चिन्ता उस समय उठ ही नहीं सकती थी।

मैंने उसे साथ चलने के लिये कहा। टिकट देखते ही चटपट अपनी दूकान बन्द कर वह मेरे साथ ऑपेरा-गृह आयी। उस दिन प्रसिद्ध फ्रांसीसी संगीतज्ञ बीजे का 'कारमेन' चल रहा था। उस समय तक न तो मेरा फ्रेंच संगीत से परिचय हुआ था और न कभी उसके द्वारा अपने को प्रभावित होते पाया था। अब तक अपने और अपने सामने से गुज़रने वालों के भीतरी संगीत में ही ऐसा रस लिया करता था कि तारों का संगीत सुनने की ओर ध्यान ही नहीं गया था।

टिकट सस्ते दाम के होने के कारण हम लोगों को तीन-तल्ले पर

स्थान मिला था। वहाँ से गान करने वालों का चेहरा ख़ूब स्पष्ट न दिखायी देने के कारण अधिक सुन्दर मालूम पड़ता था, क्योंकि पास बैठने पर चेहरे का पाउडर साफ़ मालूम हो जाने से हमें अवश्य ही निराश होने और उनके सौन्दर्य पर अविश्वास करने का बहाना मिल जाता। और इतनी दूर रहने पर भी संगीत तो हम भली भाँति सुन ही पाते थे।

प्रथम अङ्क आरम्भ होते ही मेरी आलोचनात्मक दृष्टि लुप्त हो गयी। मेरी संगिनी स्वप्न देखती सी नज़र आयी। मैं भी स्वप्न देखने लगा। हमारे सामने चपला जिप्सी-कुमारी 'कारमेन' भी अपनी आधी आँखें बन्द किये स्वप्न-लोक की ओर बहती जा रही थी।

'जिप्सियों के साथ रहते वक्त अगर मुझे भी ऐसी ही कुमारी कारमेन मिली होती!'—एक क्षण के लिये मेरे मन में आया। उन दिनों की संकटमय स्मृतियाँ उस सामने के सुर में विलीन हो चुकी थीं। जिप्सी युवक के बाजे में जिस सौन्दर्य की कल्पना भरी थी, स्टेज पर कारमेन मानो उसी की मूर्ति बनी दिखाई दे रही थी।

बहुत देर तक हम लोग अपने आपको उसी तरह भूले रहे। जब उसे कोई सुर बहुत अधिक पसन्द आता तो वह अपने को रोक न पाती और मेरा हाथ दबा देती। बिना बोले ही हम एक-दूसरे की रुचि से परिचित होने लगे।

तीसरे अङ्क के बाद विराम हुआ। हम दोनों ऑपेरा के बरामदे में सजी हुई पुतलियों सी पेरिस की अप्सराओं की चहल-पहल देखने निकले।

'इनसे वह जिप्सी कारमेन कहीं सुन्दर है!' उसने कहा—'शायद सब जिप्सी ही हमसे अधिक सुन्दर होते हैं।'

वह जिप्सियों के जीवन को बड़ा रोमांचक और सुन्दर साबित करने लगी। मैं कहता कि उनका जीवन रोमांचक की अपेक्षा विषादपूर्ण

कहीं अधिक है। वह मेरी दलील मानने के लिए तैयार नहीं थी। वह जिप्सी-कुमारियों को सुन्दर और अपने को बदसूरत करार देने लगी। मैंने इसका विरोध किया।

'तब तुम्हें सौन्दर्य का ज्ञान नहीं!' उसने कहा—'हमारे सौन्दर्य से तुम एक दिन में ऊब जाओगे, लेकिन जिप्सियों का जीवन सदा भटकते रहने के कारण नित्य नया बना रहता है और साथ ही उनके जीवन से, उनके सौन्दर्य से किसीकी तबीयत ऊब नहीं सकती।'

'मेरा खयाल ठीक इससे उलटा है।' मैंने ज़ोर देकर कहा।

जिप्सी ने कारमेन को मारने के लिए छुरा उठाया। मैं काँप सा गया। मैंने संगिनी की ओर चुपके से एक दृष्टि डाली। कारमेन मर रही थी। संगिनी मेरा हाथ कस कर दबाये रही। हम दोनों के हाथों से पसीना छूटने लगा। कारमेन के अन्तिम संगीत में हम लोगों ने देखा कि हम दोनों के भीतर एक ही सुर बज रहा था।

हम लोग एक-दूसरे के हाथ में हाथ डाले बाहर निकले। रात आधी से अधिक बीत चुकी थी। पेरिस की सड़कों पर सन्नाटा छा गया था। वहाँ की रोशनी में इस समय शान्त संगीत का हिस्सा अधिक था। इस समय वह अधिक विशाल और असीम दीख रहा था। लोगों का शोर-गुल और मोटर-गाड़ियों का हर-हर, पट-पट बहुत दिन पहले बीती हुई घटना के समान याद आने लगा। उनकी जगह अब कुत्तों के भूँकने की आवाज़ ज़्यादा ध्यान खींचती थी।

इस समय सीन-किनारे मेढ़कों का भी अपना निजी 'कन्सर्ट' सुनाई पड़ता था। वे सब जाग्रत हो उठे थे। प्रकृति भी जाग्रत हो उठी थी। आदमियों के कोलाहल से ऊब कर पहले शायद वह और कहीं चली गई थी, पर अब अपना घर शान्त हुआ देख वापस लौट आई

थी। शहर की सारी गन्दगी पर चाँद भी ऊपर से ही झाड़ू लगाता जा रहा था।

एक स्थान पर चिड़ियों का भी स-र-ग-म सुनाई दिया। मेरी संगिनी ने सर ऊपर उठा कर देखा। उसे अपना बहुत दिनों का विस्मृत संगीत याद आया। वह गुनगुनाने लगी।

अपने दरवाज़े पर पहुँच जाने पर उसने मेरे दोनों हाथ कस कर दबाये। मुसकराते हुए अपना सर भी ऊँचा किया। मैं बिना कुछ उत्तर दिये न जाने क्यों कांपता सा खड़ा रहा। उसे आश्चर्य हुआ। फिर उसे क्रोध आया। उसी नशे में वह मेरा हाथ काटने लगी। फिर मेरी चुप्पी देख वह हँस पड़ी और बिना कुछ कहे घर के भीतर चली गई।

अगले दिन से वह मुझसे खुल कर बातें करने लगी। अपनी दूकानदारी में भी मदद करने के लिए उसने मुझसे कहा और इसके लिए मुझे पुस्तकों की बिक्री पर कमीशन देना भी स्वीकार किया। उस दिन उसे घर पहुँचाते समय मैंने पूछा—

'तेरा नाम क्या है?'

'सेलीन।'

'तू रहने वाला कहाँ का है?' उसने पूछा।

'हिन्दुस्तान का।'

'सच? सच, हिन्दुस्तान का?' इतना कह वह ज़ोरों से हँस पड़ी।

'तू हँसती क्यों है?'

'हिन्दुस्तान के कारण मुझे एक महाकांड में पड़ना पड़ा है।'

'हिन्दुस्तान के कारण? यह कैसे?'

'अब इसे खोल कर कहने में कोई हानि नहीं। इस मामले को अब सारी दुनिया जान गई है। मामला यों था—कुछ दिन पहले मैं अपनी सहेली के साथ यहाँ के एक पेन्सियोन (होटल) में काम करती

थी। पेन्सियोन चलाने वाली बुढ़िया ख़ूब पैसे ख़र्च कर सकने वाले लोगों से हम दोनों का परिचय कराया करती। एक बार उसने हमारा परिचय दो मोटे-ताज़े, लगभग चार-चार मन वज़न वाले आदमियों से कराया। पेन्सियोन वाली की दृष्टि में ये दो आदमी 'प्रथम श्रेणी के सज्जन' थे।'

'इसका क्या मतलब ?'

'इसका मतलब यह कि उनके कपड़े बड़े सुन्दर थे; सर में दस-दस ही बाल थे, पर उन्हें सँवारते बड़ी शौक़ीनी से थे। उनकी बातचीत का ढङ्ग मीठा और सरस था। पेन्सियोन वाली को उन्होंने शराब पीने और साथ नाचने के लिए निमन्त्रण दिया था, और सबसे बड़ी बात यह थी कि पेन्सियोन का सबसे महँगा कमरा भाड़े पर लिया था। इन सज्जनों के पास एक बड़ी ही सुन्दर नई मोटर-गाड़ी थी। लाल मुँह वाले सज्जन ने प्रथम दिन ही सन्ध्या समय हमसे कहा—

'हमारे साथ थोड़ा टहलने चलो! देखो, हमारी मोटर कैसी अच्छी है!'

'हमें कहाँ ले जाइयेगा ?'

'आज तो आस-पास ही; पर कल हम लोग आगे जायँगे। हमारा विचार हिन्दुस्तान तक जाने का है और अफ्रीका होते हुए लौट आना चाहते हैं।'

'यह तो बड़ी ही सुन्दर यात्रा होगी ?'

'इच्छा हो तो हमारे साथ चलो।'

दूसरे दिन वास्तव में ही हम दोनों उनके साथ चल पड़ीं।'

'तब क्या तुमने भारतवर्ष की यात्रा की है ?' मैंने पूछा।

'हाँ! तीसरे ही दिन वापस भी लौट आईं।'—हँसते हुए उसने उत्तर दिया—'हम लोग कहीं-न-कहीं अवश्य ही ले जाई गईं; पर उसके

बाद क्या हुआ, उसकी बड़ी ही धुँधली स्मृति शेष बची है। परिचित लोगों का कहना है कि जब पुलिस वाले हमें घर पहुँचाने के लिए ले आये तो हमने बहुत शोर-गुल मचाया था।'

'और क्या इसी भाँति तुम्हारी यात्रा शेष हुई ?'

'नहीं ! हमारे घर लौटाये जाने पर पेन्सियोन वाली बुढ़िया ने कहा कि हम दोनों ही भ्रष्ट हो चुकी हैं, और इसीलिए हमें वहाँ से निकाल दिया।

'हमें यह ऐसा बुरा लगा कि पहले तो सिद्धांत के ख़याल से हम लोगों ने वेश्या बन जाना ठान लिया; पर सौभाग्य से फिर सँभल गईं।' इतना कह उसने लम्बी साँस ली। हम लोग बढ़ते जा रहे थे। ख़याल आने पर उसने कहा—

'मेरा घर तो आ गया। कल की रात बड़ी सुन्दर थी; इसकी मधुर स्मृति मैं कभी न भूलूँगी।'

'अब तो हमारी रोज़ ही मुलाकात होगी ?' मैंने पूछा।

उसने मेरा हाथ कस कर दबाते हुए कहा—

'ज़रूर होगी। अब हम दोनों में दोस्ती हो गई है।'

पिछली रात के ही परिचय में हम दोनों एक-दूसरे के बहुत निकट आ गये थे; मालूम पड़ता था मानो बचपन से ही हमारी दोस्ती चली आ रही है।

बिदा होने के पहले हम दोनों ने एक-दूसरे का आलिङ्गन किया। उसने कस कर मुझे छाती से दबाया और बिना एक शब्द कहे ही गली में आँखों से ओझल हो गई। जब तक वह मेरी आँखों की ओट न हो गई, मैं उसकी ओर टकटकी लगाये देखता ही रहा।

मेरे कानों में उसके कल के गाने का स्वर गूँज रहा था।

इस नई दोस्ती की खुशी में अगले दिन हम लोगों ने छुट्टी मनाना तय किया। वह मुझे लुव्र दिखाने ले गई। मेरी दृष्टि मीलो द्वारा गढ़ी गई वेनस की मूर्ति पर पड़ी। कला और सौन्दर्य दोनों से ही मैं बहुत हद तक अपरिचित रहता आया था, इसमें सन्देह नहीं। पर ये दोनों ज्ञान की अपेक्षा भाव के द्वारा अधिक अच्छी तरह समझे जाते हैं। सौन्दर्य का पैमाना हर देश का अलग-अलग ज़रूर हो सकता है, पर फिर भी जो सौन्दर्य किसी राष्ट्र की सुन्दरता का प्रतीक सरीखा बन जाता है, उससे किसी भी देश या जाति का आदमी अपने को प्रभावित होने से शायद ही रोक सकता है।

'यह क्या किसी फ्रेंच कलाकार का गढ़ा हुआ है?' मैंने उससे पूछा।

'इसमें तुम्हें सन्देह ही क्यों हो रहा है?'

'कल्पना के सौन्दर्य को ऐसा साकार जीवित रूप दे दिया है कि इसे सामने देख कर भी इस पर हठात् विश्वास नहीं होता।'

'अभी फ्रेंच आँखों से देखे जाने वाले स्फटिक से निर्मल सौन्दर्य के साथ तुम्हारा परिचय ही कहाँ हुआ है?'

हम आगे बढ़े। वह मुझे फ्रांस के प्रख्यात चित्रकारों के मशहूर चित्र दिखाने लगी। मैं उनमें से किसी से भी परिचित नहीं था। वे इतने क़िस्म के थे कि सब-के-सब एक ही जाति द्वारा तैयार किये गये हैं इस पर विश्वास करना कठिन हो रहा था। अगर किसी चित्र में जीवन आनन्द से ओत-प्रोत दिखाया गया था तो किसीमें सारा भविष्य अन्धकारमय! चौदहवें लुई के समय की चित्रकारी में नज़ाकत और शृङ्गार के साथ-साथ गहनों की प्रचुरता दिखाई गई थी।

गैलेरी के आख़ीर में नदी-किनारे की ओर जो तसवीरें लगी थीं वे अनजान में ही मुझमें परिवर्त्तन पैदा करने लगीं। उनमें कल्पना के

भी परे का सौन्दर्य कूची और रंग द्वारा स्थूल आँखों के सामने रख देने की चेष्टा की गयी थी।

खिड़की से मैंने बाहर झांक कर देखा। सीन के उस पार पेरिस का रंग फीका हो चला था। उसमें और जेनेट के रंग में अद्भुत समानता थी। मैं चौंक पड़ा। अपने सामने के चित्र पर विश्वास करना मेरे लिये कठिन हो उठा। यह सौन्दर्य इसी पृथ्वी पर से पकड़ कर मेरे सामने के कैनवैस में जकड़ कर बन्दी कर रखा गया है, इसे समझ सकना मेरे लिये मुश्किल हो रहा था। पर उसे अस्वीकार करने का भी चारा नहीं था।

आधुनिक फ्रेंच कलाकारों की कोई भी कृति मेरी समझ के बाहर की चीज़ थी। उनमें सौन्दर्य की हत्या के सिवा मुझे और कुछ नहीं दिखाई दिया। उन चित्रकारों को शायद भद्देपन के प्रदर्शन में ही आनन्द आता था।

'पुराने फ्रांस ने सौन्दर्य में जो प्राण भर दिया था उसे इन्होंने मार डाला है।' मैंने बार बार ज़ोर देकर अपनी संगिनी से शिकायत की—'इन्होंने सौन्दर्य का जीवन, फ्रांस का जीवन नष्ट कर दिया है। आखिर ये जीवन से इतना डरते क्यों हैं? अरे, ये तो स्वयं मुर्दा बन चुके हैं और अब दूसरे को भी मुर्दा बनाने चले हैं। सारे संसार को ही मुर्दा बना डालने की इन्होंने कसम खा ली है! क्या ये भी इसी फ्रांस के कलाकार हैं?'

'हां, ये भी फ्रेंच हैं!' मेरी संगिनी ने उत्तर दिया। वह मेरे क्रोध का कारण नहीं समझ पा रही थी। मैं भी उसे यह भली भांति समझा पाने में असमर्थ था।

'चलो, चलें!' कह उसका हाथ खींचता मैं लुव के बाहर निकल आया। जिस फ्रांस से मेरा परिचय हुआ था, जिसे मैं प्यार करता

था और किसे अब घृणा करने लगा था, आदि बातें बड़े ही जटिल और उलझे हुए रूप में मेरे दिमाग़ में उठने लगीं। मुझे झुँझलाया हुआ देख मेरी संगिनी ने मुझे सान्त्वना देने के लिये कहा—

'मैं भी चित्रकारी नहीं समझ पाती। अगली बार अपने एक जरमन दोस्त से तुम्हारा परिचय करा दूँगी, वह इन चित्रों से तुम्हारी पूरी वाकफ़ियत करा देगा।'

'मुझे और किसी वाकफ़ियत की ज़रूरत नहीं है,' मेरे मुँह से निकला—'अब मैं तुम फ्रांसीसी लोगों का चरित्र ठीक ठीक समझने लगा हूँ! तुम सब-के-सब बड़े धोखेबाज़ हो!'

'नहीं, नहीं, निराश मत होना—' वह मेरा हाथ पकड़ कर मुझे समझाने लगी। पर अब मुझे वही चित्र मालूम हो रही थी और लुव में देखे हुए चित्र ही यथार्थ फ्रेंच नर-नारी!

सेलीन कभी-कभी अपने यहां संगीत का आयोजन किया करती। इसके लिये वह संगीत विद्यालय में अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों को विशेष रूप से निमन्त्रित करती। साथ ही उसके कलाकार, लेखक और फ़ौजी विभाग के दोस्त भी वहां जुटा करते।

मुझे भी उन मौकों पर उसने कई बार निमन्त्रित किया था। वहां के संगीत से अधिक दिलचस्प मुझे उस इकट्ठी हुई मंडली की बातें लगतीं। उनमें भी सबसे अधिक फ़ौजी विभाग के लोग मेरा ध्यान आकर्षित किया करते। इनमें भी मैंने साधारण फ्रेंच जनता के ही समान हार मान लेने, अन्यमनस्क रहने और अपने काम में लापरवाह होने की प्रवृत्ति देखी।

जब मैं इसे फ्रांस को पतन की ओर ले जाने वाला साबित करने लगता तो मेरे मित्र कहा करते—

'अजी, तुमने अभी असली फ्रांस देखा ही कहां है ? हमारा फ्रांस ऐसा कच्चा नहीं कि ज़रा से धक्के में वह चूर-चूर हो जाय। हज़ार साल से अधिक समय से हम कार्य-संलग्न रहते आये हैं, नयी सृष्टि करते रहे हैं। गौथिक ढंग की कला में हम अपना स्वरूप झांकते रहे हैं और उसीके द्वारा संसार को अद्भुत सौन्दर्य से परिचित कराते रहे हैं। यह सौन्दर्य-प्रेम हम लोगों की नस-नस में घुस गया है। दुनिया जब उसे भूलने लगती है तो हम क्रांति मचाते हैं! तुम्हीं बताओ, हमारे यहाँ से बड़ी क्रांति संसार ने और कहीं देखी है ?

'तुम आज हमारी तुलना में जरमनी की बड़ी फ़ौजी तैयारी देख कर कहते हो कि हम पतन की ओर जा रहे हैं। बीसों बार हमारे राष्ट्र की अग्नि-परीक्षा होती रही है, पचासों बार हमें देख कर लोग सोचते रहे हैं, हम अब नष्ट हुए, अब नष्ट हुए—पर प्रत्येक बार ही तो हमारा राष्ट्र आग से बाहर निकलता रहा है; प्रत्येक बार ही तो हम फिर से जीवित होते रहे हैं, कभी भी तो हम नष्ट नहीं हुए!

'पर पतन किसे कहा जाता है इस पर तो एक बार विचार करो! हम फ्रांस में बसते हैं इसीलिये इस भूमि को प्यार करते हैं, पर क्या इसीलिये हम अपनी अन्तरात्मा तक बेच डालें ? क्या उसे बेच डालना पतन नहीं है—शायद वह और भी बड़ा पतन है! हम फ्रेंच लोगों की प्रवृत्ति ही हो गयी है कि मिट्टी के बनिस्बत हम मनुष्य की अन्तरात्मा की आवाज़ का मूल्य अधिक समझते हैं। चाहने पर भी शायद हम उस आवाज़ का मूल्य कम नहीं आंक सकते। उसके मूल्य को आंकना ही हमारे लिये सभ्यता के माप का पैमाना है। उसीसे नापने पर हम अपने को इतना ऊँचा पाते हैं। इसीका गर्व कर हम सारे यूरोप में सर ऊँचा करके चलते हैं।'

अपने फ्रेंच मित्र की बातों में मुझे फ्रांसीसी विद्वत्ता का परिचय

मिल रहा था; पर वही विद्वत्ता तो उन्हें दुर्बल बनाती भी नज़र आई। मुझे अपने देश की याद आ गई। मैंने कहा—

'हमारा देश भी इसी मनुष्यता की आवाज़ का पाठ पढ़ता रहा है और शायद इसीलिए मृत्यु भी उसे चारों ओर से घेरती रही है।'

'हर एक राष्ट्र मरता है, पर उस आवाज़ को बुलन्द करता हुआ जो मरता है, वह फिर से जी उठता है। फ्रांस जरमनों के पाँवों तले रौंदा जा सकता है पर जिस आवाज़ को वह बुलन्द करता हुआ रौंदा जायगा उसीके आधार पर वह फिर से जगेगा, फिर से ऊँचा होगा और सभ्य राष्ट्रों के बीच ऊँचा स्थान ग्रहण करेगा!'

मैं अपने मित्र की बातों से सहमत नहीं था। उनमें मुझे फ्रांसीसी साम्राज्यवादियों की उपनिवेशों के लोगों के रक्त-शोषण को जायज़ करार देने वाली आवाज़ सुनाई दी। मैंने विरोध किया। मेरे संगीत-प्रेमी मित्र ने मेरी पीठ पर हाथ रखते हुए कहा—

'इसीलिए तो कहा कि अभी असली फ्रांस को तुमने समझा नहीं नहीं है। तुमने शायद अभी ऐसे फ्रेंच कम देखे हैं जो अपने आनन्द के लिए नहीं बल्कि अपने विश्वास को, मनुष्यता में अपने विश्वास को, दृढ़ बनाये रखने के लिए जीवित रहते हैं। हमारे पेरिस में जितना अन्धकार है उतना ही उजाला भी है।'

उस दिन शाम को संगीत के साथ साथ ठेठ पेरीसियन नृत्य दिखाने का भी आयोजन किया गया था। सेलीन स्वयं प्रख्यात नर्तकी आना पावलोवा के ढङ्ग पर 'हंस की आत्महत्या' नृत्य दिखाने लगी। मैं उसे ग़ौर से देखने लगा।

उसकी विशेष प्रकार की नृत्य-भंगिमा देख कर एकाएक बहुत सी बातें स्पष्ट हो गयीं। सिर्फ़ सेलीन के ही चरित्र की नहीं, बल्कि

फ्रांसीसी चरित्र की बहुत सी बातें समझ में आने लगीं। मैं अपने आप से कहने लगा—

'असल में फ्रेंच जाति कलाकारों की जाति है। इनसे अधिक कला को प्यार करना संसार की और किसी जाति ने शायद ही सीखा होगा। पर यह फ्रेंच प्यार अवश्य ही औरतों के ढङ्ग का प्यार है। कला को उसकी सीमा पर पहुँचा कर उसका पूरा रस इन्होंने चूस लिया है। तृप्त हो जाने पर भी इस जाति में इतना जीवन बच रहा था कि नवीनता की चाह नहीं मिट सकी। जब पहले की भाँति इसे नवीनता नहीं दिखाई दी तो इसने संहारक रूप धारण किया। अपने आपको ये लोग निकम्मा समझने लगे। ये स्वयं निकम्मे बनने लगे और साथ ही दूसरों को भी इन्होंने निकम्मा बनाना शुरू किया। कला के जीवन को इन्होंने पहले इतना अधिक प्यार किया था कि अब उसे जहाँ कहीं भी देखते हैं, उसे नष्ट करने के लिए तुल जाते हैं। इन्होंने कला को भी भ्रष्ट करने की कोशिश की, लेकिन शायद उतनी ताक़त ही इनमें नहीं रह गई है। नतीजा यह हुआ है कि ये स्वयं अपने आपको ही मृत्यु-शय्या पर पड़ा देखने लगे हैं।'

हंस-मृत्यु नृत्य में मुझे फ्रेंच जाति का कला के प्रति इसी ढङ्ग का प्रेम दिखाई दिया। फ्रेंच जीवन इसी प्रेम का सफल, असफल और मिश्रित स्वरूप दीखने लगा।

नाच के बाद सेलीन ने मेरे पास आकर मुझसे पूछा—

'क्यों? तुम्हें यह नृत्य अच्छा नहीं लगा?'

'आत्महत्या मुझे बिलकुल ही पसन्द नहीं। ऐसे सुन्दर हंस ने आत्महत्या की, इसके लिए मैं उसे कभी भी क्षमा नहीं कर सकता।'

'अहङ्कारी! तुम अहङ्कार से भरे हो! उसके आत्मत्याग में तुम्हें कोई आदर्श ही नजर नहीं आया?'

'मैं तो जीवित रहने के आदर्श को ही सबसे बड़ा मानता हूँ।'

'स्वार्थी कहीं के! तुमने प्यार करना सीखा ही नहीं।' कह कर अगले नृत्य के लिए वह अपने आपको प्रस्तुत करने लगी।

सेलीन से मेरी दोस्ती जितनी जल्दी घनी हो आई थी, लगभग उसी रफ्तार से वह ठण्डी भी पड़ने लगी। यह भी हम लोगों के अनजान में ही घट रहा था। हम दोनों एक-दूसरे से बात-बात में चिढ़ते और ऊबते दिखाई देने लगे। शुरू-शुरू में हम इसे स्वीकार नहीं करना चाहते थे, इसलिए अक्सर झगड़ जाने के बाद समझौता कर लिया करते थे और फिर पहले का सा सम्बन्ध कायम रखने की चेष्टा करते थे। पर फिर भी सम्बन्ध धीरे-धीरे टूटता ही जा रहा था। मेरी अपनी कठिनाई यह थी कि मैंने अपनी कल्पना में उसे जैसा देखा था, व्यवहार में वह वैसी नहीं उतरी; और उसकी शिकायत यह थी कि पहले की तरह अब मैं रोज़ नया नया दीखते रहने में असमर्थ होता जा रहा हूँ।

सन्ध्या समय किताब की दूकान पर कई फ़ौजी अफ़सर भी आया करते थे। उनमें से एक मोटे-ताज़े लेफ्टिनैंट के साथ सेलीन बड़ी देर तक बातें किया करती। पर अफ़सर के पीठ पीछे सेलीन उसे 'बुलडॉग' कह कर याद करती और उसके सम्बन्ध में घृणास्पद शब्द व्यवहार करती। पर एक दिन उसी अफ़सर ने दूकान से जाते समय सेलीन को चूम कर विदा ली। सेलीन मुसकराती रही मानो कोई ख़ास बात हुई ही नहीं।

'तुम्हारी उस बुलडॉग से इतनी घनिष्ठता कब से हुई?' आश्चर्य में आकर मैंने बाद को पूछा।

'बहुत दिन से।'

'लेकिन तुमने इसका ज़िक्र तो कभी मुझसे किया नहीं था ?'

'मेरे इतने ख़रीददार हैं कि उन सबकी याद भी मुझे नहीं रहती।' मुसकराते हुए उसने कहा—'लेकिन तुम्हारे बुरा मानने का तो इसमें कोई कारण नहीं ?'

मन-ही-मन मैंने जवाब दिया—'तुझे पता नहीं, तूने मुझे कितना बड़ा आघात पहुँचाया है।'

मेरा सिर भारी हो आया। उसकी अस्थिरता और चञ्चलता ने मुझे चिन्तित बना दिया। उसके सम्बन्ध में अपने आपको ठगते रहने में मुझे बहुत अधिक मानसिक परिश्रम करना पड़ता था। मैं उसमें पुराना-नया, सब मिला हुआ सारा फ्रांस देखना चाहता था, उसमें सौन्दर्य पाने की आशा रखता था। वही सौन्दर्य फीका पड़ते देख मुझे बड़ी ही वेदना होती।

मुझे एकाएक इस प्रकार गम्भीर देख वह मेरे कन्धे पर हाथ रख मुझे समझाती। मुझे भी मालूम पड़ता जैसे मेरे जीवन में पहले कभी भी ऐसा मौका नहीं आया था जब किसीने मेरे लिए इतनी फ़िक्र और सहानुभूति दिखलाई हो।

पर साथ ही, मेरी कल्पना में, वह मुझसे बहुत दूर चली गई थी। वह दूर, और भी दूर, दूसरी ही दुनिया की ओर जाती हुई दिखाई दे रही थी। थोड़ी देर में उसका चेहरा पेरिस के कुहासे में लुप्त हो गया। फिर उसकी कोई भी बात मुझे सुनाई नहीं दी।

उस दिन रात को उससे अलग होते समय मैंने और दिन की भाँति 'ओ रिवुआर' (पुनः मिलने तक) न कह कर 'आडियो' (विदा) कहा। उसे आश्चर्य नहीं हुआ। और दिन की ही भाँति उसने मेरे दोनों हाथ कस कर दबाये, उन्हें अपनी छाती से लगाया। सर ऊँचा कर थोड़ी देर चुपचाप खड़ी रही। नाराज़गी दिखाई। मेरी बेवकूफ़ी पर हँसी।

फिर अभिमान भरे क़दम रखती हुई बिना मेरे 'आडियो' का उत्तर दिये घर के भीतर चली गई।

मेरे सर का भार पाँवों तक व्याप गया था। वे बड़े ही भारी लग रहे थे। मैं उन्हें घसीटता किसी तरह खींच ले चला।

किधर और किस उद्देश्य से जाना है, यह बिना सोचे ही मैं आगे बढ़ता जा रहा था। सेलीन से बिदा लेना सारे पेरिस, सारे फ्रांस से बिदा लेने की तरह लग रहा था। सब कुछ सुनसान, वीरान पड़ा हुआ दिखाई देने लगा। पेरिस की रोशनी का संगीत नष्ट हो चुका था।

'ये फ्रेंच अपना चेहरा कीचड़ से ही सना क्यों देखना चाहते हैं?' इसका उत्तर हज़ार ढूँढ़ने पर भी मुझे नहीं मिलता था।

सबेरा होते होते मैंने अपने को फिर से सीन-किनारे पाया। बगल के एक मकान में पिआनो बज रहा था। सामने के एक तख्ते पर बड़े अक्षरों में लिखा था—'वागनर फ़ेराइन'। यह पेरिस में रहने वाले जरमन संगीतज्ञों के इकट्ठे होने का स्थान था। उस मण्डली के कई सदस्यों से सेलीन के यहाँ मेरा परिचय हुआ था। मैं भीतर घुसा।

पिआनो बजाने वाले से मैं परिचित था। वह जरमनी के राइन प्रदेश का रहने वाला था। मुझे दरवाज़े पर खड़ा देख वह मेरे पास आया।

'खड़े क्यों हो? आओ, प्रार्थना करो!' उसने कहा।

'किसकी प्रार्थना?' मैंने पूछा।

'इस उगते हुए दिन की, और किसकी?'

'मुझे इसमें कोई सौन्दर्य नहीं दिखाई देता।'

'काल्पनिक सौन्दर्य का सिद्धांत छोड़ो। जीवन के सौन्दर्य को देखो। उसे प्यार करो।'

वह अधूरा छोड़ा हुआ संगीत पिआनो पर जा पूरा करने लगा। शायद यह कोई जगाने वाला संगीत था। मैंने मन-ही-मन सोचा—

'अभी वे सो रहे हैं, पर जगेंगे। मैं भी जगूंगा।'

'यह हमारे राइन किनारे का संगीत है,' जरमन ने पिआनो का नोट उलटते हुए कहा—'अगर जीवन चाहते हो तो जाकर उसमें डुबकी लगाओ।'

'जाता हूँ।' मेरे मुंह से सहसा निकल पड़ा।

पाँव अब भी भारी मालूम हो रहे थे। पर धीमे, किन्तु बड़े ही स्पष्ट स्वर में, दिल कह उठा—

'इस निराशा से ही जीवन का एक नया पृष्ठ आरम्भ होगा।'



तृतीय खण्ड

राइन

राइन। जरमनों के पिता राइन*। मालूम नहीं कितनी महान आत्माओं को अपना गाना सुना कर इन्होंने बड़ा किया, उन्हें शक्ति दी, खिलाया और अपनी गोद में ले-ले कर उछाला। इनका क्षितिज विस्तृत है। दृष्टि बहुत दूर जा पहुँची है। मन वहाँ की नीलिमा में तैरने लगता है; जो सूत्र वह लेकर चला था वह रास्ते में ही छिन्न-भिन्न हो जाता है, वह अपने आपको भूल जाता है।

मैं चीड़ के वन में अपना रास्ता भूल गया था। भटकता हुआ उस चोटी पर आ पहुँचा। नीचे का रास्ता ढलुआं था, पर वह भी चीड़ के वन में होकर जाता था। नीचे का सब कुछ हरियाली में स्नान कर रहा था। पिता राइन का दक्षिण-पूर्व से आने और उत्तर-पश्चिम की ओर बहते जाने का प्रशस्त, विस्तृत, नीली धारियों वाला रास्ता दोनों दिशाओं में बहुत दूर तक दिखाई देता था। दोनों ओर के पहाड़ पिता राइन के ऊपर छाता लगाये से किनारे पर खड़े थे।

मैं नीचे उतरा। नदी किनारे की एक चट्टान पर जाकर बैठ गया। मेरे पास एक अकेला ठूंठ ओक-वृक्ष प्रशियन फ़ौज के सिपाही

---

*'गङ्गा मैया' की तरह जरमनी में 'पिता राइन' हैं।

जैसा सीना तान कर खड़ा था। उसकी शाखाओं के फूटने के स्थान पर क्रॉस से बिंधे क्राइस्ट की काठ की मूर्ति झूल रही थी। उनकी छाती से, कीलें घुसी रहने के कारण, रक्त निकल रहा था।

मेरी दृष्टि कभी नदी, कभी आकाश और कभी अंगूरों के बाग़ की ओर जाती। छप्-छप् कर प्रवाह में बहता हुआ एक स्टीमर मेरी ही ओर आ रहा था। किनारा पास आ जाने पर पैंतरा बदल वह 'जेटी' से लग गया। पानी के बुलबुलों की तरह मचलते हुए कुछ लोग उसमें से बाहर निकलने लगे। उनके पांवों में ऊँचे-ऊँचे बूट जूते थे। ब्रीचिस के ढङ्ग के नीले पैंट और बिना टाई के शर्ट उन्होंने पहन रखे थे। उनके सर पर छोटी, पर रंग-बिरंगी धारियों वाली टोपियां थीं। दूर से ही उन्हें पहचान लिया जा सकता था कि वे कालेजों में पढ़ने वाले विद्यार्थी हैं। वे मोटे स्वर में गान करते हुए और उसीके ताल में पांव पटकते हुए एक ओर चले गये।

सूर्यास्त हो जाने पर मैं अपने स्थान से उठा। नगर की ओर से 'वाल्ज' (घूम घूम कर नाच करने के समय) के बाजे की आवाज़ आ रही थी। मैं उसी ओर चला। रास्ता नदी के किनारे किनारे होकर जाता था। मेरे बाईं ओर राइन नदी का विशाल पुल था।

आगे बढ़ने पर मुझे नदी किनारे कई सुनहले बालों वाली सुन्दर जरमन लड़कियां टहलती हुई दिखाई दीं। राइन की लहरों में सुर मिला कर गुनगुनाते समय वे हाईने की 'लोरेलाई' जैसी दीखती थीं। उनके चुम्बक की ओर खिंचने से शायद ही कोई माझी अपनी नौका को रोक पाता होगा। मेरे खिंचने से पहले ही शायद उन्होंने पहचान लिया कि मैं विदेशी हूँ। अपने मधुर स्वर में मेरी ओर देख बुदबुदाते हुए उन्होंने कहा—

'गुतेन आबेन्द !'

यह जरमन नमस्कार मेरे कानों से टकरा कर रह गया। उनका दरवाज़ा अब तक इस ज़बान के लिये बन्द था।

पहाड़ों की सीढ़ी लगा कर चाँद ऊपर छत पर पहुँच गया था। अंगूर की लताएँ पत्थर की दीवारों को फांदती हुई चोटी तक जा पहुँची थीं। मैं बाज़ार लगने के तिकोने स्थान पर पहुँच गया था। मेरे सामने नगर का केन्द्र—'पुराना फ़व्वारा'—था। उसीके एक ओर बाग़ीचे में नाच का बाजा बज रहा था। उधर की स्निग्ध हवा आकर गाल और ठुड्डियों को चूम जाती। अंगूर के रस से भीगी सुगन्ध को हृदय तक पहुँचते देर न लगती; वह तुरंत ही नस-नस को सींचना शुरू कर देती; बात-की-बात में सब कुछ लहराने लग जाता।

फ़व्वारे को एक आदमी बड़े ध्यान से देख रहा था। चेहरे के हाव-भाव और गति-विधि से वह बिलकुल नौजवान जान पड़ता था; पर उसकी उम्र बुढ़ापे के नज़दीक पहुँची हुई मालूम हुई। उसका क़द ऊँचा था। डील-डौल भी लम्बा-चौड़ा था; उम्र के ख़याल से वह अधिक तन कर चलता दिखाई देता था। उसके पांवों में मोटे तले का बूट जूता था। हाथ का बुना नीले रंग का मोटा मोज़ा घुटने तक पहुँच रहा था। उसके ऊपर 'प्लस-फ़ोर' और पतले कालर वाला कोट था। सर के बाल आधे सफ़ेद हो गये थे। दाढ़ी भी खिचड़ी, अंग्रेजी अक्षर v के आकार की तरह, कतर कर नुकीली बनाई हुई थी। ललाट की रेखाएँ पिता राइन की ही तरह प्रशस्त और गम्भीर।

मैंने उन्हें फ्रेंच भाषा में नमस्कार किया। वे मेरी ओर ग़ौर से देखने लगे। उनकी आँखें एक क्षण में ही चमड़े और मांस को भेद कर हाड़-हाड़ और नस-नस तक को पहचान लेने की कला में अत्यन्त कुशल जान पड़ीं।

'विदेशी ?' उन्होंने पूछा।

'हाँ।'

'विद्यार्थी ?'

'नहीं, अब तक तो नहीं।'

'पर अध्ययन के इरादे से ही जरमनी आये ?'

'जी हाँ।'

'बड़ी अच्छी बात है। तब आप मेरे विद्यार्थियों के इस जलसे में क्यों नहीं भाग लेते ?'

'मैं उनसे परिचित नहीं।'

'मैं आपका उनसे परिचय करा दूँगा।' मुसकराते हुए उन्होंने कहा और मेरा हाथ पकड़ कर खींच ले चलने के लिये आगे आये।

'लेकिन अभी आपसे भी तो मैं परिचित नहीं।'

'इस समस्या को हल करना तो कोई बड़ी बात नहीं—' कह कर उन्होंने हाथ मिलाते हुए कहा—'प्रोफ़ेसर राइनहार्ट।'

वे मुझे विद्यार्थियों की मण्डली की ओर खींच ले चले। नाच उस समय तक ख़त्म नहीं हुआ था। हम लोग एक मेज़ के आमने-सामने की दो कुर्सियों पर जा बैठे।

'आप शायद हमारे जरमनी के विद्यार्थियों की इस प्रकार की उत्सव मनाने की प्रणाली से परिचित नहीं ? हम लोग हाइडिलबेर्ग से आ रहे हैं। वहां के विश्वविद्यालय का नाम आपने सुना होगा। हम लोग ज्यादातर अपनी पुरानी जरमन सभ्यता ही अधिक पसन्द करते हैं, इसीलिये आप देख रहे हैं कि हम लोगों की पोशाक मध्यकालीन युग की सी है। दूसरी विशेषता हमारे इस ख़ास दल की यह है कि हम इस बीसवीं शताब्दी में भी प्रकृति से अपना सम्बन्ध पहले की ही तरह बनाये रखना चाहते हैं, इसीलिये हम लोगों ने अपने

दल का नाम रखा है—'प्रकृति के दोस्त'। इस जमात में मेरी ही उम्र सबसे अधिक है, इसलिये मैं ही सभापति चुना गया हूँ। यहाँ की और सब विशेषतायें, अब आप हमारे बीच रहेंगे तो, आपको स्वयं ही मालूम हो जायेगी।'

वह नाच खत्म हुआ। विद्यार्थी अपने अपने स्थानों पर आ बैठे। प्रोफ़ेसर ने उठ कर कहा—

'मुझे इस उत्सव के मौके पर आप लोगों का परिचय एक हिन्दुस्तानी से कराते हुए बड़ी ख़ुशी हो रही है। हिन्दुस्तान के साथ हम जरमन लोगों का बहुत पुराना सम्बन्ध रहा है। हम लोग एक ही जाति, हिन्दो-जरमन जाति के हैं। दूरी के कारण हम लोग एक-दूसरे से बहुत अपरिचित से बन गये हैं। अपने नये मित्र के हमारे बीच आ जाने पर मैं आशा करता हूँ कि हम लोगों के हिन्दो-जरमन जाति के पुनः समीप आने में सहायता मिलेगी।'

विद्यार्थियों ने तालियां पीटीं। पांव पटक पटक कर उन्होंने अपना आनन्द प्रदर्शित किया। फिर मेरे हाथ में भी जवानी की तरह उमड़ता हुआ बिअर का गिलास दे सब-के-सब अपना-अपना गिलास हाथ में ले उठ खड़े हुए। प्रोफ़ेसर ने अपना गिलास ऊँचा कर कहा—

'प्रोस्ट—'

'प्रोस्ट,' सारी मण्डली ने उत्तर दिया।

मैं उनकी जमात में शामिल कर लिया गया।

वह मण्डली कृत्रिमता से दूर रहने वाली थी। उसका सौन्दर्य पहाड़ और झरनों के समान स्वाभाविक था। उनकी बोली, उनकी गति, उनकी हँसी प्रकृति के ही समान सरल और किलकती हुई थी। मुझे उनके बीच रहने में बड़ा आनन्द आ रहा था। उनकी तरह

मौज करने, हल्ला मचाने और नाचने में मुझे बड़ा मज़ा आने लगा। उनके हल्ला करने और गला फाड़ कर चिल्ला चिल्ला कर गाने का ढङ्ग मैं बड़े ध्यान से देखता और अपनाने की कोशिश करता।

उस मण्डली के नियमानुसार थकावट महसूस होने पर बिअर पीकर उसे दूर करने की कोशिश की जाती। बाजा बजाने वाले भी बिअर से ही अपने भीतर ताज़गी लाते। पर इतना होने पर भी सब काम क़ायदे से चलता। सब लोग अपने आपको काबू में रखे रहने में अद्‌भुत ढङ्ग की क्षमता का परिचय देते। वहाँ न तो किसीके मुँह से कोई अश्लील शब्द या मज़ाक निकलता और न किसी तरह का हुड़दंग या तूफ़ान उठता; आपस में झगड़ने और मार-पीट करने की बात तो बहुत दूर रही!

उस गाँव के रहने वाले भी आकर उस उत्सव में भाग लेने लगे थे। बागीचे के भर जाने पर वे रास्ते और बाज़ार लगने वाले तिकोने स्थान पर इकट्ठे होने लगे। विद्यार्थियों के उत्सव को उन्होंने अपने निजी गाँव का उत्सव बना लिया था। गाँव की लड़कियाँ बिना किसी हिचक के विद्यार्थियों के साथ हिलतीं-मिलतीं और नाचतीं! अपने-पराये, दर्शक, अतिथि—किसी किस्म का भी भेद नहीं रह गया था। युवा-युवतियों का एक-दूसरे को आलिङ्गन करना, प्रेम से मिलना और झगड़ा करना सब बड़े स्वाभाविक ढङ्ग से चल रहा था। सब कुछ उनकी बातों, दृष्टि और हँसी के समान ही निर्दोष था। इसी निर्दोष भाव के रहने के कारण उस मण्डली में हिचक या सामाजिक दृष्टि से किसी किस्म के अन्याय की गुञ्जायश नहीं रह गई थी।

प्रोफ़ेसर राइनहार्ट भी अपने विद्यार्थियों के समान ही उछलते-कूदते और नाचते-गाते। उनकी एक विशेषता यह थी कि जब किसी की

मेज़ पर का अथागी लोटे जितना बड़ा बिअर का गिलास ख़ाली होने लगता तब वे तुरन्त ही पुकारते—'हाना ! अरी हेनखेन !'

एक सुन्दर जरमन कुमारी बिअर से भरा गिलास लेकर तुरन्त ही हाज़िर होती। उसकी आँखें आनन्द से छल्-छल् करती होतीं। मालूम पड़ता, जैसे उसीने वहां की सारी मण्डली को उत्सव मनाने के लिए अपने घर निमन्त्रण दिया है और इसीलिए इतने मनोयोग के साथ लोगों के पास बिअर पहुँचा रही है।

जब उसकी देख-रेख वाली मेज़ों पर के गिलास बिअर से भरे रहते तब वह एक कोने में जाकर खड़ी हो जाती। उसकी मुसकान बहुतों को अपनी ओर खींचती रहती थी। कभी-कभी कोई विद्यार्थी आकर उसे घूम-घूम कर नाचने वाले नृत्य के ताल में दो-चार बार घुमा कर यथास्थान पहुँचा जाता।

यह पीना, गाना और नाचना सबेरा हो जाने तक चलता रहा। हाना की आँखें मुझे बराबर अपनी ओर खींचती रही थीं।

जहाँ से राइन का दृश्य ख़ूब सुन्दर दिखाई देता था, वहीं हम लोगों ने भोजन किया। फिर पहाड़ी पर चढ़ना शुरू किया। चीड़ के वन में सन्नाटा छाया था। छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़ों के फुदकने और ज़ी-ज़ी-ज़ी का लम्बा सुर अलापते रहने की आवाज़ सुनाई देती थी। उस वन के रखवाले का बड़ा ऐल्सेशियन कुत्ता हमारे आगे-आगे चुपचाप हमें रास्ता दिखाता चल रहा था। वह शायद यह समझे हुए था कि हम लोग शिकार के लिए निकले हैं। ख़रगोश की आहट पाते ही वह चौकन्ना हो अपने कान खड़े कर लेता और उसकी दिशा का अन्दाज़ करने लगता। कभी-कभी पत्ते और झाड़ियों को सूँघता हुआ दूर तक जाता और फिर वापस लौट आता। एक बार पत्तों के बीच छाती

सटा कर वह दम साध कर लेट रहा। हम लोग भी जहाँ थे वहीं खड़े हो गये। थोड़ी देर प्रतीक्षा करते रहे। प्रोफ़ेसर राइनहार्ट ने धीमे स्वर में कहा—'नहीं, कुछ भी नहीं है।' ठीक इसी समय मुश्किल से दस कदम की दूरी पर एक झाड़ी से सर-सर करता हुआ एक ख़रगोश निकला और दूसरी झाड़ी की ओर जाने लगा। लड़कों ने एक स्वर में कहा—'हो पला!' लड़कियाँ ताली पीटने लगीं। चीड़ वन की रखवाली करने वाले कुत्ते को बड़ा गुस्सा आया। वह झाँऊ-झाँऊ करता हुआ भूकने लगा। उसका गुस्सा ख़रगोश की अपेक्षा उसे भगा देने वालों, हँसने और ताली पीटने वालों पर अधिक था।

प्रोफ़ेसर राइनहार्ट एक-ब-एक सबके आगे आ कुत्ते के भूँकने की नकल करने लगे। कुत्ता डर कर दुम हिलाता हुआ एक ओर चला गया। इस समय तक हम लोगों की मण्डली ख़रगोशों और कुत्तों के दो दलों में बँट चुकी थी। अधिकांश संख्या में लड़कियाँ ही ख़रगोश बनी थीं, लड़के कुत्ते बन उनका पीछा करने लगे।

उस खेल में भाग लेने वाले सब-के-सब बच्चे सरीखे दीख रहे थे। ठीक जो वे भीतर थे उसी रूप में प्रकट हो रहे थे। अपने को बड़ा अथवा और कुछ साबित करने की न तो किसी की प्रवृत्ति थी और न उसकी कोई आवश्यकता ही महसूस कर रहा था। प्रोफ़ेसर राइनहार्ट में तो प्रोफ़ेसर की अपेक्षा गुरुजी की पाठशाला में प्रथम-प्रथम भर्ती हुए शिशु के स्वभाव की अधिक झलक थी।

उस वन के कीड़े-मकोड़ों की आवाज़ की नकल करते-करते हम लोग फिर राइन किनारे आये। पूरे गाँव की परिक्रमा की गई। पिछली रात की परिचित सूरतें दिखाई देने पर उनकी ओर अभिनन्दन सूचक इशारा किया जाता।

रेलवे स्टेशन अब भी दूर था। किसी को थकावट नहीं आई थी। मैं प्रोफ़ेसर राइनहार्ट की बगल-बगल चल रहा था। मेरी ओर देख उन्होंने पूछा—'तो आप भी हमारे साथ हाइडिलबेर्ग चल रहे हैं ?'

'यदि सम्भव हुआ !'

'सम्भव क्यों नहीं होगा ? वहाँ अपने हिन्दो-जरमन पुस्तकालय में मैं आपको कुछ काम दे दूँगा, आप साथ-साथ विश्वविद्यालय में भी अध्ययन कर सकेंगे।'

कृतज्ञता प्रकट करने के लिए मैंने अपना हाथ आगे बढ़ाया। उन्होंने उसे कस कर दबाते हुए कहा—

'हमारी मित्रता तो कल शाम को ही स्थापित हो चुकी है।'

उनकी नीली आँखें पिता राइन की ही तरह साफ़ थीं।

हाइडिलबेर्ग

हाइडिलबेर्ग का विश्वविद्यालय न केवल जर्मनी में ही, बल्कि यूरोप के सब देशों में इस बात के लिए प्रसिद्ध है कि वहाँ के विद्यार्थियों का जीवन बड़ा ही सरस होता है। जिन लोगों ने वहाँ पर कभी विद्यार्थी-जीवन बिताया है, उनके हृदय से इस शहर के दो स्थानों की याद कभी नहीं भूलती—नेकर नदी के तट पर पड़ी बेंचें; और महल-बाग़!

प्रेम करना और प्रेम-पाश में बँध जाना हाइडिलबेर्ग में अध्ययन करने वाले विद्यार्थी-विद्यार्थिनियों के लिए एक परम्परा सी हो गई है। नेकर नदी के तट की बेंचें प्रेमी जोड़ों से कभी ख़ाली नहीं रहतीं और इसी प्रकार महल-बाग़ की भी हरएक झाड़ी और रास्ता प्रेमी जोड़ों से भरा रहता है। वहाँ के जीवन में इतनी सरसता रहने के कारण ही विद्यार्थी उस जीवन को 'रोमांटिक लाइफ़' कहा करते हैं।

एक दिन सन्ध्या समय उस शहर में टहलने निकला। रास्ते बिजली के प्रकाश से जगमगा रहे थे। नेकर नदी के किनारे पहुँच कर एक बार सर उठाया तो देखा कि आकाश बिलकुल स्वच्छ था तथा चाँद ठीक मेरे सर पर खिलखिला कर हँस रहा था।

गेरे कुछ ही कदम आगे नेकर नदी का पुल था। सड़क के आगे किनारे के मकानों के साये के कारण वहाँ थोड़ा अँधेरा सा छाया था; पर मैं जहाँ खड़ा था वहाँ से इतना साफ़ दिखलाई दे रहा था कि पुल के किनारे लगे लोहे के रेलिंग पर हाथ टेके कोई स्त्री नीचे नदी की ओर देख रही है। स्त्री के कोट और सर की टोपी का जितना भाग मैं देख सका था, उससे अन्दाज़ यही लगा कि वह कोई युवती है। मैं उसके बिलकुल पास तक पहुँच गया; पर मेरी ओर मुड़ कर उसने देखा नहीं, शायद वह मेरे पाँवों की आहट नहीं सुन पाई थी। मैं ज्यों-ज्यों उसके पास पहुंचता जा रहा था, मेरी छाती की धड़कन बढ़ती जा रही थी। पता नहीं, क्यों? स्त्री किसी गहरे विचार में डूबी थी। मैं उससे जो सवाल करने वाला था, वह मेरे मन में ही दबा रह गया। मैं कुछ कदम आगे बढ़ गया और उसी की तरह नीचे पानी की ओर देखने लगा। अगर वह गहरी नींद में न सोती हो तो उसने इस बार अवश्य ही मेरे पाँवों की आहट सुनी होगी; पर इस बार भी उसने मेरी ओर नहीं देखा।

मुझे ऐसी भी आशंका थी कि मेरे पाँवों की आहट पाकर अथवा पुल के रेलिंग के हिलने से कहीं वह मेरी ओर बिना देखे ही किसी दिशा में तेज़ी से कदम रखती हुई न चली जाय।

हम लोग उसी तरह थोड़ी देर तक नीचे नदी की ओर देखते रहे। फिर साहस कर और तन कर खड़े हो उसकी ओर देखते हुए मैंने पूछा—

'माफ़ करेंगी। फ़्रिड—सड़क···' मैं इतना ही कह पाया था कि वह ज़ोरों से हँस पड़ी।

'आप हँस क्यों रही हैं?'—मैंने पूछा।

'आख़िर इस तरह पैंतरे बदलते हुए पूछने की क्या ज़रूरत थी? आप जैसे ही मेरे निकट आये, मुझसे यही सवाल क्यों नहीं किया?'

'लेकिन मैं आपसे परिचित तो नहीं था।'

'और अब क्या परिचित हैं?'

'जी नहीं। परिचय से मेरा मतलब.....'

'और फिर फ्रांसीसी ज़बान में क्यों?'

'मैं आपकी भाषा नहीं जानता।'

'आप क्या विदेशी हैं?'

'जी हाँ, अभी कल ही आपके शहर में आया हूँ।'

'चलिये, मुझे भी आपकी सड़क की ही ओर जाना है!'

लड़की के बोलने की भंगी मुझे पसन्द आई। कुछ कदम आगे बढ़ने पर उसने पूछा—

'आपको यह शहर कैसा लगा?......पर आप काँप क्यों रहे हैं?'

मैं अब तक चकित होकर यही सोच रहा था कि यहाँ के लोग कैसे अच्छे हैं, इनमें कितनी सज्जनता है, एक अपरिचित से रास्ता पूछा और वह मुझे घर तक पहुँचाने चल रही है। इसकी बोली कितनी मीठी है!

हम लोग बातें करते-करते आगे बढ़ते जा रहे थे। कभी-कभी उसका बायाँ हाथ मेरे दाहिने हाथ से इस प्रकार छू-छू जाता था कि मुझे जान पड़ता मानो वह मेरे हाथ में हाथ मिला कर चल रही है। कल्पना में ही एक विचित्र प्रकार की गुदगुदी सी हो उठी, मेरे रोएँ खड़े हो गये और मैं थोड़ा काँपता हुआ सा दिखाई देने लगा।

'आप काँप रहे हैं! शायद आपको सर्दी लग रही है। चलिये, जल्दी-जल्दी घर चलें।' उसने कहा।

मैं चुप रहा। जब वह मुझे उस सड़क पर ले आई जिस पर मेरा मकान था तो मैंने कहा—

'अब मैं पहले आपको आपके घर तक पहुँचा आऊँ, फिर अपने घर जाऊँगा।'

वह हँसती हुई राज़ी हो गई और बोली—'मुझे आपसे कोई भय नहीं। आप मेरे घर तक मुझे पहुँचा सकते हैं। मैं यहाँ से दूर रहती भी नहीं हूँ, हम लोग पड़ोसी हैं।' थोड़ी देर में उसका घर आ गया।

'फिर कल,' इतना कह, कस कर हाथ दबा, उसने मुझसे बिदा ली।

मैं सारी रात सड़क पर चक्कर लगाता रहा। घर लौटने की इच्छा नहीं हुई। मेरा हृदय उल्लास से भरा हुआ था और मेरे कानों में गूँज रहा था—

'फिर कल!'

उसके चेहरे पर ऐसी रौनक़ थी कि बहुत ही कम युवक उस पर आसक्त होने से अपने को रोक सकते थे। वह भी स्पष्ट ही अपनी उस आकर्षण-शक्ति से परिचित थी, इसलिए उसका चेहरा सारे संसार के ही युवकों को ललकार कर कहता हुआ जान पड़ता—

'आज़मा लो! मेरे सामने टिक नहीं सकते।'

इधर हाल में आकर मुझे उसका नाम भी मालूम हो गया था। उसका नाम था 'केटी', और जैसा कि प्रायः इस नाम की लड़कियाँ किया करती हैं, वह अपने बालों के बीच से मांग निकालती थी। जब वह हँसती थी तब उसके गालों के बीच छोटा हलका सा गढ़ा पड़ जाता था, जो एक प्रकार का केन्द्र सा बन जाता और उसके चारों ओर रेखाएँ एक प्रकार के जाल का सा आकार बना लेतीं। सचमुच ही वे युवकों के फँसाने में जाल का काम देती होंगीं।

पिछले महीनों में मेरा उससे बहुत अच्छी तरह परिचय हो गया था, इसलिए वह मेरे नाम के बदले मुझे 'काले बाल वाले' और 'तू' कह कर पुकारा करती और मैं भी उसके वासन्ती रंग के ब्लाउज़ के कारण उसे 'वासन्ती' कहा करता था।

गरमी का मौसम आने पर हम लोग एक साथ ही नदी में नहाने जाया करते। वहाँ युवा-युवती एक ही घाट पर केवल स्नान ही नहीं, बल्कि जी भर कर जल-क्रीड़ा भी कर सकते हैं। उस मौसम में नदी-किनारों का दृश्य बिलकुल बैलेट-नृत्य के रूप में नाटक सा दीखता है, पर इसमें स्वाभाविकता रहने के कारण यह और भी अधिक मनोरम होता है। युवा-युवती एक साथ तैरते हुए नदी के दूसरी ओर जा पहुँचते हैं: कुछ लोग बीच में ही एक-दूसरे की ओर गेंद फेंकने लगते हैं; कई किनारे पर ही पानी में शीर्षासन करने लगती हैं; कुछ लोग एक-दूसरे को डुबाने का प्रयत्न करते हैं। लड़कियाँ चिल्लाने लगती हैं—

'शरम नहीं आती? गोते खा गई—कई घूँट—कई घूँट।'

फिर वादा करती हैं—

'खाने के बाद फिर यहाँ आयेंगे।'

तीसरे पहर हम लोग नाव खेने निकलते। रास्ते में ही मेरी संगिनी मुझे नाविक कौशल दिखलाया करती और हमारी नाव शराबी की तरह झूमती-झामती, दाएँ-बाएँ होती हुई, कभी-कभी पीछे भी लौट कर पैंतरा सी काटती हुई, आगे बढ़ती। नाव के सामने ठीक नीचे देखने पर ऐसा मालूम पड़ता मानो पश्चिम की ओर का आकाश चुपके-चुपके वहाँ पर पानी में गोते लगा रहा हो—वह भी अपने पूरे साज-बाज के साथ; सभी रंग के बादल तथा निर्मल आकाश भी उनके साथ रहते। उनके इरा लुक-छिप कर स्नान करते रहने में कोई कोई उन्हें दुलखता नज़र नहीं आता। हाँ, हमारे डाँड़ द्वारा पानी में छपछप करने की आवाज़ अवश्य ही सुनाई देती, जिससे थोड़ी देर के लिए वहाँ पर स्नान करता हुआ पश्चिम की ओर का आकाश भी चञ्चल सा हो उठता; पर हमारी नाव के वहाँ से निकल जाते ही फिर पहले की भाँति शान्ति में मग्न हो स्नान करने लगता।

मेरी संगिनी धीरे-धीरे गुनगुनाती जाती। मैं बहुत देर तक उसे न छेड़ता; पर कभी-कभी जान-बूझ कर डाँड़ इस प्रकार पानी पर पटकता कि उसके छींटे उसके बदन पर जा पड़ते। वह 'तू' कह कर हँसने लगती।

रास्तों पर रोशनी जल जाने पर हम शहर वापस लौटते, और बहुत रात बीते अपने घर।

हमें यही अचरज होता कि आखिर इतनी जल्दी सारा दिन कैसे बीत गया।

एक बार उसने अपनी वर्षगाँठ के उपलक्ष में मुझे अपने घर आने का न्योता दिया। खाने के कमरे में पहुँच कर मैंने दायें-बायें, आगे-पीछे घूम कर देखा और जो कोई भी दिखलाई दिया उसे सर झुका कर नमस्कार किया। केटी ने बारी-बारी से एक-एक के साथ मेरा इस तरह परिचय कराया—

'हिमालय की तराई में रहने वाले, फ़क़ीरों के देश के, बाघ-सिंहों से दोस्ती रखने वाले, वहाँ से यहाँ तक हाथी और ऊँट की सवारी पर यात्रा करने वाले, यहाँ के विश्वविद्यालय में पढ़ने वाले विद्यार्थी महाशय.........'

लोग मुझसे हाथ मिलाते और अपना नाम गुनगुनाते हुए कहते—

'बड़ी प्रसन्नता हुई!'

लोगों ने कुछ विस्मय के साथ मेरी ओर देखा। उनमें से कई ऐसे थे जिन्होंने अपने जीवन में पहले-पहल, मेरे ही रूप में, एक भारतवासी देखा था। कुछ लोगों को थोड़ी निराशा भी हुई। केटी ने अपनी एक सहेली की पीठ थपथपाते हुए कहा—

'क्यों इंगे—तू समझ रही थी कि भारतवासियों के हाथियों-जैसे

बड़े-बड़े दाँत होते होंगे और बाघों के जैसे चमड़े ! इन्हें देख कर डर तो नहीं मालूम होता ?'

वे कुछ लज्जित सी हुई दीखने लगी । एक छोटी बच्ची बोल उठी—

'ये तो हम लोगों-जैसे ही हैं !'

सब लोग हँस पड़े ।

'लेकिन फ़क़ीरों की करामात तो ये अवश्य ही जानते होंगे ।' एक बूढ़ी ने कहा । उनके लिए भारतवासी होने का यही प्रमाण था ।

'इनके सर पर हीरा लगी हुई पगड़ी तो है ही नहीं ! ये भारतवासी नहीं हो सकते ।' स्कूल में पढ़ने वाली एक लड़की ने कहा । इस लड़की ने अपने जीवन में एक बार पहले एक भारतीय महाराजा को देखा था और उसीसे उसकी धारणा बँध गई थी कि प्रत्येक भारतवासी वैसा ही होता होगा । उस सन्ध्या को भी वह इसी आशा से वहाँ पहुँची थी कि यदि वास्तव में आमन्त्रित आगन्तुक महाराजा हुआ तो वह अवश्य ही उसे भारत-भ्रमण के लिए साथ लेता जायगा !

जब मेरी ओर से कुतूहल शान्त हुआ तब गपशप शुरू हुई । इसके लिए लोग कई टुकड़ियों में बँट गये । कोई किसी प्रोफ़ेसर की, कोई शराब की और दूसरा कोई आज की मिठाई की ही तारीफ़ करने लगा । कुछ दूसरे 'बिअर' और 'शैम्पेन' का गुण-दोष बखान करने लगे, और कुछ इस विवेचना में लग गये कि गाँव की औरतों के लिए बिना ऊंची एड़ी की जूतियाँ पहने किस प्रकार नाचना सम्भव हो पाता है ।

भोजन समाप्त कर जिस समय हम लोग बैठक-घर में पहुँचे, वहाँ ग्रामोफ़ोन बजने लगा था । लोग बराबरी के जोड़ों में विभक्त हो चुके थे और नाचना शुरू कर दिया था । नाच बड़े ही विचित्र ढङ्ग का था । नाच के बदले यदि उसे मल्लयुद्ध, दौड़ा-दौड़ी अथवा 'मिलिटरी-मार्च'

नाम दिया जाय तो अधिक उपयुक्त होगा। मैं चुपचाप खड़ा देख रहा था। केटी ने मेरा हाथ पकड़ते हुए कहा—

'आओ—'

'मुझे नाचना नहीं आता—'

उसने मेरे कन्धे पर अपना हाथ रख दिया था। अब और कोई चारा नहीं था। यह सोच कर कि दूसरे मेरा नाचना देख कर किस प्रकार हँसते होंगे मुझे कुछ झेंप सी अवश्य लगी, पर वह अधिक देर तक नहीं रही। यूरोपीय लोगों के लिए उनके नाच का मतलब एक प्रकार के आमोद के सिवा और कुछ नहीं होता। यह एक सामाजिक आनन्द सा है, जिसमें मनुष्य अपना अकेलापन बिलकुल ही भूल जाता है। नाच के वक्त परिचित-अपरिचित का बिलकुल ही भेद नहीं रखा जाता।

उस दिन सूर्योदय हो जाने पर घर लौटा।

दो दिन तक लगातार बादल छाये रहने और पानी बरसते रहने के बाद आज फिर धूप निकली। बाहर खुली हवा में कहीं टहलने न जा सकने के कारण तबीयत थोड़ी ऊबी सी थी। आज दूर तक टहलने जाऊँगा, ऐसा सोच कर घर से निकला। कुछ कदम आगे बढ़ने पर ही दीखने लगा कि जितनी दूरी तक टहलने जाना चाहता हूँ, अकेला नहीं जा सकूँगा। इधर कई महीनों से मेरी आदत सी पड़ गई थी कि अकेला बहुत ही कम टहलने जाया करता था। प्राकृतिक दृश्यों का सुख लूटते समय उसका बँटवारा करने के लिए किसी का अपने साथ रहना जरूरी लगता था—नहीं तो उस चहल-कदमी में कुछ मजा ही नहीं आता था।

उसने अपनी वर्षगाँठ के उपलक्ष में जबसे मुझे न्योता देकर

बुलाया था, उस दिन से उसके पास पहुँचने पर न तो मेरे पाँव ही भारी हो आते थे और न हृदय में ही किसी प्रकार की धड़कन सी शुरू होती थी। यदि वह अपने बाग़ में बैठी हुई न मिलती तो उसके घर का दरवाज़ा तक खटखटा देता और यदि कोई विशेष बात न करनी रहती तो केवल सलामालेकुम करके ही चला आता।

साथ टहलने आने के लिए मुझे उससे दुबारा-तिबारा कहने की ज़रूरत नहीं पड़ी। मेरे पहली बार कहते ही उसने बासन्ती रंग के ब्लाउज़ पर एक जाकेट पहना और मेरे साथ टहलने के लिए चलने को निकल आई। हम जब कभी इस प्रकार टहलने निकला करते थे, 'हम किस दिशा में जायँ'—इस विषय में वाद-विवाद करने के लिए दरवाज़े, चौराहे अथवा किसी अन्य स्थान पर रुकने की आदत नहीं थी। जिधर पाँव बढ़ते जाते, हम उधर ही चलते चले जाते। हममें से एक को जो दिशा पसन्द आती उसमें दूसरा आपत्ति नहीं करता था।

महल बाग़ के पीछे छूट जाने पर हम लोगों ने सदर सड़क भी छोड़ दी और एक पगडण्डी पकड़ कर ऊपर पहाड़ी की ओर बढ़ने लगे। उस पहाड़ी पर अंगूर की झाड़ें लगी थीं। उस पगडण्डी, पहाड़ी तथा उन झाड़ियों का मेरी स्मृति में सदा के लिए स्थान बन गया है। उधर से होकर हम लोग कितनी ही बार निकल चुके थे और हर बार ही आनन्द में मग्न रहते। बातें करते-करते कभी थकते नहीं। उन बे-सिर-पैर की बातों में भी सदा रस मिला करता और उनमें किसी-न-किसी प्रकार की नवीनता दीखती और हम ख़ूब जी खोल कर हँसा करते। नीचे धूप रहने पर भी कभी-कभी ऐसा होता कि पहाड़ी के ऊपर पहुँचने पर वहाँ हलका-हलका कुहरा सा छाया होता। पर उस कुहरे में भी कैसा अद्भुत सौन्दर्य छिपा हुआ दीखता, कहते नहीं बनता। उसी हलके कुहरे में हमारा आनन्दमय जीवन, हमारा भाग्य ढका हुआ सा जान

पड़ता और सामने के रास्ते के संकीर्ण होते जाने पर भी उस पर चलते रहने से कभी जी नहीं ऊबता था।

आज हम अपने उसी पूर्व-परिचित रास्ते से होकर गुज़र रहे थे; पर मेरी संगिनी का चेहरा पहले जैसा खिला हुआ नहीं था। आज ऊपर पहाड़ी पर भी धूप निकली हुई थी और चारों ओर बहुत दूर तक सब साफ़ दिखलाई देता था, फिर भी मेरी संगिनी के चेहरे पर उदासी सी छाई हुई थी।

उससे उदासी का कारण पूछना मैंने अच्छा नहीं समझा।

पर थोड़ी देर बाद केटी ही सहसा बोल उठी—

'एक बात कहूँ? बुरा तो नहीं मानोगे?'

'क्यों, बुरा क्यों मानूँगा? ज़रूर कहो।'

वह मेरा हाथ अपने हाथ में ले कहने लगी—

'मुझे केवल इसी बात पर आश्चर्य होता है कि लोग मेरा दुखी चेहरा ही क्यों देखना चाहते हैं? मैंने कभी उनका कुछ बिगाड़ा हो, ऐसा मुझे याद नहीं आता; फिर भी मालूम नहीं क्यों उन्होंने मुझे दुखी बनाने का निश्चय सा कर लिया है।'

थोड़ी देर रुक कर वह फिर बोली—

'मेरे जन्म-दिन के दिन से कुछ लोग मुझसे बेतरह नाराज़ हो गये हैं। उन्होंने मेरा यहाँ पर रहना बिलकुल असम्भव सा बना दिया है। उनके लिए तुम्हारा निमन्त्रण सुखकर नहीं, बल्कि अत्यन्त कष्टकारी सिद्ध हुआ है। वे मुझसे इसका बदला लेना चाहते हैं। मैं अपनी काकी के पास बर्लिन जा रही हूँ।'

उसने मुझे अपना पता दिया।

'आख़िर इसका कारण क्या?' मैंने पूछा।

उसने मेरा हाथ कस कर दबाते हुए कहा—'मैंने जिस वर्ग में

जन्म लेने का पाप किया है, वह किसी भारतीय को अपनी बराबरी का स्थान नहीं देना चाहता। वह नहीं चाहता कि मैं तुम्हें……वह नहीं चाहता कि हर मनुष्य एक दृष्टि से देखा जाय।'

वह आगे नहीं बोल सकी। हम दोनों बड़ी देर तक उसी तरह खड़े रहे। अन्त में मैंने खुद मौन भङ्ग करते हुए कहा—

'चलो, घर चलें।'

उससे बिदा लेकर मैं पहले अपने घर लौट आना चाहता था, पर पता नहीं क्या मन में आया कि जिस जङ्गल के रास्ते से होकर उस दिन टहलने गया था, फिर उधर ही बढ़ने लगा।

जङ्गल पार कर चुकने पर अंगूर के झाड़ों से ढकी पहाड़ी से होकर गुज़रने लगा; वहीं एक स्थान पर बैठ गया। चारों ओर पहले की ही तरह स्तब्धता छाई हुई थी, पर मुझे कुछ ऐसा भान हो रहा था मानो मेरे चारों तरफ़ जो कुछ भी—झाड़ी, दर्रा, जङ्गल आदि दीख रहे हैं—सबके कान खड़े हुए हैं और वे सब एकटक केवल मुझे ही देख रहे हैं। उनकी निगाह बचाने के लिए मैंने घुटनों में सिर छिपा लिया।

थोड़ी देर में ही मैं एक प्रकार का स्वप्न सा देखने लगा। किसी ने अपनी बाँहें मेरे गले में डाल दीं। मैंने अपनी आँखें बन्द कर ली थीं। मुझे उस सुख की वास्तविकता पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं था; पर न जाने क्यों मैं पूछ बैठा—

'यह क्या?'

'रोमैंस!' उत्तर मिला।

'क्या यह सच है?'

'नहीं, हमारा समाज नहीं चाहता कि हर मनुष्य एक दृष्टि से देखा जाय। तुम भारतीय·······।'

'फिर यह कैसा धोखा ?' कहता हुआ मैं जाग सा पड़ा।

नींद सी टूट गई। छाती धड़कने लगी थी। चारों ओर दृष्टि दौड़ा कर देखा; कोई भी दिखलाई नहीं दिया।

हान्स

सचमुच ही सुख-सपना टूट गया । युवाकाल का यह स्वप्न भी इतनी जल्दी टूट जायगा, इसका पहले मैंने अनुमान तक नहीं किया था ।

छुट्टियों के लिए विश्वविद्यालय बन्द हुआ । वही फ़ाकामस्ती वाले पहले के दिन फिर आ गये । दरिद्रता के चपेटे पुनः लगने लगे । संसार की भयङ्कर कठोरता तथा क्रूरता पर धूल डाल कर, उसे भुला कर, आनन्दमय जीवन का सपना देख रहा था । मधुर सपने की आड़ में दुख और दरिद्रता को भूल जाना चाहता था, पर वह सपना भङ्ग हो गया । पर्दा हट गया । दुःख, दरिद्रता और विशेषकर मनुष्यों के प्रति मनुष्यों की क्रूरता मुझे फिर याद आने लगी ।

आगे कैसे दिन कटेंगे, इस बात की चिन्ता मेरे भीतर अपना घर कर रही थी । लफंगेपन के जीवन में फिर से लौटना नहीं चाहता था । उससे इतनी घृणा हो चुकी थी कि अपनी कोठरी में भूखे पड़े-पड़े मर जाना अच्छा समझता था, पर उस तरह भटकते हुए जीविका चलाना किसी भी हालत में स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं था ।

इस बारे में जितना ही सोचा करता, मेरे सामने उतना ही बड़ा निराशा का पहाड़ दिखलाई देता और उस ऊँचे पर्वत को देख उदासी

भी उतनी ही अधिक बढ़ती जाती। अपने लिए उस वीरान हुए हाइडिल-बेर्ग को छोड़ कर मैं और कहीं चला जाना चाहता, पर कहाँ जाऊँ और किस प्रकार?

रास्ते में सामान लादे हुए मोटर-गाड़ियों को जाते हुए देखता; लोग गर्मी की छुट्टी में समुद्र किनारे अथवा पहाड़ों की सैर करने जा रहे थे। उनमें से किसी के भी साथ—यदि कोई अपने सामान रखने की जगह भी मुझे बिठा लेने के लिये तैयार होता—जाने के लिये तैयार था, पर कोई भी मुझे साथ लेने अथवा सामान रखने के स्थान पर बैठ जाने के लिये न कहता।

यदि उन मुसाफ़िरों में कोई हँसता हुआ दिखाई देता अथवा उसका चेहरा चिन्तामुक्त होता तो मुझे अपना कल तक का चेहरा याद आता, पर दूसरे ही क्षण यह भी सोचने लगता कि शायद वह मेरा केवल एक सपना था। वह सपना सुन्दर भले ही रहा हो, पर इस समय की मेरी उदासी तथा भविष्य की चिन्ता वह किसी भी हालत में दूर नहीं कर सकता था और न दूसरों का हँसता हुआ चेहरा ही मेरे चेहरे पर हँसी ला सकता था।

इसी प्रकार मानसिक बेचैनी की अवस्था में घूमते-घूमते मुझे प्यास लग आई। विश्वविद्यालय से अधिक दूर न रहने पर भी शहर के इस भाग में, ख़ासकर इन तंग गलियों में, पहले कभी नहीं आया था। जहां पर मैं खड़ा हुआ था उसके पास ही एक बिअर वाले की दूकान थी। वैसे बिअर आदि पीने की मेरी बिलकुल ही आदत नहीं लगी थी, फिर भी वह आज एक आवश्यकता सी दीखती थी।

उस दूकान में घुसते ही देखा कि वह छोटा सा कमरा एकदम धुएँ से भर रहा है। ब्रांडी की गंध ऐसी तेज़ थी कि वहाँ पर बिना

पिये ही किसी को नशा आ जा सकता था। उस कमरे की लगभग सभी कुर्सियाँ लोगों से भरी थीं। बिना औरों की ओर देखे सीधे एक कोने में जा बैठा और बिअर लाने के लिये कहा।

एक तो स्वभाव-वश मेरी आदत ही ऐसी बन गई थी कि लोगों के जमघट में बैठना अच्छा नहीं लगता था, दूसरे बिअर की ऐसी दूकान में लम्बी-लम्बी गप मारने वाले जैसे लोग इकट्ठा हुआ करते हैं उनकी संगति तो मुझे और भी पसन्द नहीं थी। लेकिन इस समय जब कि मैं इतना अकेलापन अनुभव कर रहा था कि कभी कभी यह भी ख्याल होता था कि लोगों से बातचीत बिलकुल ही न करने के कारण मैं गूँगा सा होता जा रहा हूँ, बिअर की दूकान में बैठे यही गप्पी मेरा ध्यान अपनी ओर खींचने लगे। लोगों के बीच रहने और अकेलापन भूल जाने की तीव्र इच्छा हो रही थी; इसीलिये उस बिअर की दूकान में धुएँ, ब्रांडी की गंध तथा गंदगी का ख़याल न कर चैन से उस कोने में बैठा था।

ख़ाली पेट में बिअर के पहुँचते ही एक प्रकार की गुदगुदी सी शुरू हो गई; पर विचारों में पुख्तगी आने लगी और ऐसा दिखलाई दिया मानो मैं जिस उलझन को सुलझाने के लिये इतना चिन्तित था, उसका हल कर लेना कोई वैसा कठिन काम नहीं। अपनी उतनी अधिक चिन्ता पर हँसी भी आने लगी और मैंने अपने-आपसे खुले शब्दों में कह भी डाला—

'जहन्नुम में जायँ ये सारी चिन्ताएँ।'

मेरे पास ही एक विद्यार्थी बैठा था। एक-दूसरे के चेहरे से हम लोग पहले से ही परिचित थे। उसने मुझसे पूछा—

'यह तो बतलाइये, आपके चेहरे पर आज ऐसी उदासी क्यों?'

आपको तो मैंने पहले हमेशा हँसते-खेलते ही देखा; आखिर आज बात क्या है?'

'यों ही, कोई खास बात नहीं।'

'आज आपने जैसे ही इस दूकान में पैर रखा, मेरी निगाह आपके चेहरे पर गई। मुझे जान पड़ा मानो आपका मन उचट सा गया है; उदासी ने आपके चेहरे को ही बदल डाला है।'

'उदासी के सिवा और जीवन में रखा ही क्या है?'

'ऐसा क्यों? यदि आपकी इच्छा हो तो मेरे साथ साइकिल द्वारा उत्तरी देशों की यात्रा कीजिये, फिर वहाँ पर आप देखेंगे कि जीवन कैसा आनन्दमय है।'

'आपका कहाँ तक जाने का विचार है?'

'मैंने अपना लक्ष्य सीधा उत्तर जाना बना रखा है, फिर जहाँ तक पहुँच जाऊँ; यदि और आगे न जा सका तो कम-से-कम कोपेनहागेन तक तो अवश्य ही जाऊँगा। अगर कोई साथी मिल गया होता तो मैं कब का यहाँ से चल दिया होता! आखिर मन उचाट किये यहाँ बैठे रहने से क्या फ़ायदा? उत्तरी प्रदेशों के रहने वाले ऐसे भले होते हैं कि वहाँ की यात्रा करने पर किसी तरह की चिन्ता नहीं रह जाती और न किसी तरह की तकलीफ़ ही महसूस होती है।'

इन दिनों मेरी तबीयत जैसी उचट चली थी और हाइडिलबेर्ग जैसा वीरान सा दीखता था, उस विचार से संसार का कोई भी दूसरा शहर मुझे पसन्द आ सकता था।

हाइडिलबेर्ग से पीछा छुड़ाना मेरे लिए मुख्य बात थी। मैं अपनी उदासी और उत्साहहीनता के लिये इस शहर को ही पूरी तरह से ज़िम्मेदार मानने लगा था। इस शहर में मेरे दिल पर पिछले दिनों में जो कुछ बीता था उससे बुरे की मैं कल्पना तक नहीं कर सकता था।

मैं उस विद्यार्थी (हान्स) के साथ यात्रा करने के लिये तैयार हो गया।

जो लोग बाहरी टीमटाम और दिखावे पर अधिक ध्यान दिया करते हैं उनकी दृष्टि में हान्स अवश्य ही थोड़ा मनहूस अथवा बदशक्ल हो सकता था। इस प्रकार की बातों में सबसे पहली बात यह थी कि वह अपनी दाढ़ी कभी ख़ास मौक़ों पर ही मुड़ाया करता था। बाल काले रहने के कारण अधिक न बढ़ने पर भी गोरे चेहरे पर साफ़ दीखने लगते थे और एक सप्ताह तक न मुंड़ाने पर तो एक सिलसिले में न उगे रहने के कारण खोंसे हुए से दीखते थे। इसके अलावा उसके कपड़े पहनने के ढंग से लापरवाही टपकती थी। उसकी टाई बँधी होती, फिर भी गाँठ ऊपर के बटन से बहुत नीचे खिसकी हुई होती और ठीक ऐसी दीखती मानो किसी बच्चे की नाक चू रही हो। कालर भी सदा सिकुड़े हुए रहते, और कभी तो वे इतने तङ्ग रहते कि गरदन के चमड़े के दबने के कारण गाँठ सी बाहर निकली दिखलाई देती, और कभी ऐसे ढीले रहते कि कमीज़ का ऊपरी भाग उनके पीछे से दिखाई देता। इस समय यात्रा के लिए उसने जो टोप पहन रखा था वह ठीक तम्बू के आकार का था और उसकी पूरी पोशाक के साथ उसका ठीक-ठीक मेल बैठ जाता था।

बाहर की यह सब लापरवाही उसकी अपनी इच्छा के प्रतिकूल थी तथा उसे छिपाने की लाख चेष्टा करने पर भी वह स्पष्ट हो ही जाती थी। लापरवाही का ख़ास कारण उसकी माली हालत है, यह बात भी वह छिपा नहीं पाता था; पर इन बातों के दबा रखने अथवा छिपाने की चेष्टा में उसे बहुत-कुछ सहना भी पड़ता था। उसके चेहरे से ही दीख पड़ता था कि वह बहुतेरे कष्ट बिना आह-ऊह किये बर्दाश्त कर सकता है।

मुझे आगे चल कर पता चला—कितनी ही भयानक सर्दी होने पर भी कभी उसने अपना कमरा गरम नहीं करवाया। खाने के लिए भी विद्यार्थियों के भोजनालय में जो सस्ते-से-सस्ता खाना मिलता था वही वह खाता था। वह भी उसके लिए हमेशा ही कम पड़ जाता था और रोज़ ही तश्तरी लिये हुए वह दुबारा-तिबारा और मांगने जाता। विद्यार्थियों के भोजनालय में उबले हुए आलू कोई चाहे जितने खा सकता था और वे मांगने पर मिल सकते थे; हान्स उन्हीं आलुओं से अपना पेट भरा करता। मैंने स्वयं भोजनालय में, उसे अक्सर जूठी तश्तरी लिये आलू मांगने के लिये खड़ा देखा था। जिस दिन वह भोजनालय बन्द रहता वह घर पर ही सूखी रोटी खाया करता और पिपरमिंट की सस्ती चाय पीकर काम चलाता। यदि कभी किसी शाम को कहीं जाने की इच्छा होती तो छोटी-छोटी गलियों वाली बिअर की दूकान के सिवा और कहीं नहीं जाता।

यदि उसकी बिअर का दाम कोई दूसरा विद्यार्थी अथवा उसका कोई मित्र चुकाना मंजूर कर लेता तो वह बिअर के अनगिनित गिलास उड़ेल ले सकता था। देखने वाले को यह अचरज भी हो सकता था कि आखिर बिअर के लिए इतनी जगह उसके पेट में कहाँ से निकल आती है। पर वह उसे अच्छी तरह झेल लेता था। उसे शराब के नशे में लुढ़कता-पुढ़कता अथवा अंट-संट बकते हुए कभी किसी ने नहीं पाया।

वास्तव में वह बर्लिन का रहने वाला था। उसके माता-पिता भी वहीं थे। पिता इधर कुछ दिनों से नौकरी छूट जाने के कारण बेकार हो गये थे, इसलिये हान्स के सामने भी बहुतेरी कठिनाइयाँ आ उपस्थित हुई थीं। साहस की कमी न रहने के कारण उतने पैसे का वह बन्दोबस्त कर लेता था जितने में किसी-न-किसी प्रकार ज़िन्दा रहा जा सके।

पहले थोड़ी-बहुत 'ट्यूशन' भी किया करता था; पर जब से कोट और पैंट में छेद हो चले थे, वह काम आप-से-आप छूट गया था। दूसरे विद्यार्थियों के निबन्ध आदि टाइप करने का भी वह काम किया करता था; पर अपना टाइप-राइटर न रहने के कारण उसे न तो काफ़ी आमदनी हो पाती थी और न हमेशा कोई अच्छा सिलसिला ही जम पाता था।

फिर भी वह निराश होता कभी भी नहीं देखा गया। जहाँ से बिलकुल ही आशा नहीं की जा सकती थी, उन ज़रियों से भी वह पैसे कमा लिया करता। इधर सप्ताह में एक दिन थिएटर में काम करके भी लगभग एक अठन्नी कमा लिया करता था। असल में वह अठन्नी मेहनताने में नहीं दी जाती थी, बल्कि थिएटर की ओर से इसलिये दी जाती थी कि वह स्नान कर सके अथवा अपना शरीर भली भाँति साबुन से साफ़ कर सके; क्योंकि जिस प्रकार का वेश बना कर उसे रङ्गमञ्च पर जाना पड़ता था उसके बनाने में ऐसे मसालों से काम लिया जाता था जो शीघ्र ही छूटने वाले नहीं होते थे। हान्स वह अठन्नी बचा लिया करता और अपना शरीर किसी-न-किसी तरह साफ़ कर लेता।

उसने बहुत से कारख़ाने भी छान डाले, यहाँ तक कि कोयले की खानों में काम करने की इच्छा से दरख़ास्त भी दी; पर सब स्थानों से यही उत्तर मिला कि उन्हें मज़दूरों की ज़रूरत नहीं, आर्थिक सङ्कट के कारण रोज़ ही मज़दूर काम से हटाये जा रहे थे।

हान्स की और मेरी हालत में बहुत कुछ समानता थी, इसलिए हम दोनों की पटरी और भी बैठ गई।

अगले दिन प्रातःकाल ही हम लोगों ने उत्तरी देशों की यात्रा के लिए हाइडिलबेर्ग से कूच कर दिया।

जरमन लोगों के लिए गरमी की ऋतु बड़ी ही बहार की होती है।

हमारे यहाँ गरमी की ऋतु अच्छी नहीं समझी जाती, क्योंकि बेतरह गरमी पड़ते रहने के कारण कोई काम करने की तबीयत नहीं होती; मारे आलस के पड़े रहने की ही इच्छा होती है, और धूप तो तनिक भी अच्छी नहीं लगती। पर जरमनी वालों के लिए यही ऋतु होती है जब वे पर्याप्त मात्रा में सूरज की गरमी का आनन्द उठा पाते हैं, जब वे धूप में बैठ कर अपने चेहरे की सफ़ेदी दूर कर उसके स्थान पर लाली ले आना चाहते हैं।

प्राकृतिक दृश्य भी गरमी के ही दिनों में सुन्दर रहते हैं। हम लोगों की सड़क के दोनों ओर उपजाऊ खेत थे, जिनमें जौ के पौधे खड़े लहलहा रहे थे। उनका रंग हरियाली लिए हुए भूरा हो चला था। हवा चलने पर उन खेतों पर एक प्रकार की लहर सी चलती हुई दिखलाई दे रही थी। मैं इस प्रकार के दृश्य से जन्म से ही परिचित था, पर जब से विदेश आया था, यह दृश्य देखने का यह पहली ही बार मौका मिला था।

चारों तरफ़ का दृश्य हमारे देश के फाल्गुन-चैत्र के महीने-जैसा दीखता था। विदेश में अब तक जिस प्रकार के दृश्य से परिचित था उससे यह भिन्न प्रकार का मालूम पड़ता था, मानो थोड़ी देर के लिए अपने देश की ही भूमि पर चल रहा हूँ तथा वहाँ के ही दृश्य देख रहा हूँ। हान्स उन खेतों का दृश्य दिखला कर उनकी सुन्दरता के विषय में कुछ कहना चाहता था; पर उस समय बातें करने की मेरी अनिच्छा देख कर चुप रहा।

आगे बढ़ने पर हमारा रास्ता चीड़ के वन से होकर जाता था। हम पश्चिम और उत्तर के कोने की ओर बढ़ते जा रहे थे। सूरज ठीक हमारे पीछे था और धूप के कारण हमारी पीठ गरम होती जा रही थी। पर धूप की यह गरमी सुखद थी और अपने यहाँ के पौष महीने की धूप

सी सुहावनी लग रही थी। हरे-भरे अगल-बगल के जङ्गलों की ओर देख कर हमें प्रसन्नता हो रही थी, विशेषकर हान्स को, और वह बार-बार कह उठता—

'यह दृश्य कैसा सुन्दर है!'

मुझे वह दृश्य कम सुन्दर दीखता हो, यह बात नहीं थी; पर प्राकृतिक सुन्दरता के विषय में कुछ कहने अथवा दूसरे के मुँह से सुनने की इच्छा नहीं हो रही थी। ऐसा जान पड़ता था कि आँखों से देख कर हम जिस सुन्दरता का उपभोग कर रहे हैं, शब्दों में उन्हें व्यक्त करने पर वह नष्ट हो जायगी, अथवा उसमें कमी आ जायगी। हान्स की उपर्युक्त बातें सुन कर मैं केवल सर हिला कर हुँकारी भर देता।

हमारे दाहिनी ओर हरे-भरे वृक्षों से ढकी एक पहाड़ी दिखाई देने लगी। सूरज थोड़ी देर के लिए उजले बादलों में छिप गया था इसलिए सामने की हरियाली और भी गहरी दीखती थी। उस ओर उंगली का संकेत करते हुए हान्स ने कहा—

'जिस समय ज़ोरों की प्यास लगी हो उस समय यदि कोई इस हरियाली को देखे तो कुछ-न-कुछ अंश में उसकी प्यास को यह अवश्य ही शान्त कर देगी।'

'मुझे सचमुच ही प्यास लग आई है।' मैंने पास के ही एक झरने की कल-कल सुन कर कहा और उस ओर बढ़ने लगा। हांस भी मेरे पीछे-पीछे आया। मैंने तो पानी पिया, पर वह उस झरने के विषय में अपनी कविता सुनाने लगा। पहाड़ी दृश्य की ओर संकेत करते हुए उसने कहा—

'यह दृश्य मुझे ऐसा दिखलाई दे रहा है मानो इसके भीतर कुछ छिपा है। यह हरियाली सजीव तथा हमें कुछ कहती हुई दिखलाई देती है।'

'मुझे इसकी भाषा समझ में नहीं आती।' मैंने बिना कुछ सोचे-विचारे कह डाला।

हम लोग जरमन 'वांडर फोगल' (भ्रमणशील पक्षी) नामक युवक-यात्री-सङ्घ के सदस्य हो गये थे, इसलिए रात भी इस सङ्घ की ओर से बने मकानों में ही बिताया करते थे। इस प्रकार के मकान जरमनी के प्रायः प्रत्येक हिस्से में, और विशेषकर जिन स्थानों का प्राकृतिक सौंदर्य बढ़ा-चढ़ा होता है वहाँ पर, बने होते हैं; ये 'यूगेंड हेरबेरगर' के नाम से पुकारे जाते हैं।

फोगेल्सबर्ग भी जरमनी में अपने प्राकृतिक सौन्दर्य के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ एक पहाड़ी के ऊपर गाँव से सटा हुआ हम लोगों का हेरबेरगर (रात्रि-निवास-स्थान) था। पहले शायद वह कोई पुराना किला रहा होगा; पर अब उसका अधिकांश वीरान हो गया था। इस समय लकड़ी का एक बहुत पुराना फाटक तथा उसके आसपास की मोटी, पर भग्न दीवारें स्मृति-स्वरूप शेष रह गई थीं, जो उस किले के शानदार इतिहास तथा उज्ज्वल अतीत की याद दिलाती थीं। पुराने समय में शायद यह कोई ऐतिहासिक स्थान रहा होगा; पर अब आसपास की प्राकृतिक सुन्दरता के सिवा उस स्थान का और कोई महत्त्व नहीं रह गया था।

इसी पुराने गढ़ के एक भाग में यूगेंड हेरबेरगर (युवकों का रात्रि-विहार) था। इसका भीतरी भाग भी ठीक बाहर के ही समान था। एक बहुत बड़े लम्बे-चौड़े हॉल में युवकों के रात बिताने का स्थान था। पहले जब उस गढ़ के अच्छे दिन रहे होंगे, वह अवश्य ही कोई सजा-सजाया नाच-घर रहा होगा। अब उस पुरानी शान की याद दिलाने के लिए टूटे हुए छोटे जंगले तथा मोटी और बड़ी ऊँची

दीवारों के सिवा और कुछ शेष नहीं रह गया था। उस हॉल में लोहे के पत्तरों से बने, दोमंज़िले जहाज़ की केबिनों के बर्थ से दीखने वाले, बिलकुल सटे-सटे लगभग चालीस-पचास मञ्च थे, जिन पर पुआल-भरी गद्दियाँ बिछी थीं। इस हॉल के बगल में और भी एक छोटा सा कमरा था जिसमें उसी प्रकार के बर्थ बने थे और वह लड़कियों के रात बिताने के लिए काम आता था।

हेरबेर्ग का रखवाला चौड़े कंधों वाला तथा बड़े लम्बे डीलडौल का आदमी था। अवस्था लगभग पचास वर्ष की रही होगी। मूछें बड़ी लम्बी तथा कानों तक पहुँचने वाली थीं। जिस समय हम लोग उसके पास पहुँचे वह युवकों के सोने वाले दालान से निकल कर बाहर आ रहा था। उसके मुँह में एक बड़ा लम्बा-चौड़ा पाइप लटक रहा था। हमें देखते ही उसने पूछा—

'तुम लोग यहाँ रात बिताना चाहते हो?'

हम लोगों ने हुँकारी भरी।

'पर कार्ड के बिना इजाज़त नहीं!'

हम लोगों ने अपने कार्ड उसे दिये; बिना देखे ही उसने उन्हें अपने पाजामे के पाकेट में डाल लिया और कहा—

'किराया कल सबेरे पास वापस लेने के समय देना। अब इस हॉल में अपने लिए जगह खोज लो। हमारे यहाँ सिर्फ़ धुरंधर लोग ठहरते हैं, इस बात का ख़याल रखना; दख़ल किया हुआ बर्थ न छेकना।'

हम लोगों ने अपना सामान जङ्गले के पास के मंच पर रख दिया और फिर बाहर चले आये। हान्स को मकरोनी (आटे की मोटी सेंवई) पसन्द आती थी; क्योंकि उसके लिए कुछ अधिक ख़र्च करने की आवश्यकता नहीं थी और मात्रा भी काफ़ी हो जाती थी। हम लोगों ने वही उबाल कर खाया और फिर उस किले के एक गुम्बज पर चढ़

गये। वहाँ पर कुछ लड़के और कई लड़कियाँ पहले से ही बैठे थे। वे भी वहीं रात बिताने वाले थे। उनकी पोशाक हमारी जैसी ही थी और वे भी हमारी ही तरह के यात्री दिखाई देते थे।

जिस समय हम वहाँ पहुँचे बीच में एक युवक गितार (सितार सा ही एक वाद्य-यंत्र) लिये बैठा था, और उसके चारों ओर जरमनी तथा आस्ट्रिया के विभिन्न प्रान्तों के पचीस-तीस लड़के-लड़कियाँ बैठे हँसी-मजाक कर रहे थे। बीच में बैठा युवक कह रहा था—

'अब कुमारी लिजे की बारी है।'

चारों तरफ़ से लोगों ने 'हाँ' 'हाँ' कहना शुरू किया। उस नाम की लड़की का चेहरा बिलकुल लाल हो आया। गाने की तो बात ही दूर रही, उसके मुँह से कोई शब्द भी निकलना मुश्किल हो रहा था। बड़े प्रयत्न के बाद वह केवल इतना कह पाई—'मुझे गाना नहीं आता।'

'तुम्हारी आवाज़ ही ऐसी मीठी है कि तुम्हारी बोली ही गाने के सुर सी दीखती है।'

'हाँ, रुको, अब वह शुरू करने ही वाली है।'

'नहीं, बिना बाजे के वह गाना नहीं चाहती।'

'गितार उसके हाथ में दे दो।' आदि आवाज़ें चारों ओर से आने लगीं। थोड़ी देर तक बिलकुल गोलमाल सा मचा रहा, फिर गितार बजाने वाला युवक जब अपने बाजे के तार दुरुस्त करने लगा तो शोर-गुल थोड़ा शांत होता सा दिखलाई दिया। पहले वह कुछ देर गुनगुनाता रहा, फिर उसने गाना शुरू किया—

'एक समय मैं कितना भाग्यशाली था,
एक समय मैं कितना मस्त था।
उस समय मेरी प्रियतमा रहती थी,
एक पर्णकुटीर में—एक छोटी सी पर्णकुटीर में।

उस समय मेरी प्रियतमा रहती थी,

एक छोटी सी पर्णकुटीर में।'

वह अकेला ही गाता रहा। जब तक उसके मुँह से आवाज़ निकलती रही सन्नाटा छाया रहा; पर ज्यों ही वह चुप हुआ और गिटार के तारों की आवाज़ बन्द हुई, लोग उस पर टीका-टिप्पणी करने लगे—

'इसके भीतर प्यार की व्यथा भरी है।'

'मालूम नहीं, एकाएक कैसे इसके भीतेर यह व्यथा घुस गई?'

'संसार में काफ़ी लड़कियाँ हैं।'

'कोई दूसरी क्यों नहीं ढूँढ़ लेते?'

'यहीं पर तो कितनी मिल जायँगी।'

'क्यों आन्ना?'

'आः तू!' कह वह लड़की, जिसका उसने नाम लिया था, उसका कन्धा झकझोरने लगी।

रात अँधेरी थी, पर तारों की जगमगाहट के कारण अन्धकार घना नहीं था। पहाड़ी के नीचे बहने वाला सोता तथा उसके चारों ओर का हरा मैदान धुँधला दिखलाई दे रहा था। यही इस समय अच्छा लग रहा था। यदि सामने की चीजें स्पष्ट दिखलाई देतीं तो आज दिन में जितना लम्बा सफ़र किया था उसकी याद आ जाने के कारण थकावट मालूम पड़ने लगती।

अपने चारों ओर ऐसे निश्छल युवा-युवतियों के रहने के कारण हम अपनी यात्रा के कष्ट भूल गये थे। ऐसी मंडली में किसी को किसी से परिचय करते देर नहीं लगती। हिलमिल जाने के लिये किसी की केवल युवावस्था रहना ही पर्याप्त होता है। चाहे वह किसी भी देश का, किसी भी रंग का क्यों न हो,[1] इन युवा-युवतियों का बर्ताव उसके

प्रति एक सा ही होगा। विदेशी की बातों को शायद लोग थोड़ा अधिक ही महत्त्व देते।

मैं ऐसी मण्डली से परिचित नहीं था, इसीलिए बातें करते समय 'आप' कह कर सम्बोधन किया। तुरंत ही मेरे पास बैठी एक युवती ने कहा—'आप नहीं, तू।' थोड़ी देर में ही ऐसा लगने लगा मानो वे युवा-युवती आज से नहीं, बल्कि जन्म से ही परिचित रहते आए थे।

थोड़ी देर तक उपर्युक्त प्रकार का गोलमाल सा रहता, उसी समय कोई अकेले-दुकेले से बातें करते भी दिखलाई देते, पर ज्यों ही कोई गान आरम्भ होता, सब मिल कर गाने लगते।

इस बार एक दूसरे युवक ने गितार अपने हाथ में लिया और गाने लगा—

'सुन्दर है जवानी—मस्ती की घड़ियों में,
सुन्दर है जवानी—वह फिर नहीं आती,
इसीसे मैं कहता हूँ एक बार और,
सुन्दर है जवानी—जवानी की घड़ियाँ!
सुन्दर है जवानी—वह फिर नहीं आती,
वह फिर नहीं आती,
हाँ, सचमुच, वह फिर नहीं आती,
वह फिर नहीं आती,
सुन्दर है जवानी—वह फिर नहीं आती।'

सचमुच ही यह गाना उनके हृदय से निकल रहा था। जिन्हें गाना नहीं आता था और जो गाने के लिए कहने पर भी बड़ी आनाकानी कर रहे थे, वे भी इस समय गाने लगे थे। हान्स तो बिलकुल पहचान में ही नहीं आ रहा था। अपने मोटे गर्दभ-स्वर में वह भी जितना अधिक अपना मुँह फाड़ सकता था फाड़ कर गा रहा था।

हम लोग उस टूटी हुई दीवार पर बहुत देर तक अपनी दैनिक चिन्ताएँ भूल कर अपने भीतर जितना अधिक आनन्द भरा जा सकता था, भर लेने की चेष्टा कर रहे थे। धीरे-धीरे जब दूसरे सब लोग सोने चले गये तब भी मैं हान्स के साथ वहीं बैठा रहा। थोड़ी देर बाद उसने कहा—

'चलो, थोड़ा घूमने चलें; और कुछ नहीं तो इस पुराने गढ़ की परिक्रमा तो कर लें।'

हम लोग चुपचाप चलने लगे। उस समय बातें करने से अवश्य ही सारा मज़ा किरकिरा हो जाता। फिर भी एक-दूसरे के भीतर क्या लहरें उठ रही थीं, हम दोनों भली भाँति समझ सकने में समर्थ हो रहे थे।

गढ़ की उस खिड़की के नीचे आ पहुँचने पर, जहाँ लड़कियों के सोने का कमरा था, हान्स अपने गर्दभ-स्वर में गाने लगा—

'मेरी सुन्दरी प्रियतमे, मेरी अमूल्य निधि!
मैं रुका हूँ तेरी छोटी सी खिड़की के सामने,
क्या तू सुनती नहीं है, चलती हुई हवा की आवाज़,
झोंके से चलती हुई हवा की आवाज़,
क्या तू सुनती नहीं है—
झोंके से चलती हुई हवा की आवाज़?
उठ री, उठ, खोल दे किवाड़—
और मुझे आने दे अन्दर,
मेरी सुन्दरी प्रियतमे—मेरी अमूल्य निधि!'

भीतर से खिलखिला कर हँसने की आवाज़ आई। एक लड़की खिड़की के सामने आ हम लोगों की ओर झाँकने भी लगी। इसी समय भीतर से किसी दूसरी लड़की ने उस कमरे में जलने वाली बत्ती

बुझा दी। खिड़की के सामने खड़ी लड़की 'गुड-नाइट' कह कर सोने चली गई। हान्स अपने उपर्युक्त गीत का अन्तिम पद फिर से गाने लगा। लड़कियाँ ठहाका दे हँसने लगीं और खिड़की के सामने आकर बोलीं—

'कल—कल आना।'

हम लोग भी अपने-अपने बिस्तरे पर जाकर लेट गये। दूसरे लड़के भी अपने कपड़े बदल रहे थे। केवल वह लड़का, जो बाहर गितार बजा रहा था, इस समय भी कमरे में टहलता हुआ कुछ गुनगुना रहा था। उसके एक साथी ने उसे सो जाने के लिए कहा। इस पर उसने अपनी खाट पर रखी गितार फिर से उठा ली और खड़े-खड़े ही बजाता हुआ बहुत देर तक गाता रहा—

'आह, क्या मैं अभी मर जाऊँ?
अरे, अभी तो मैं इतना छोटा हूँ!
अभी तो मेरी नसों में जवानी का नया ताज़ा ख़ून दौड़ रहा है!
अभी तो मेरी नसों में नया ताज़ा ख़ून दौड़ रहा है!
अभी तो मैं यह भी नहीं जानता कि प्यार किस तरह किया जाता है!
आह, क्या मैं अभी मर जाऊँ?'



डेन्मार्क

दूसरे दिन सवेरे जिस समय हान्स ने मुझे जगाया, मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानो कल की सभी घटनाएँ मैंने स्वप्न में देखी हों। उन घटनाओं को यथार्थ मानने के लिये एक-एक करके उनकी याद मन में लाने लगा। मैं अभी बिछौने पर उठ कर बैठा ही था कि हान्स हँसता हुआ सामने आ खड़ा हुआ और अपना हाथ मेरी ओर बढ़ाया। उसकी हँसी से ही कल की यथार्थता पर पूरा विश्वास हो गया।

हम लोग 'लुबेक' नगर की ओर रवाना हुए। हेरबेर्ग छोड़ते समय बूँदा-बाँदी हो रही थी; पर उसकी परवा किये बिना हम लोग आगे बढ़ते गये। रास्ते में हान्स ने अपना तिकोना, तम्बू के आकार का, हरे रंग का टोप भी मेरे सर पर रख दिया और स्वयं नंगे सर चलने लगा।

कई दिनों की यात्रा के बाद हम लोग बाल्टिक-सागर के किनारे जा निकले। यहाँ पर केवल बाहर का ही नहीं, अपने भीतर का भी हम लोगों ने सारा मैल धो डाला। कई दिनों तक सागर-तट पर विश्राम करते हुए हम लोगों ने आँखें खोले-खोले ही स्वप्न देखे। पहले के सारे कड़वे अनुभव भुला दिये।

डेन्मार्क की सीमा पर जा पहुँचने पर हमें पता चला कि जरमन

लोगों के लिए अपने देश से बाहर जाने में उन दिनों कई प्रकार की रुकावटें लगा दी गई थीं। अतः हान्स ने वहाँ से अपने माता-पिता के पास बर्लिन लौट जाना तय किया और मैं अकेला डेन्मार्क की ओर बढ़ा।

डेन्मार्क-जैसे उत्तरी प्रदेश में पहले-पहल प्रवेश कर रहा हूँ, यह विचार मन में निरन्तर रहने के कारण जिस किसी भी शहर, गाँव, गिरजा-घर अथवा झोपड़ी तक पर नज़र जाती, ऐसा लगता मानो उसमें कोई न कोई दिलचस्प बात छिपी है। सामने रास्ते के कङ्कड़ों से लेकर दूर पर दिखलाई देने वाले महल-जैसे मकान तक—सभी चीजें अपनी ओर मेरा मन आकर्षित कर रही थीं। थोड़ी-थोड़ी दूर पर हवा से चलने वाली चक्कियाँ दिखलाई देतीं और उन्हें देख कर स्वभावतः उनका काल-निर्धारण करने लग जाता। यदि उन पर कुछ लिखा होता तो साइकिल से उतर पड़ता और उसे पढ़ने की चेष्टा करने लगता। भाषा डेनिश होने के कारण बहुतेरी बातें मेरी समझ में न आतीं; परन्तु फिर भी मुझे यह सन्तोष सा हो जाता कि उन पुरातन स्मारकों से मैंने गहरी दोस्ती कर ली है।

सामने से अगर कोई आदमी आता हुआ दिखाई देता तो उसे अब तक के देखे सभी आदमियों से भिन्न प्रकार का मानने लगता और उसमें जान-बूझ कर कोई-न-कोई नई बात ढूँढ़ निकालने की चेष्टा करता। यदि कोई युवती सामने से आती दिखलाई देती तो विचार करने लगता कि यह मेरे देश की युवतियों से अधिक सुन्दरी है या नहीं। इतना ही नहीं, उसके हर अङ्ग पर मन ही मन टीका-टिप्पणी करने लगता, और यदि किसी किसान की भोली-भाली मोटी-ताज़ी लड़की सामने आ निकलती तो उसकी रोज़मर्रा की ख़ूराक की कल्पना करने

लगता। वह मेरी कल्पना में तुरन्त ही एक कठौती-भर दूध अथवा थाल भरे मलाई-मक्खन के सामने बैठी हुई और काठ का बड़ा सा चमचा हाथ में लिये दिखलाई देती। उनकी भाषा न जानने पर भी तुरन्त ही अपने को उनसे बातें करता हुआ पाता पर बातों से अधिक ओठों पर हँसी रहा करती।

इन्हीं विचारों में मग्न मैं उस स्थान तक पहुँच गया जहाँ पर सड़क खत्म होती थी। सामने समुद्र था; परन्तु दो तरफ़ थोड़े-थोड़े फ़ासले पर दो टापू साफ़ दिखलाई दे रहे थे। डेन्मार्क में ऐसे दृश्य पग-पग पर देखने को मिलते हैं। रेल की पटरियाँ भी ठीक जहाज़ लगने की जगह तक जाकर एक-ब-एक खत्म हो जाती हैं। जहाज़ पर भी वैसी ही पटरियाँ बिछी रहती हैं और रेल के डब्बे-के-डब्बे वहाँ जहाज़ पर लद जाते हैं और फिर दूसरे टापू में जा पहुँचने पर वहाँ की पटरियों पर चलने लगते हैं। मुसाफ़िर अपने डब्बे में सोये-सोये ही, बिना किसी हिलाडुली के, अथवा डब्बे से जहाज़ पर पाँव रखे बिना ही एक टापू से दूसरे टापू पर पहुँच जाया करते हैं।

पर मैं था साइकिल पर सफ़र करने वाला मुसाफ़िर। पूछने पर मालूम हुआ कि उस दिन कोई जहाज़ दूसरे टापू की ओर जाने वाला नहीं था। अतः जहाँ था वहीं रात बितानी थी। फिर से गाँव में लौट आया और सोने का स्थान ढूँढ़ने लगा।

मेरे लिए इस प्रकार सोने का स्थान ढूँढ़ना कोई नई बात नहीं थी। रात बिताने का स्थान ढूँढ़ लेने की कला में मैं प्रवीण हो चुका था; किसीसे पूछते समय पहले-जैसी धड़कन भी अब मेरे दिल में नहीं होती थी।

अभी उस गाँव की सड़क पर थोड़ी दूर ही आया हूँगा कि देखा, एक खिड़की से दो व्यक्ति सर निकाले बाहर झाँक रहे हैं। उनका

चेहरा देखते ही स्पष्ट हो गया कि रात बिताने का स्थान देने की बात उनके सामने रखने पर वे नाहीं नहीं करेंगे। उन व्यक्तियों में एक स्त्री थी, जिसका चेहरा ठीक ख़रबूज़े के समान गोल था। उसने अपने बालों को दो भागों में बाँट, उन्हें गूँथ कर, कन्धे के दोनों ओर लटका रखा था। दूसरा व्यक्ति पुरुष था जिसने अपने बाल पीछे की ओर काढ़ रखे थे और चश्मा लगा रखा था।

जैसी कि मुझे आशा थी, मेरे यह कहते ही कि 'मैं यात्री हूँ और कोपेनहेगेन तक जाना है, पर आज कोई जहाज़ नहीं जाता इसलिए इस गाँव में ही रहना चाहता हूँ,' वे लोग अपने घर में मुझे ठहरा लेने के लिए तैयार हो गये। घर के उपरले भाग की एक कोठरी में अपना सामान रख, हाथ-मुंह धो, नीचे उतरा तो उन लोगों ने अपने साथ खाना खाने के लिए भी मुझे बुलाया। खिलाया भी उन्होंने बड़े सत्कार के साथ। वास्तव में यह एक शिक्षक का परिवार था। शिक्षक महाशय थोड़ी-बहुत जरमन जानते थे, इस कारण उनसे बातचीत करते कोई विशेष कठिनाई नहीं हुई। उनकी स्त्री डेनिश के सिवा और कोई दूसरी ज़बान नहीं जानती थीं। इसलिए शिक्षक महाशय को समय-समय पर दुभाषिया का काम करना पड़ता अथवा, जैसा कि सभ्य समाज में स्त्रियाँ अक्सर किया करती हैं, हम लोगों की बातें न समझने पर भी उनकी स्त्री अपने चेहरे से ऐसा भाव प्रकट करतीं और समय-समय पर इस तरह हँसतीं मानो वे हमारी बातें ख़ूब समझ रही हैं। शिक्षक महाशय हर बात में अपने देश की तुलना जरमनी से किया करते और हर बार इस परिणाम पर पहुँचते कि उनका अपना देश हर बात में जरमनी से बढ़ा-चढ़ा और अच्छा है। पर असल जरमनी की उन्होंने झलक भी आज तक नहीं देखी थी, फ़ासला इतना कम होने पर भी वह उनके लिए विदेश था।

जिस समय उनकी स्त्री बगल के कमरे में खाने आदि की सामग्री

मेज़ पर सजा रही थीं, मैं शिक्षक महाशय के साथ उनके अतिथि-गृह में बैठा उनके साथ गपें लड़ा रहा था। बात करने को और कोई विषय न दिखाई देने पर यों ही मैंने शुरू किया—

'दो-तीन दिन पहले मैं हामबुर्ग में था। अफ़सोस, मुझे समय बहुत थोड़ा मिला और वहाँ जितनी चीजें देखने की हैं वह सब नहीं देख सका।'

'हाँ, हामबुर्ग के विषय में मैंने भी बहुत-कुछ सुन रखा है!'

'शहर बड़ा ही सुन्दर है।'

शिक्षक महाशय ने हँसते हुए उत्तर दिया—'आपने हमारे देश के शहर नहीं देखे, इसीलिए आपका ऐसा ख़याल है। हामबुर्ग अवश्य ही बड़ा शहर है, लेकिन लुच्चे-लफंगों से भरा है। वह ऐसे लुच्चे-लफंगों का अड्डा है जैसे कि संसार के और किसी कोने में ढूंढे नहीं मिलेंगे।'

उनकी इस कड़ी आलोचना से मैं थोड़ा सहम गया, पर तुरन्त ही जरमनी के दूसरे शहरों के विषय में चर्चा करने लगा—

'हाँ, बड़े-बड़े शहरों के विषय में लोगों के अपने-अपने अलग विचार हुआ करते हैं। पर हाइडिलबेर्ग का ख़याल कीजिये। शहर कितना छोटा, पर कितना सुन्दर है!'

'हाइडिलबेर्ग! सुन्दर?'

'क्यों, आप ऐसा नहीं समझते?'

'लुटेरों का सबसे बड़ा अड्डा हाइडिलबेर्ग है।'

शिक्षक महाशय की यह बात भी मैं भली भाँति न समझ पाया, मान लेने की तो बात ही दूर रही। उन्होंने आगे कहना शुरू किया—

'अभी हाल में ही हमारे ओडेन्से (एक टापू) के एक शिक्षक वहाँ की यात्रा कर आये हैं। वे हाइडिलबेर्ग में केवल दो सप्ताह ही ठहरे थे, पर उतने ही समय में उनके गालों की हड्डियाँ निकल आईं,

आँखें भीतर की ओर धँसने लगीं और शरीर ऐसा दुर्बल हो गया मानो छ: महीने से उन्हें खाना न मिला हो। अच्छा हुआ कि वे शीघ्र लौट आये, नहीं तो शायद उनकी ठठरी ही शेष रह जाती।'

'ऐसा क्यों ?'

'ऐसा क्यों ? वहाँ के लोग ही ऐसे ठग हैं। ज़रा सा पहाड़ी, या नदी का घुमाव दिखलाने का बहाना कर सारा पैसा ठग लेते हैं। और जब पास में पैसा नहीं रह जाता तो निकाल बाहर करते हैं। अतिथि-सत्कार का तो वहाँ नाम-निशान नहीं है। प्राकृतिक दृश्यों का सौन्दर्य भी नहीं लूटने देते। हर समय वहाँ वालों की यही इच्छा रहती है कि किस प्रकार आपके पाकेट में उनका हाथ पहुँचे। नहीं, हाइडिलबेर्ग ? वह अवश्य ही लुटेरों का अड्डा है।'

मैंने समझा, शिक्षक महाशय को अवश्य ही इन शहरों का कटु अनुभव है। अत: मैंने चर्चा हानोवर के विषय में चलाई। यह शहर बहुत दिनों तक नामी राजा-महाराजाओं का अड्डा रह चुका है और वहाँ वाले यह अभिमान रखते हैं कि उस शहर के सिवा जरमनी के और किसी दूसरे भाग के लोगों को जरमन भाषा नहीं आती। शायद शिक्षक महाशय को वह शहर प्रिय हो। मैंने कहा—

'पर हानोवर के लोग अवश्य ही सीधे-सादे और भलेमानस हैं और उनका शहर भी बड़ा सुन्दर है।'

'वह ढोंगियों का अड्डा है। वहाँ के लोग ऐसे बातूनी होते हैं कि यदि उनकी इच्छा आपके गले पर छुरी चलाने की होगी तो बाहर से ऐसी मीठी ज़बान में बोलेंगे कि आप उन पर विश्वास कर उन्हें अपने घर भोजन करने का निमन्त्रण देने के लिए तैयार हो जायँगे। मैं वहाँ के लोगों को भी जानता हूँ। वहाँ एक-से-एक बढ़-चढ़ कर ढोंगी और पाखण्डी पड़े हुए हैं। हाँ, सारे जरमनी में अगर कोई सुन्दर शहर है तो वह है लुबेक, और वहाँ के रहने वाले मछुए भलेमानस हैं, ऐसा सुनने में आया है। पर यदि मैं आपसे अपने दिल की बात बताऊँ तो

उनमें से भी जितनों को मैंने स्वयं अब तक देखा है, सब-के-सब हरामी ही मिले हैं और शहर का जो पोस्टकार्ड देखा है, उससे मैंने अपनी रद्दी की टोकरी की ही शोभा बढ़ाई है।'

अब तक जितने शहरों की बात की थी और उन पर जैसी खरी-खोटी शिक्षक महाशय के मुँह से सुनी थी उससे पता लग गया कि उन्हें कोई भी जरमन शहर पसन्द नहीं है और उनके सामने वहाँ के किसी भी शहर की सुन्दरता की चर्चा करना व्यर्थ है। अभी हम दोनों कुछ ही क्षण के लिए चुप रहे होंगे कि शिक्षक महाशय की स्त्री कमरे में आई और हम लोगों को हँसते हुए खाने के कमरे में चलने के लिए कहा।

जैसा डेनमार्क में अक्सर देखने में आता है, मेज़ पर खाने-पीने का सामान काफ़ी तादाद में तथा भली भाँति सजा कर रखा गया था। हम लोग अभी जिस बात की चर्चा कर रहे थे, उसे शिक्षक महाशय अभी नहीं भूले थे। खाना आरम्भ करते-करते कहने लगे—

'और हम लोग जरमन लोगों की तरह दस दिन की रोटी भी नहीं खाया करते। कुछ दिन पहले हम लोगों के घर में जरमनी के दो विद्यार्थी ठहरे हुए थे। उन्होंने भी स्वीकार किया कि जैसा भोजन उन्होंने यहाँ पर किया वैसा उन्हें जीवन में और कभी नसीब नहीं हुआ था।'

'लेकिन हामबुर्ग की फ्रिकाडेले और फ्रांकफुर्त की वुर्स्ट तो मशहूर हैं।'

'वे चीजें जरमन लोग कैसे बनाते हैं, यदि आपको यह बात मालूम हो जाय तो आप उन चीज़ों को ज़बान पर रखें तक नहीं।'

'हाँ, दरअसल यह तो मुझे नहीं मालूम कि वे किस प्रकार और किस चीज़ से उन पदार्थों को तैयार करते हैं।'

'पर मुझे मालूम है। घोड़े का मांस तो उनके लिए आरामतलबी

की अवस्था में खाने की वस्तु है। मरे हुए कुत्ते की खाल खींच डालते हैं और फिर उसे सुअर के नाम से बाज़ार में बेचते हैं। उन्हीं चीज़ों से वे चीजें तैयार की जाती हैं जिनका आप अभी नाम ले रहे थे।'

शिक्षक महाशय आगे बतलाने लगे—

'पर हमारे डेन्मार्क की बात ही दूसरी है। हमारे यहाँ खाने-पीने की कमी नहीं और न हमारे यहाँ के लोग ही वैसे ठग अथवा ढोंगी हैं। हम लोग सीधे-सादे आदमी हैं और अपना जीवन सादगी तथा सफ़ाई के साथ विताते हैं। आप यहाँ और सफ़र कीजियेगा तो स्वयं ही यह बात देखने को मिलेगी।'

इसके बाद बहुत देर तक डेन्मार्क के विषय में चर्चा होती रही। जिस रास्ते से होकर मुझे जाना था उस पर देखने लायक स्थान अथवा चीज़ों का नाम शिक्षक महाशय बतलाते रहे और भोजन समाप्त कर जब हम लोग फिर उनके अतिथि-गृह में आये तो वहाँ पर एक बड़े नक्शे में मेरा आगे का रास्ता दिखलाते रहे। जिन टापुओं से होकर मेरा रास्ता जाता था उन सभी में शिक्षक महाशय के कोई-न-कोई सम्बन्धी रहते थे। उन्होंने मुझे उनके पते लिख कर दिये और कहा कि मैं उनके यहाँ, जितने दिन चाहूँ, ठहरता हुआ आगे जा सकता हूँ। वहाँ से कोपेनहागेन तक का जो रास्ता सिर्फ़ दो दिनों में साइकिल द्वारा बड़ी ही आसानी से तय किया जा सकता था, उसके लिए शिक्षक महाशय ने दस दिन का कार्यक्रम निर्धारित किया था। बार-बार तो डेन्मार्क में आना नहीं होगा और फिर शायद वहाँ के रहने वालों के रहन-सहन आदि का अध्ययन करने का और दूसरा मौका न मिले, यह सोच कर मैंने शिक्षक महाशय के ही निर्धारित कार्यक्रम पर चलना स्वीकार कर लिया। शिक्षक महाशय अपने सामने बिछे नक्शे पर और भी थोड़ी देर गौर से देखते रहे और फिर कहा—

'ऐसा क्यों न किया जाय ? कुछ सुन्दर स्थान आपके ठीक रास्ते पर तो नहीं, पर वहाँ से अधिक दूर भी नहीं हैं। मैं आपको उन स्थानों पर ठहरने के भी पते लिख देता हूँ। यदि आपकी इच्छा हो तो उन स्थानों को भी देखते जाइयेगा।'

इतना कह कर वे फिर मेरी नोटबुक में अनेकों 'हानसेन', 'पिटरसेन' और 'ऐंडरसेन' का पता लिखने लगे। सोने जाते समय उन्होंने मुझे यह भी राय दी कि दूसरे दिन सबेरे का जहाज़ न पकड़ूँ, बल्कि दोपहर के जहाज़ से चलूँ। उसी जहाज़ से उनकी कोई भतीजी भी किसी दूसरे टापू में जाने वाली थीं। मैंने उनकी राय मान ली।

एक सप्ताह तक डेनिश किसानों का आतिथ्य-सत्कार स्वीकार करता हुआ तथा उस देश के अनेक टापू भ्रमण करता हुआ वहाँ की राजधानी कोपेनहागेन जा पहुँचा। सोने का स्थान यहाँ भी मुझे सस्ता ही ढूँढ़ निकालना था, क्योंकि पास में पैसे बहुत थोड़े ही बच रहे थे।

एक सड़क के किनारे दो- तीन ऐसे व्यक्ति दिखलाई दिये जिनके चेहरों से परिचित न रहने पर भी उनकी वेश-भूषा से अच्छी तरह परिचित था। अवस्था बीस वर्ष से ऊपर की रहने पर भी वे घुटने तक पैंट पहने थे और उसमें बेल्ट न लगा कर कन्धे से ऊपर जाने वाली पट्टी लगा रखी थी। कमीज़ में सामने की ओर एक भी बटन नहीं था और कालर इस प्रकार उलट लिया गया था कि छाती का ऊपरी भाग साफ़-साफ़ दिखलाई देता था। पाँवों में मोज़ों के बिना ही उन्होंने जूते पहन रखे थे और जूतों के फ़ीतों के स्थान पर सुतली बाँध ली थी।

उन्हें देख कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मैंने उनके पास जाकर पूछा—

'यहाँ पर हेरबेरगर कहाँ पर है ?'

'चलो, हम भी वहीं जा रहे हैं।'

उसी वक्त से मेरी उन लोगों से जान-पहचान हो गई और उनका साथ डेन्मार्क से विदा लेने पर ही छूटा। शहर के केन्द्र से थोड़ी ही दूर पर जरमनी के यूगेंड हेरबेरगर के ढंग का एक मकान था; उसीमें जाकर मैंने भी अपना डेरा डाला। दूसरे डेरा डालने वालों में अधिकांश लोग जरमनी अथवा आस्ट्रिया के थे। बातचीत करने से मालूम हुआ कि उनमें से अधिकांश अपनी उस देश की यात्रा पूरी कर चुके थे और अब घर लौटना चाहते थे। इन युवकों की यात्रा भी ठीक मौसमी चिड़ियों-जैसी हुआ करती है। गरमी के दिनों में उत्तर की ओर सैर करने निकल जाया करते हैं और ज्यों ही सर्दी शुरू होने लगती है, दक्षिण की ओर लौट जाते हैं। ये अपनी यात्रा को 'पैदल यात्रा' के नाम से पुकारते हैं, पर सदा ही मोटर वालों के साथ मुफ्त में चला करते हैं! किसानों के घर टिक कर, अथवा जिन्हें कोई बाजा बजाना आता है वे अपनी टोली बना कर, गा-बजा कर कुछ कमा लिया करते हैं।

उत्तरी देशों में इस प्रकार सैर करने वाले अधिकतर विद्यार्थी हुआ करते हैं अथवा ऐसे मज़दूर युवक जिन्हें अपने देश में काम नहीं मिल पाता। यूगेंड हेरबेरगर में इकट्ठा होने पर उनकी बातें भी अक्सर अपनी यात्रा के ही सम्बन्ध में हुआ करती हैं। सब अपने विषय में यही सिद्ध कर दिखलाना चाहते हैं कि कम-से-कम खर्च में अधिक से अधिक दूर की यात्रा उन्होंने ही की है। इन युवकों में सबसे अधिक मेरा ध्यान वियेना के एक विद्यार्थी हेरबेर्ट की ओर खिंचा। उसके स्वभाव में बहुत-कुछ उस एमिल से समानता थी जिससे पेरिस आते समय रास्ते में परिचय हुआ था। पर अन्तर यह था कि हेरबेर्ट न तो एमिल के समान वैसी बकबक किया करता था और न उसकी बातें ही सदा औरतों के सम्बन्ध में होती थीं। पर इनकी जगह उसमें कुछ

दूसरी ही सिफ़त थी। वह खाने-पीने की चर्चा बहुत अधिक किया करता था।

जिस समय मैंने उस हेरबेरगर में पहले-पहल प्रवेश किया, वह अपने सामने के टेबिल पर तीन बड़ी-बड़ी और काफ़ी वज़न की रोटियाँ तथा एक-चौथाई पौंड वनस्पति-घी रखे बैठा खा रहा था। मेरा ध्यान उसकी ओर इसलिए ख़ास तौर से आकर्षित हुआ कि छुरी से रोटी काटने की उसे आवश्यकता नहीं पड़ती थी। वह दोनों हाथों से पूरी रोटी पकड़ दाँत से ही काट-काट कर निगल रहा था। मेरे देखते ही देखते वह एक पूरी रोटी इसी तरह खा गया और फिर दूसरी में हाथ लगाया। मैं वहाँ से जाने लगा। उसने मुझे रोकते हुए कहा—

'तुम क्या ठौरसेलिउस के यहाँ जा रहे हो? उसकी दूकान बहुत पहले ही बन्द हो चुकी है। आज न जाने क्यों उस बेहूदे ने अपनी दूकान आधा घंटा पहले ही बन्द कर दी। इसीलिए तो मुझ पर ऐसी आफ़त आई हुई है।'

'कौन सा ठौरसेलिउस?' मैंने अचरज में आकर पूछा।

'फिर तुम खाते कहाँ हो?'

'मैं अभी-अभी यहाँ आया हूँ, और मुझे अभी भूख नहीं।'

'बड़ी ही नज़ाकत से पाले गये हो क्या? बड़े ऊँचे दर्जे के सभ्य आदमी दीखते हो?'

मैं हँसता हुआ आगे बढ़ने लगा। उसने फिर से टोका—

'थोड़ी देर रुको। टहलने जाते हो? मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा। बस, यही रोटी ख़त्म कर लूँ। अभी सिर्फ़ दो से काम चल जायगा। और कभी ठौरसेलिउस बन्द रहा तो तीसरी उस समय के लिए रख छोड़ता हूँ।'

हम लोग टहलने निकले। मैंने पूछा—'तुम्हें कुछ मालूम है, यहाँ देखने के ख़ास-ख़ास स्थान कौन से हैं ?'

'मुझे शहर में ठौरसेलिउस की दूकान के सिवा कुछ नहीं मालूम।'

'और यहाँ बन्दरगाह किधर है ?'

'मुझे तो जहाज़ से सफ़र करना रहता नहीं। मेरे लिए उनका रहना न रहना एक ही बात है।'

थोड़ी दूर आगे चल कर उसने कहा—'अगर मेरी चलती तो इस शहर में जितने बड़े मकान हैं और जहाँ केवल दफ्तर-ही-दफ्तर हैं उनके सब कागज़-पत्र समुद्र में फेंक देता और ठौरसेलिउस की दूकान वहाँ पर कायम कर देता।'

'आखिर यह ठौरसेलिउस है क्या बला ?'

'यहाँ आने पर तुम्हें सबसे पहले उसी का पता पूछना चाहिये था। कल दिन में मैं स्वयं तुमको उसके यहाँ ले चलूँगा। पर यह ख़याल रखना कि सबेरे उठ कर घर पर ही जलपान कर लेने की भूल न करना।'

'ऐसा क्यों ?'

'जलपान कर लेने पर फिर उतना डट कर खाना नहीं खाया जा सकता। उसकी दूकान ठीक एक बज कर सात मिनट पर खुलती है। उस समय तक किसी प्रकार भूख सहना। फिर उसके यहाँ खा लेने पर वह भोजन तुम्हारे लिए दूसरे दिन दोपहर तक के लिए काफ़ी होगा।'

'यह कैसे ?'

'खुद देखोगे। उसके यहाँ टेबिल पर खाने की सभी तरह की चीजें रखी रहती हैं। चाहे जितना भी खाओ, अस्सी ओर (आठ आना) से अधिक नहीं देना पड़ेगा। मैं तो वहाँ लगातार दो घंटे से कम कभी खाता ही नहीं।'

अब मेरी समझ में आ गया कि वह ठौरसेलिउस पर इस तरह

क्यों फ़िदा था। जितनी देर हम लोग टहलते रहे, अधिकांश समय वह खाने-पीने की ही चर्चा करता रहा। अगर किसी दूकान की शीशेदार अलमारियों में केक सजे-सजाये देखता तो कहने लगता—

'व्यर्थ ही ये चीज़ें अलमारियों में सुखाई जाती हैं। ये चीज़ें हैं शरीर को पनपाने के लिए; पर लोग ऐसे पागल हैं कि इन चीज़ों की कद्र तक नहीं जानते। अगर कोई मुझे दे दे तो दो दिन क्या, एक ही दिन में सारी-की-सारी दूकान साफ़ कर दूँ।'

फिर, डेन्मार्क के किस किसान ने उसको कितना खिलाया, इसकी चर्चा करता रहा। सिर्फ़ खाने की चर्चा सुनते-सुनते मेरा जी ऊब गया था। जब कभी मैं बातचीत का सिलसिला पलट कर किसी दूसरे विषय की चर्चा छेड़ता तो घूम-फिर कर वह फिर वही खाने-पीने की ही चर्चा करने लगता।

हम लोग इतनी बातें करते-करते एक पहाड़ी की चोटी पर पहुँच गये थे जहाँ से हमारे नीचे का सारा शहर साफ़ दिखलाई दे रहा था। हमारे ठीक नीचे एक बड़ी झील सी थी जो असल में समुद्र का पानी था। उसके किनारों पर कई छोटे-मोटे जहाज़ भी खड़े थे। कुछ दूर पर काफ़ी रोशनी की जगमगाहट दिखलाई दे रही थी। हेरबेर्ट से पूछने पर मालूम हुआ कि उस स्थान को लोग टिवोली कहा करते हैं। गरमी के दिनों में वहाँ मेला सा लगा रहता है; पर वह उसे अब तक देखने नहीं गया था। पहले वह मेरे साथ वहाँ तक जाने में हिचक रहा था। पर बाद को यह सोच कर साथ हो लिया कि शायद वहाँ चलने पर खाने का कोई सुतार जम जाय।

'टिवोली' वास्तव में एक मेला सा था। वहाँ पर आमोद-प्रमोद और खेल-कूद की काफ़ी गुञ्जाइश थी। कृत्रिम लकड़ी की बनी पहाड़ी तथा उस पर चलने वाली रेल, घूमने का चक्का, हिंडोला आदि बहुतेरी

चीजें थीं। ठीक फाटक से सामने देखने पर एक चबूतरा सा भी दिखलाई दिया जिसके ऊपर टँगे चँदोवे में रंग-बिरंग की रोशनी लगी थी और उसके नीचे लोग नाच रहे थे। उन स्थानों पर जाने के लिए टिकट खरीदने की आवश्यकता पड़ती थी, पर दरवान हम लोगों की वेश-भूषा देख कर मुस्कराया और उसने पूछा—

'डौयट्शमन ? (जरमन हो ?)'

हेरबेर्ट ने तुरंत उत्तर दिया—

'हाँ, जरमन, लेकिन 'इंगे-पेंगे' (पैसे नहीं)।' दरवान ने हम लोगों को बिना टिकट के ही भीतर घुस जाने दिया। हेरबेर्ट से मैंने पूछा—

'तुमने डेनिश कहाँ सीखी ?'

'सिर्फ़ दो शब्द आते हैं और उन्हीं का मैं अक्सर उपयोग किया करता हूँ और वे दो शब्द हैं इंगे-पेंगे (पैसे नहीं हैं)!'

जिस समय हम लोग अपने हेरबर्ग के लिए लौटे, सबेरा सा हो चला था। हेरबेर्ट के कथनानुसार हेरबर्ग का दरवाज़ा दस बजे ही बन्द हो जाया करता था और उससे अधिक देर कर हेरबेरगर में डेरा डालने वालों के लिए लौटने की मनाही थी। पर वास्तव में दस बजे ही लोग वहाँ से टहलने के लिए निकला करते थे और घर लौटने के लिए अहाते की एक दीवार के नीचे से उन्होंने रास्ता बहुत पहले ही बना रखा था।

हमें भी उस रास्ते से बड़ा फ़ायदा हुआ। दीवार की जिस दरार से हमें घुसना था उसका मुँह गाड़ी के एक टूटे हुए पहिये से ढका था। उसे ही हटा कर हम लोग भीतर घुसे और पहिये को ठीक उसके पहले के ही स्थान पर लगा दिया।

घर लौटने पर हम दोनों को भूख लग आई थी। मैं तो केवल एक सन्तरा खाकर लेट गया; पर जब तक मुझे नींद न आई, मेरी बगल के बिस्तरे से हेरबेर्ट के रोटी चबाने की आवाज़ आती रही!

मध्यरात्रि का सूर्य

कोपेनहागेन में एक दिन शाम को टहलता हुआ मैं बन्दरगाह की ओर जा निकला। नौरवे का एक जहाज़ वहाँ पर ठहरा हुआ दिखलाई दिया। उसकी एक केबिन के पास रेलिंग पर कुहनी टेके, मुँह में बड़ा सिगार लगाये, उसका कप्तान खड़ा था। मेरा 'पास' आदि जाँच लेने पर उसने मुझे जहाज़ में काम देना स्वीकार कर लिया।

दूसरे दिन तड़के ही हम लोगों का जहाज़ खुला। हम लोग सीधे उत्तर की ओर चले। मेरा काम समुद्र-यात्रा के समय केबिनों की सफ़ाई तथा उनकी देख-भाल करते रहना था। काम बहुत हलका था। जब किसी बन्दर में जहाज़ ठहरता तब दूसरे यात्रियों की तरह मैं भी शहर देखने चला जाता। वे शहर यूरोप के और शहरों की ही भाँति थे। बेर्गेन, ट्रौंडहाइम आदि नौरवे के दो-तीन शहरों को छोड़ कर और किसी में कोई विशेष सौन्दर्य भी नहीं दिखलाई दिया।

पर जिस रास्ते से होकर हमारा जहाज़ गुज़र रहा था वह अवश्य ही बड़े मार्के का तथा अत्यन्त रमणीक था। ऐटलांटिक सागर की ओर के नौरवे के तट पर लगभग डेढ़ लाख छोटे-छोटे टापू हैं। इन टापुओं की आड़ रहने के कारण, जिस समुद्री रास्ते से हम जा रहे थे

वहाँ पर लहरें नहीं के ही बराबर थीं। ऐसा मालूम पड़ता था जैसे हम किसी झील में ही सफ़र कर रहे हों।

पश्चिमी नौरवे-तट की दूसरी विशेषता वहाँ के 'फ्योर्ड' थे। समुद्र का पानी ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों को चीर कर किसी-किसी स्थान पर तो साठ-साठ सत्तर-सत्तर मील दूर तक चला गया है। ऐसा प्राकृतिक सौन्दर्य संसार के और किसी भी दूसरे देश में देखने को नहीं मिलता। कितने ही पहाड़ों की चोटियाँ बरफ़ से ढकी होती हैं और वहाँ से बड़े-बड़े झरने झरते हैं। पर उन्हीं पहाड़ों की तराई में फलों के वृक्ष, हरियाली, किसानों के घर आदि भी दिखलाई देते हैं। जहाँ तक दृष्टि जाती है ऊँचे-ऊँचे पहाड़ ही नज़र आते हैं। सागर और पहाड़ों का इस तरह हृदय से हृदय मिलाना बड़ा ही मनोहर तथा आकर्षक है।

उत्तरी नौरवे का सौन्दर्य एक और दृष्टि से भी विशेष मार्के का था। वहाँ पर गरमी के दिनों में कई महीने तक सूरज डूबता ही नहीं! सबसे उत्तरी छोर से अन्तरीप का सौन्दर्य, जहाँ के पत्थर सर ऊँचा किये हुए आधी रात की सुनहली धूप में उत्तरी ध्रुव के समुद्र की विशालता की ओर झाँकते हैं, और भी अधिक मनोरम एवं दर्शनीय होता है।

और भी उत्तर जाने पर हम लोगों का जहाज़ स्पितृजबेर्गेन नामक टापू में पहुँचा। लाखों वर्ष पूर्व इस स्थान पर भी वैसी ही हरियाली तथा वैसे ही वृक्ष होते थे जैसे भूमध्यरेखा के पास के देशों में अभी पाये जाते हैं। पर आजकल इस टापू में ग्लेशियर ही ग्लेशियर हैं।

हम लोगों का जहाज़ उत्तरी ध्रुवरेखा (पोलर ज़ोन) आरम्भ हो जाने पर भी आगे बढ़ता ही जा रहा था। पर हम बहुत अधिक उत्तर नहीं जा सकते थे। आगे समुद्र का पानी बरफ़ के रूप में जमा हुआ था और बरफ़ की तह भी काफ़ी मोटी थी। कुछ दूर तक तो हमारा

जहाज़ बरफ़ को तोड़ता हुआ आगे बढ़ा, पर बाद को अचानक अटक गया।

कई घण्टे तक हम लोग उसी तरह बरफ़ में अटके रहे। इसके बाद एक आइस-ब्रेकर (बरफ़ तोड़ने वाले जहाज़) ने आकर वहाँ से हमें निकाला।

जहाज़ के निरापद स्थान पर लौट आने पर कुछ यात्री, जो कुछ घण्टे पहले बहुत डर गये थे, अब कहने लगे—

'अगर मेरी चलती, अगर जहाज़ मेरा होता, तो और कुछ दिन वहीं पर रुका रह जाता।'

जिस रास्ते से हम लोगों का जहाज़ गया था उसी रास्ते वह फिर लौटने वाला था। मुझे यह पसन्द नहीं था। किरकेनेस नामक नगर में जहाज़ के लगने पर मैं कुछ यात्रियों के साथ मोटर द्वारा फ़िनलैंड चला गया और वहाँ से स्वेडेन आया।

मैं आशा-भरे कदम रखता हुआ आगे बढ़ता जा रहा था। मालूम नहीं ऐसी स्फूर्ति और ऐसा आनन्द एक-ब-एक मेरे भीतर कहाँ से उमड़ा आ रहा था। उस समय मुझे अपने सामने कोई भी ऐसी विरोधी शक्ति नहीं दीखती थी जो मेरे भीतर के उस आनन्द-स्रोत को बाँध सकती थी।

कई स्थानों पर सोने के स्थान के सम्बन्ध में दरियाफ़्त करने के बाद लोगों के इनकार कर देने पर भी मेरे उत्साह में रत्ती-भर भी कमी नहीं हुई। रास्ता ढालुआँ होता जा रहा था। आगे क्या था, इसका मुझे पता नहीं था, पर मैं उस ओर आगे बढ़ता चला जा रहा था।

एक-ब-एक बड़े ज़ोरों की हवा चलने लगी। आकाश में बूँदें भी

पड़ने लगीं। रास्ता चलने वाले सर नीचा कर उस हवा का सामना करते हुए आगे बढ़ते जाते थे। उनके चेहरों से व्यक्त हो रहा था कि वे उस हवा से त्रस्त हैं।

इस प्रकार आगे बढ़ते-बढ़ते मैं एक झील के किनारे निकल आया। झील के जिस किनारे खड़ा था उसके सिवा दूसरा और कोई भी किनारा नहीं दीखता था। इसी किनारे पर कई पाल वाली नावें लगी थीं। स्वेडिश भाषा न जानने पर भी उन नावों के कई माझियों से इशारे द्वारा बातें कीं और उनमें से एक ने अपनी नाव में टिकने का स्थान भी दे दिया।

नाव की केबिन में प्रवेश किया। वहाँ पर ठीक मेरे सर के पास एक छोटी सी खिड़की थी। मैंने उसे खोल दिया। बाहर कुछ दिखलाई नहीं पड़ता था, पर पानी बरसने तथा झील में बूँदें गिरने की आवाज़ आ रही थी।

थोड़ी देर में ही खिड़की से भीतर आने वाली छोटी-छोटी बूँदों से मेरा मुँह भीग गया। उस समय उस भीगने में भी एक विशेष प्रकार का आनन्द आ रहा था। मैंने मुँह पोंछने का प्रयत्न भी नहीं किया और वैसे ही लेटे-लेटे मुझे थोड़ी देर में ही नींद भी आ गई।

जिस समय मेरी नींद टूटी, नीचे के 'बर्थ' पर सोये दोनों माझी ज़ोरों से खर्राटे ले रहे थे। बाहर अभी आधी रात का सूर्य दिखलाई दे रहा था। अपनी खिड़की से झाँक कर बाहर का दृश्य देखना उस सौंदर्य को संकीर्ण बनाना सा लगा।

मैं केबिन से बाहर निकल उस नाव की पतवार पर जा बैठा। आकाश स्वच्छ था तथा हवा भी मन्द-मन्द चल रही थी। मेरी आँखों

के सामने सुनहले कुहासे में तैरती हुई वह विशाल झील थी। मन में अनायास ही आने लगा—

'अब तक इस अगाध सागर में गोते न लगा कर केवल एक बूँद के लिए मैं क्यों लालायित था? क्या उस बूँद से मेरी तृप्ति हो सकती थी? मैं जिस सौन्दर्य के पीछे दौड़ता था उसकी अपेक्षा यह सुन्दरता क्या करोड़ गुनी अधिक सुन्दर नहीं है?'

मैं हाथ फैला उठ खड़ा हुआ। दूसरे ही क्षण नाव से नीचे कूद झील के पानी में तैरने लगा। किस ओर जा रहा हूँ, यह पता नहीं था। और, चाहे जिस ओर ही क्यों न जाता होऊँ, मेरे लिए सब बराबर था। मेरे आनन्द तथा उत्साह की कोई दिशा नहीं थी।

जिस समय पानी से निकल कर पुनः नाव पर आया, भीतरी तथा बाहरी सभी दृष्टियों से अपने को स्वतन्त्र पा रहा था। अपने-आपसे स्वतन्त्रता पा ली थी। स्वतन्त्र हवा में जी भर कर साँस लेने लगा था।

मेरा चेहरा आनन्द से परिपूर्ण हो खिल रहा था। बिना किसी कारण पर विचार किये, बिना किसी आधार के, हृदय बहुत ही प्रसन्न था। उसकी प्रसन्नता का कारण पूछना उस पर अन्याय करना होता। इस अकेलेपन में स्वतन्त्रता और आनन्द था। सब बन्धनों से मुक्त हो जाना, घृणा तथा प्यार के आवेग से भी अपने को दूर कर लेना—इससे सुन्दर दूसरा और कौन सा समय हो सकता है? किसी का दास बन कर नहीं, बल्कि अपने-आपका स्वामी बन कर रहने में कितना आनन्द है? उस समय मैं किसी गाड़ी के पीछे बँधा घसीटा नहीं जा रहा था, बल्कि उस गाड़ी के हाँकने वाले के स्थान पर बैठा अपनी इच्छा से उसकी दिशा निर्धारित करता जा रहा था।

माझियों के उठ जाने पर मैंने उनके साथ ही जलपान किया। उनकी नाव खुलने का समय आया तो मैंने उनके साथ चलने की इच्छा प्रकट की; इसे उन्होंने हँसते हुए स्वीकार कर लिया। हम पाल तान कर आगे बढ़े।

जिस झील में हमारी नाव चल रही थी उसका नाम था 'वेतर्नसे'। स्वेडेन के नक्शे पर दृष्टिपात करने पर यह झील ठीक उसके हृदय-स्थल पर दिखलाई देगी। वास्तव में यह उसका हृदय ही है। झील प्रायः दो सौ मील लम्बी है। उसके किनारे पर बसे कई बड़े ही सुन्दर नगर हैं। पाल वाली छोटी-छोटी नावें, जिनमें अक्सर एक छोटी मोटर भी लगी होती है, इन शहरों के बीच माल ले जाने, ले आने का काम किया करती है।

मैं उस नाव पर पाँच दिन रहा। मेरा काम माझियों को भोजन पकाने, पाल चढ़ाने-उतारने तथा माल लादने, ख़ाली करने में मदद देना था। यह काम कुछ कठिन नहीं था।

नाव के सबसे अग्र-भाग पर, जहाँ रस्सा बाँधने के लिए एक लोहे का खूँटा सा गड़ा था, जा बैठने और सपने देखने के लिए काफ़ी समय मिल जाया करता था। जिन शहरों में नाव लगती उन्हें देखने अवश्य ही जाता।

पर सदा इस प्रकार से आगे बढ़ते जाना भी असम्भव था। उस झील के सबसे दक्षिणी किनारे पर पहुँच जाने पर हमारी नाव फिर से उत्तर की ओर लौटने वाली थी। जिस रास्ते से आया था, फिर से उधर लौटने का जी नहीं चाहता था।

लिन्चोपिंग नामक शहर में पहुँचते-पहुँचते अपने भीतर से पुराने संसार की, जिसे पिछले पाँच दिनों में बहुत-कुछ भुला सा दिया था, फिर से धीमी—पर स्पष्ट—सुनाई देने वाली आवाज़ आने लगी थी।

उस शहर में नाव लगते-लगते भी यही ख़याल था कि अभी उस नाव पर और कुछ दिन बिताना निश्चित है; इसीलिए अपना सामान वहाँ छोड़ कर ही शहर देखने गया था। शहर की चहल-पहल में भी कोई ऐसी विशेषता नहीं दिखलाई दी जिसके कारण वहाँ रुकने की इच्छा होती। पर उस शहर से नाव के खुलते ही, मालूम नहीं क्यों, वहाँ उतर पड़ने की इच्छा हृदय में ज़ोर मारने लगी। शहर की जैसी चहल-पहल देखी थी उसे और एक बार देख लेने की सहसा तीव्र इच्छा हो उठी। मैं तुरन्त अपना सामान पीठ पर लटका नाव से उतरने के लिए तैयार हो गया। माझियों ने भी नाव किनारे लगा दी। वह पूरी तरह से रुक भी न पाई थी कि उस पर से किनारे जा कूदा और नाव तथा माझियों से हाथ हिला कर बिदा ले डाली।

वास्तव में यह बिदा केवल नाव तथा उसके माझियों से ही नहीं, बल्कि उस जीवन से ली थी जिसका पिछले कई सप्ताह में अभ्यस्त सा हो चुका था।

ज़मीन पर पाँव रखते ही फिर से उन्हीं प्रेम तथा घृणा के भावों में गोते लगाने लगा।

अब अपने-आपको केवल यह कह कर सन्तोष दे रहा था कि कम-से-कम कुछ समय के लिए, चाहे वह काल थोड़ा ही क्यों न हो, उनसे छुटकारा तो ले लिया था; यह अवश्य ही भविष्य के कुछ काल के लिए पर्याप्त होगा।

चतुर्थ खण्ड

माँ की याद

स्कैंडिनेविया में बिताये दिनों की बार-बार याद करता हुआ बर्लिन की भूमि पर पाँव रखा।

जिस समय स्टेशन से बाहर निकला, सड़क पर घना कुहासा छाया हुआ था। रास्तों पर जलने वाली बिजली की बत्तियाँ समुद्र-किनारे की बहुत दूर से दिखलाई देने वाली लाइट-हाउस की बत्तियों-जैसी धुँधली तथा कान्तिहीन दिखाई देती थीं। उस समय ख़ाली एक कमीज़ पहने रहने के कारण सर्दी भी लग रही थी। मैं फुटपाथ पर चलते-चलते ट्राम ठहरने के स्थान पर जा निकला। तुरन्त ही एक तरफ़ से सीटी देती हुई तथा अपनी दोनों आँखें बिलकुल बाहर निकाले, कुहासे के अन्धकार को चीरती तथा सड़क पार करने वालों को दोनों ओर हटाती हुई एक ट्राम ठीक मेरे सामने आ खड़ी हुई। ट्राम का पिछला डब्बा बिलकुल ख़ाली था। मैं उसी में जा बैठा और ट्राम के चल देने पर कण्डक्टर से उस सड़क का टिकट माँगा जहाँ कि मुझे जाना था।

कण्डक्टर अपना चेहरा गम्भीर बनाये थोड़ी देर विचार करता रहा और फिर मेरी ओर देख मुसकराता हुआ, पर ज़रूरत से ज्यादा ज़ोर

से बोलता हुआ तथा मुझे समझाने की चेष्टा में भाषा की जान-बूझ कर टाँग तोड़ता हुआ, बोला—

'यदि आप ज़मीन के नीचे चलने वाली रेल से जाते तो आपके लिये सुभीता होता। ख़ैर, जहाँ पर इस ट्राम से उतर कर उस रेल में जाने का रास्ता नज़दीक आयगा, मैं आपसे कहूँगा।'

उस कण्डक्टर का मन भी मुसाफ़िरों के न चढ़ते-उतरते रहने के कारण उचाट सा हो रहा था, और इसीलिये मुझसे बड़ी दिलचस्पी से भारत के सम्बन्ध में बातें करता रहा। वह अब तक यही समझे बैठा था कि भारतवर्ष में केवल बाघ तथा हाथी ही रहा करते हैं। वहाँ के बाशिन्दे भी वहशियों की तरह के ही होते होंगे—ऐसा उसका अनुमान था।

ज़मीन के नीचे चलने वाली रेल का स्टेशन नज़दीक आने पर उसने रास्ता बतलाया। मैंने केवल सर हिला दिया था, इससे उसने समझा कि शायद मैं उसकी बात नहीं समझ रहा हूँ; इसलिये वही बात और भी तीन-चार बार दुहराई और जब तक कि मैं ज़मीन के नीचे जाने वाली सीढ़ियों के पास, जो वहां से कुछ ही क़दम के फ़ासले पर थीं, न पहुँच गया, वह बार-बार उधर इशारा करता तथा चिल्ला-चिल्ला कर 'दायें, और भी दायें' कहता रहा।

'अंडरग्राउंड' स्टेशन में ऊपर की अपेक्षा अधिक उजाला था। वहां भी गाड़ी की झंडी दिखलाने वाले ने जिधर मेरी गाड़ी लगने वाली थी वह दिशा दिखलाई तथा 'तीसरी' कहा। तीसरी गाड़ी में सवार होकर मैं अपने निश्चित स्थान पर पहुँच गया। हान्स का घर ढूँढ़ लेने में मुझे अधिक समय न लगा।

उस मकान के चौमंज़िले पर जाने वाली सीढ़ियों पर चढ़ते समय मेरे दिल में धड़कन सी होने लगी थी। हान्स के साथ जिस प्रकार

यात्रा की थी, जो-जो घटनाएँ घटी थीं, वे सभी एक बार ही आँखों के सामने नाच गईं।

जिस समय मैंने उसके घर के दरवाज़े की घंटी बजाई, रात के ग्यारह बजे होंगे। भीतर कोई रोशनी नहीं थी, सिर्फ़ सीढ़ी पर की रोशनी जल रही थी। जब थोड़ी देर तक भीतर से कोई दरवाज़ा खोलता हुआ दिखलाई नहीं दिया तो घंटी और भी एक बार बजाई, पर फिर भी सन्नाटा ही छाया रहा। नीचे की ओर जाने के लिये सीढ़ी पर पाँव रखना ही चाहता था कि भीतर एक रोशनी हुई और एक महिला ने आकर दरवाज़ा खोला। मुझे देखते ही उन्होंने दरवाज़ा और भी अधिक खोल दिया और खुद एक ओर हटती हुई बोलीं—

'आइये।'

उनके मुँह से ये शब्द इस प्रकार निकले मानो हम दोनों बहुत दिनों से परिचित हों। दूसरे ही क्षण मेरे अचरज का ठिकाना न रहा जब उन्होंने कहा—

'हृदय से स्वागत!'

मुझे आश्चर्य-चकित देख कर उन्होंने अपना हाथ आगे बढ़ाते हुए कहा—

'मैं हान्स की माँ हूँ। तुम भी मेरे पुत्र ही हो।'

बैठक वाले कमरे में पहुँचने पर उन्होंने मुझे एक सोफ़े पर बैठ जाने के लिये कहा और स्वयं मेरे लिये खाना लाने के लिये चलीं। मैंने उन्हें टोकते हुए पूछा—

'लेकिन हान्स कहाँ है?'

'हान्स परसों तक तुम्हारा इन्तज़ार करता रहा; जब कोई समाचार नहीं मिला तो अकेले हाइडिलबेर्ग लौट गया।'

यह समाचार सुन कर मैं थोड़ा निराश अवश्य हुआ और उस

निराशा की झलक अपने चेहरे पर आने देने से भी अपने को नहीं रोक सका। उन्होंने यह परख लिया और कहने लगीं—

'घबराओ नहीं, यहाँ हान्स के न रहने पर भी तुम्हें कोई तकलीफ़ नहीं होगी। यहाँ आने के पहले भी वह अपने पत्र में तुम्हारा ज़िक्र कर चुका था और जब यहाँ था तब तो प्रायः ही तुम्हारी चर्चा किया करता था।'

इतना कह कर वे रसोई-घर में चली गईं। थोड़ी देर में ही घी में कुछ तले जाने की छुनछुन और चम्मच की खटपट सुनाई पड़ने लगी और सोंधी-सोंधी सुगन्ध भी आने लगी। मैं उस बैठक की सजावट देखने लगा। कमरा छोटा था, पर चारों ओर की दीवारों पर बड़े-बड़े तथा बहुत से चित्र टँगे थे। उन चित्रों में कई ऐसे थे जिन पर चित्रकार की अन्तिम कूँची नहीं फिर पाई थी। बालकोन की खिड़की के पास एक तीन टाँग वाले फ्रेम पर भी एक चित्र टँगा था और उसके पास ही रंग तथा कूँची रखी थी। वह चित्र अभी आरम्भ ही किया गया था, पर उसकी रेखाओं से मेरे लिए यह पहचानना कठिन नहीं था कि वह हान्स की पोर्ट्रेट खींची जा रही थी। अभी जिस रूप में लकीरें थीं वे असली चीज़ से बहुत कम मिलती-जुलती थीं। स्पष्ट दीखता था कि हान्स जैसा-कुछ है वैसा ही उसे चित्रकार नहीं रहने देना चाहता, बल्कि स्वयं उसमें जो भाव देखा करता है उन्हें व्यक्त करना चाहता है। दीवार पर टँगे दूसरे चित्रों के लिये भी यही बात लागू होती थी।

थोड़ी देर में जब हान्स की माँ कुछ खाने की चीज़ें लिये फिर उस कमरे में आईं तो मुझे उन चित्रों की ओर ताकते हुए देख बोलीं—

'हान्स के पिता चित्रकार हैं। बहुत दिनों से बेकार थे, पर इधर दो सप्ताह से एक दूकान सजाने का काम मिल गया है।'

मैं खाने बैठा तब भी वे मेरे सामने की कुर्सी पर आ बैठीं और हान्स तथा उसके पिता के विषय में चर्चा करती रहीं। मैं बीच-बीच में सिर्फ़ 'हूँ, हूँ' करता जाता था। मुझे ऐसी भूख लगी थी कि उस परिवार से परिचित-अपरिचित होने का ख़याल बिलकुल भूल कर सामने की चीज़ें निधड़क और निःसंकोच बिना चबाये पेट में डालता जाता था। जब सर उठा कर देखा तो समझ पड़ा कि हान्स की माँ के चेहरे पर भी प्रसन्नता झलक रही थी। भोजन जल्दी में तैयार किया गया था, फिर भी ख़ासा ज़ायकेदार और काफ़ी था। अपने पुत्र को खिलाते समय माँ के चेहरे पर सन्तोष का सा भाव आने लगता है। हान्स की माँ के चेहरे पर भी वैसा ही भाव छाता जा रहा था। उन्होंने कहा भी—

'मेरे पास रहोगे तो फिर तुम्हें ऐसा दुबला नहीं रहने दूँगी।'

जिस सोफ़े पर मैं बैठा था उसी पर मेरा बिछौना रख दिया गया। सोने जाने के पहले हान्स की माँ ने मेरे दोनों हाथ अपने हाथ में ले 'गुडनाइट! भली भाँति सोओ' कहा और वहाँ से चली गईं। जाने के पहले उन्होंने दो-तीन बार यह जाँच कर देख लिया कि मेरा बिस्तर नरम तथा गरम है अथवा नहीं; तकिये पर भी दृष्टि डाल कर देखा कि वह कहीं बिलकुल नीचा अथवा अधिक ऊँचा तो नहीं है।

कमरे में जब काफ़ी धूप आने लगी थी उस समय मेरी नींद टूटी। बगल के बरामदे से किसी के चलने-फिरने की आवाज़ आ रही थी। झटपट कपड़े पहन कर मैंने दरवाज़ा खोला। हान्स की माँ अपने हाथ में दो-तीन जाली वाले तथा एक चमड़े का झोला लिये अभी-अभी बाज़ार जाने वाली थीं। मुझे कमरे से निकलता हुआ देख कर रुक गईं और बोलीं—

'गुडमौर्निङ्ग ! अच्छी नींद तो आई न ? हान्स के पिता तड़के उठ कर काम पर चले जाया करते हैं; पर उन्होंने कहा है कि वे खुद तुम्हें बर्लिन दिखलायेंगे। मुझे भी सबेरे उठ जाने की आदत है। आशा है, तुम्हारी नींद में कोई बाधा न पड़ी होगी।'

'नहीं, नहीं, मुझे काफी अच्छी नींद आई।' मैंने अँगड़ाई लेते हुए कहा।

'तुम्हारा जलपान तैयार है; अभी दूँ ?'

हाथ-मुँह धो कर जलपान करने बैठा। उस समय भी वे कल की तरह ही मेरे सामने की कुर्सी पर बैठी रहीं और मेरे माता-पिता हैं अथवा नहीं, कितने दिनों से उन्हें नहीं देखा, विदेश आये कितने दिन हुए, हान्स से कैसे परिचय हुआ, हान्स कैसा लड़का है—आदि चर्चा करती रहीं।

जलपान कर चुकने पर बाज़ार से साग-भाजी खरीदने मैं भी उनके साथ चला। उनके हाथ के झोले अपने हाथों में ले लेने पर काशी के दशाश्वमेध-घाट की मुझे बार-बार याद आने लगी, जहाँ अक्सर वैसे ही झोले ले जाकर साग-भाजी खरीद लाया करता था।

बाज़ार भी वास्तव में दशाश्वमेध-घाट के बाज़ार से बिलकुल मिलता-जुलता था। यहाँ भी वैसा ही शोर-गुल मचा हुआ था। हाँ, यहाँ कुछ ऐसी चीजें ज़रूर बिक रही थीं जो बनारस में नहीं बिका करतीं।

जहाँ बाज़ार लगा था वहाँ एक तङ्ग रास्ते से पहुँचने पर चारों ओर से कानों में आवाज़ें आने लगीं—

'सेब, खाने के सेब, पकाने के सेब, पीले कुम्हड़े, लाल मूली, सुन्दर गाजर, फूल-गोभी, बँधी-गोभी, सतालु, सस्ते आलू, सालात—पचीस फेनिंग में आधा सेर ! पचीस फेनिंग ! इससे सस्ता और कभी नहीं

मिलने का। सब चीज़ें चुनी हुई। दुनिया-भर में सबसे सुन्दर और सस्ती। सिर्फ़ पचीस फेनिंग।'

दूकानों में बैठे हुए दूकानदार भी अपने सामने रखी चीज़ों के ढेर में भली भाँति फबते थे। एक जगह गोभियों का ढेर लगा था, जिसके ऊपर सबसे बड़ी गोभी रखी थी। उसके सामने ही उस बड़ी गोभी-जैसे बड़े सर वाला दूकानदार बैठा था। जिस समय गोभियों को उलट-पुलट कर वह अपने ग्राहकों को दिखलाने लगता, उस समय जब उस गोभी के बिखरे हुए पत्ते ऊपर हो जाते तो उसका आकार ठीक बेचने वाले के सर और उसके बालों-जैसा दीखने लगता था।

प्याज, टमाटर तथा गहरे लाल रंग के सेबों के बीच भरे हुए गालों वाली एक लड़की बैठी हुई थी जिसके गाल उसके सामने रखी चीज़ों से कम लाल नहीं थे। उसे दूसरों के समान चिल्लाने की बहुत कम ही फ़ुर्सत मिल पाती थी। वह हाथ में सेब लेती और अपने कन्धे पर के कपड़े से पोंछ कर खाने लगती। उसे अपनी चीज़ों के बेचने की इतनी फ़िक्र नहीं थी, जितनी इस बात के देखने की कि आख़िर उसकी ओर कितने लोगों का ध्यान आकर्षित हो रहा है और उन लोगों में उसके जाल में फँस जाने वाले कितने हैं। यदि उसकी दूकान के सामने कोई आ खड़ा होता तो उस समय मुँह भरा रहने के कारण उसके मुँह से स्पष्ट बोली नहीं निकल पाती और ऐसा लगता मानो वह कह रही हो—

'लाल सेर की कीमत पचास फ़ेनिंग।'

सचमुच ही यदि उसे अपने आसपास कोई ऐसा युवक दिखलाई देता जो उसकी ओर एकटक देखता होता तो उसके चेहरे की लाली और भी गहरी हो जाती, पर ऐसा हाव-भाव दिखलाती मानो उसका उस ओर बिलकुल ही ध्यान नहीं है। पर असल में उस आदमी की

एक भी हरकत उसकी आँखों से नहीं बच पाती थी। ऐसे मौके पर यदि संयोग से उस आदमी से चार आँखें हो जातीं तो चिल्ला-चिल्ला कर दूसरे दूकानदारों की लय में लय मिला कर कहने लगती—

'टमाटर चालिस फ़ेनिंग, सुन्दर सेब पचास फ़ेनिंग, सस्ते प्याज पन्द्रह फ़ेनिंग।'

हान्स की माँ एक दूकान पर कुछ ख़रीदने के लिए रुक गई थीं। मैं वहाँ से ही उस सेब बेचने वाली की सभी हरकतें देख रहा था। मुझे उधर एकटक ताकते देख हान्स की माँ ने कहा—

'चलो, उस दूकान से थोड़े फल ख़रीद लें।'

इस प्रकार सौदा ख़रीद कर हम लोग घर लौटे। बाज़ार जाते समय ही रास्ते में उन्होंने मुझसे पूछा था कि सबसे अधिक मैं कौन सी चीज़ खाना पसन्द करता हूँ और निश्चय किया था कि चावल-भरे टमाटर बनायेंगी। घर लौट आने पर उन्हें याद आई कि हम लोग टमाटर ख़रीदना बिलकुल ही भूल गये। वे तुरन्त ख़ुद बाज़ार जाना चाहती थीं; पर मैंने कहा, मैं भी ख़रीद ला सकता हूँ। उन्हें पूरा-पूरा विश्वास नहीं हुआ, इसलिए दुहरा-तिहरा कर कहने लगीं—

'मैं टमाटर हमेशा एक किसान की लड़की की दूकान से ख़रीदा करती हूँ। वह तुम्हें मिलेगी?'

'क्यों नहीं? ढूँढ़ लूँगा। वही न जिसके यहाँ सेब ख़रीदा था?'

'हाँ! पर उतने बड़े बाज़ार में उसकी दूकान तुम ढूँढ़ पाओगे? वह मिठाई बेचने वाले की बगल में है और उसके आगे की ओर की दूकान सूखे फल, मक्खन तथा अण्डे बेचने वाली की है।'

'मुझे मालूम है, मालूम है।' कहता हुआ मैं सीढ़ियों के नीचे उतरता हुआ चला गया।

इसी प्रकार कई दिन बीत गये। हान्स के पिता के साथ बर्लिन देखा, वहाँ के चिड़ियाख़ाने तथा कई बड़े-बड़े काफ़े-घर देखे। दो-तीन बार सिनेमा भी देखने गया। मैं उस परिवार के स्नेह-भार से दबा जाने लगा। मेरी ख़ातिरदारी में उन्होंने कोई बात उठा नहीं रखी।

एक दिन सबेरे नित्य की भाँति हाथ-मुँह धोकर अपने कमरे में लौटा तो देखा कि मेज़ पर एक बहुत बड़ा केक रखा है और उसके चारों ओर चौबीस मोमबत्तियाँ जल रही हैं। केक के बीच में चीनी की बनी एक छोटी सी मूर्ति रखी गई थी जिसके हाथ में एक धनुष सा था और जो ग्रीस की किंवदन्ती के आमूर की सी शक्ल का था। अभी मैं उसका कुछ मतलब नहीं समझ पाया था कि इसी समय उस परिवार के माता-पिता आये और मेरा हाथ कस कर दबाते हुए उन्होंने मेरी वर्षगाँठ के उपलक्ष में मुझे बधाई दी।

जीवन में यह सबसे पहला अवसर था जब मेरी वर्षगाँठ मनाई गई थी। मेरे पास जो पासपोर्ट था उसके अनुसार सचमुच ही उस दिन मेरी वर्षगाँठ पड़ती थी, पर यह बात मुझे ख़ुद ही याद नहीं थी। हान्स से मैंने बातचीत के सिलसिले में ही कभी यह कह डाला था और उसी के द्वारा उन लोगों को भी मेरे जन्मदिन का पता लग गया था। यों ही उनकी ख़ातिरदारी तथा स्नेह-भार से मैं दबा जा रहा था; उस वर्षगाँठ मनाये जाने के बाद से तो मुझे यह सूझ ही नहीं पड़ रहा था कि आख़िर मैं अपनी कृतज्ञता उनके सामने किस प्रकार प्रकट करूँ। मैं अपने-आपको उनके उतने अधिक स्नेह का पात्र नहीं समझता था। विदेश में हूँ, यह बात उन दिनों बिलकुल ही भूल चुका था। अपने भीतर किसी प्रकार का भी अभाव नहीं पाता था।

मेरी हाइडिलबेर्ग की परिचित केटी भी उन दिनों बर्लिन में ही थी।

रोज़ याद करने पर भी अब तक उसे टेलीफ़ोन नहीं कर पाया था। हान्स के पिता से पूछने पर मालूम हुआ था कि वह स्थान जिसका मैंने नाम लिया था वहाँ से दूर था और कई बार गाड़ी बदलनी पड़ती थी। मेरे जन्मदिन की बात उसे भी मालूम थी। मैं मन-ही-मन सोच रहा था कि वह अवश्य ही मुझे बधाई देने के लिए उत्सुक होगी, यह मेरी ही भूल है कि अब तक उसे अपना पता नहीं बतलाया।

उसी दिन दोपहर के बाद अकेला शहर देखने चला। एक पोस्ट-आफ़िस में जाकर केटी के दिये नम्बर पर टेलीफ़ोन किया। उधर से एक स्त्री की आवाज़ आई—

'आप किसे चाहते हैं?'

'केटी, केटी······शुल्च, फ्राउलाइन केटी शुल्च को।'

'आप हैं कौन?'

'हम दोनों पुराने परिचित हैं।'

'धन्यवाद! आप उसको कोई सन्देश देना चाहते हैं?'

'नहीं! मैं एक घण्टे के भीतर स्वयं वहाँ आता हूँ।'

जिस घर में मैंने प्रवेश किया वह एक पेन्सियोन था। पेन्सियोन की मालकिन ने मुझे एक सजे-सजाये कमरे में बैठने के लिए कहा। उस कमरे में एक प्रौढ़ा स्त्री पहले से ही बैठी थी। उसने स्वयं बातें करना आरम्भ किया—

'आप कुमारी शुल्च के दोस्त हैं?'

'जी हाँ! हम लोगों का परिचय हाइडिलबेर्ग में हुआ था।'

'क्या आप यह आशा रखते हैं कि आगे चल कर उससे आप शादी करेंगे?'

उस औरत के शब्दों में रुखाई भरी थी; पर उसका ख़याल न करते हुए मैंने कहा—

'परिचय का मतलब शादी करना थोड़े ही हुआ करता है ?'

'तो आप उसके साथ धोखेबाज़ी करेंगे ?'

'धोखेबाज़ी ? यह बात तो कभी सपने में भी मेरे मन में नहीं आई।'

'यह मन में नहीं आई, फिर भी आपने उस लड़की का जीवन बिगाड़ दिया है।'

'मैंने ?'

'अब मैं आपको एक बार देख लेने पर पूरे विश्वास के साथ कह सकती हूँ कि आपने ही, और किसी दूसरे ने नहीं, केवल आपने ही अकेले उस लड़की का सारा जीवन ख़राब कर दिया है।'

मुझे ऐसा मालूम हुआ मानो मेरे पाँव के नीचे की धरती खिसकती जा रही है। मैंने पूछा—

'यह कैसे ?'

'आप यहाँ विदेशी हैं, आपको अपनी ज़िम्मेदारी समझनी चाहिये थी; पर उसके बदले आप······'

मैं समझ गया था कि इस बार यह पहले से कहीं ज्यादा अपने मुँह से ज़हर उगलने जा रही है, इसलिए बीच में ही बात काटते हुए मैंने कहा—

'लेकिन एक बार आप केटी, केटी फ़ाइलाइन शुल्त्स से ही क्यों नहीं पूछ देखतीं ? मैं सदा उन्हें आदर की दृष्टि से देखता आया हूँ, और अब भी देखता हूँ। कभी कल्पना में भी मेरे मन में उनके विषय में कोई बुरे विचार नहीं आये। मैं ऐसा नीच आदमी नहीं ! मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि उनके साथ मेरा सम्बन्ध सदा पवित्र तथा मैत्री का ही रहा है।'

मेरी घबड़ाहट जितनी ही बढ़ती जाती थी, वह औरत अपना चेहरा उतना ही अधिक शांत बनाये रखने की चेष्टा कर रही थी। मैं उसके

आक्षेपों के कारण जितना ही अधिक व्यग्र होता जा रहा था वह मुझे अपनी कटाक्षपूर्ण तिरस्कृत हँसी द्वारा उतनी ही अधिक मार्मिक पीड़ा पहुँचाने का यत्न कर रही थी। एक क्षण के लिए मन-ही-मन ऐसा भी लगा कि केवल मेरे सामने बैठी यह औरत ही नहीं, बल्कि सारा संसार ही मेरे ऊपर वैसा आक्षेप कर रहा है। फिर, वैसी हालत में, उस औरत से यह पूछना भी व्यर्थ था कि आख़िर वह कौन है और मेरे ऊपर आक्षेप करने का भी उसे किसने अधिकार दिया।

मैं यह विचार कर ही रहा था और कुछ कहने ही जा रहा था कि सहसा केटी ने उस कमरे में प्रवेश किया। मैं अपने भीतर का आवेग निकालने ही जा रहा था कि केटी के आ जाने से उसके निकलने का दरवाज़ा एक-ब-एक बन्द हो जाने के कारण मेरी चञ्चलता और भी बढ़ने लगी।

मैं वहाँ दो-तीन मिनट और भी बैठा रहा। मेरा सारा शरीर जलने लगा। आवेश को रोक रखने पर चेहरा फीका पड़ गया था, यह मैंने अपने सामने के आईने में देखा और तुरन्त उठ खड़ा हुआ। उस स्त्री ने इस बार भी कटाक्षपूर्ण तिरस्कृत मुसकराहट से 'आपका भला हो' कहते हुए बिदा ली।

सड़क पर आने पर अपने आत्माभिमान को चूर-चूर हुआ तथा मिट्टी में मिलता हुआ महसूस करने लगा। आँखों के आगे की सारी चीजें घूमती-नाचती जान पड़ने लगीं। उस स्त्री तथा केटी दोनों के ही प्रति तीव्र घृणा हो गई। क्रोध के मारे मैं काँपने लगा और कई बार अपने को स्थिर रखने के लिए अपने सूखे हुए होंठ चबाने लगा। जिस रास्ते से होकर आया था, बिना सोचे-विचारे उधर ही मेरे पाँव पड़ने लगे। इस समय मेरे भीतर की विचार-शक्ति जल भुन कर बिलकुल ख़ाक हो चुकी

थी। आगे और कुछ सोचने की न तो शक्ति ही रह गई थी और न इच्छा ही हो रही थी।

जब रेल से उतर कर पैदल घर की ओर चला उस समय धीरे-धीरे चेतना आने लगी। सामने आईने के न रहने पर भी अपना चेहरा आँखों के सामने दिखलाई देने लगा और वैसी शक्ल बनाए घर लौटने में हिचक होने लगी। कई बार रूमाल से अपना चेहरा साफ़ किया मानो उस पर बहुत गर्द छा गई हो। जब उससे भी सन्तोष नहीं हुआ तो पानी के एक नल के नीचे जाकर ख़ूब अच्छी तरह सर धो लिया। कई मिनट तक ठण्डे पानी के नीचे सर किये रहा, जिसके छींटों से कालर आदि बिलकुल भीग गये।

घर की सीढ़ियों पर चढ़ते-चढ़ते एक-ब-एक यह भी निश्चय कर लिया कि अब और यहाँ नहीं रहूँगा। मेरी आहट सुन कर माँ जी (हान्स की माँ को माँ जी कहा करता था और तू कह कर पुकारता था) भी वहाँ आ गईं। उनकी ओर बिना देखे ही मैंने कहा—

'आज पहली ट्रेन से ही हाइडिलबेर्ग जाऊँगा, एक ज़रूरी काम आ पड़ा है।'

मेरी बात सुन कर वे अवाक् रह गईं। मुझे रोक रखने की उन्होंने बहुत चेष्टा की, पर जब मुझे अपने हठ पर बिलकुल अड़ा हुआ देखा तो मेरे लिए कुछ खाने का सामान साथ दे देने के निमित्त चौके में चली गईं। वे मुझे स्टेशन तक पहुँचाने साथ चलना चाहती थीं; पर इस बार भी हठ कर मैंने उन्हें रोक दिया। अब तक मुझे अपने चेहरे में जलन सी मालूम पड़ रही थी।

बिदा लेने के समय मैंने उनकी ओर देखा। जब मैं बिलकुल छोटा था उस समय की एक घटना आँखों के सामने नाच गई। उस

समय भी मैं अपनी माँ का आँचल पकड़े हुए खड़ा था और संसार ने मुझे जीवन में पहले-पहल जिस अन्याय से परिचित कराया था उससे पीड़ित हो रोने लगा था और उसके आँचल में अपना मुँह छिपा लिया था। माँ ने उस समय मुझे अपनी गोद में ले लिया था और उसी समय मैंने यह सत्य पहचाना था कि संसार के सभी लोग अन्यायी नहीं होते, यहाँ भी कुछ ऐसे प्राणी वास करते हैं जिन्हें मनुष्य अपना कह सकता है। और यदि सारा संसार ही ठुकराता-दुत्कारता रहे तो उस समय भी कम-से-कम उस एक स्थान पर शरण मिलना बिलकुल निश्चित है। उस समय मेरे बचपन का वह सबसे बड़ा सङ्कट था; और आज अपनी युवावस्था का एक बड़ा सङ्कट सामने था। आज अन्यायी संसार ने मुझे एक ठोकर लगाई थी, मैं अपने को पूर्णतया निर्दोष पाता था और मेरी सुनने वाला—मुझे सच्चा कहने वाला—कोई भी नहीं दीखता था; इसीलिए अपने पूर्व-परिचित स्थान पर शरण लेने की इच्छा हो रही थी।

शायद माँ जी मेरी अवस्था का ठीक-ठीक अन्दाज़ा लगा रही थीं; इसीलिए बिदाई के समय उन्होंने मेरा आलिंगन किया पर कुछ बोलीं नहीं; किन्तु उनका यह न बोलना ही मुझे भली भाँति समझा-समझा कर कह रहा था—

'मैं समझती हूँ, मैं तुझे पूरी तरह समझती हूँ, तू बिलकुल निर्दोष है। संसार बड़ा ही क्रूर है। विश्वास रख, मेरी गोद में तेरा सदा ही स्थान बना रहेगा।'

स्टेशन पर पता चला कि ट्रेन के जाने में तीन घण्टे की देर है। वे तीन घण्टे मुझे तीस वर्ष जैसे मालूम हुए। बर्लिन के मकान ऐसे दीखते मानो वे मुझे काट खाने के लिए मुँह बाये खड़े हैं। मेरे लिए वहाँ साँस लेने को हवा नहीं थी। तीन घण्टे क्या, तीन मिनट भी मैं

वहाँ नहीं बिता सकता था। स्टेशन के जिस हॉल में खड़ा था वहाँ लोगों का बराबर ही आना-जाना लगा था, सबको जल्दी पड़ी थी, किसी को किसी दूसरे की ओर निहारने का भी अवकाश नहीं था; पर मुझे मालूम पड़ रहा था कि वे सभी मुझे घृणा की दृष्टि से देख रहे हैं।

छटपटाता हुआ फिर बाहर सड़क पर निकल आया। आज भी कुहासा छाया हुआ था। रास्तों पर जलने वाली बत्तियाँ ऐसी दीखती थीं मानो वे शहर के अन्धकार को और भी अधिक बढ़ाती जा रही हैं। मुझे केवल एक ही चिन्ता लगी थी—जितनी जल्दी हो सके, इस शहर से अपना पीछा छुड़ाऊँ। संसार के किसी भी कोने में, वीरान-से-वीरान मरुभूमि में भी, मुझे रहना पसन्द था; पर बर्लिन में नहीं। हान्स के पिता ने आज सबेरे ही मुझसे कहा था कि कल बर्लिन के चारों ओर की झीलें देखने चलेंगे; मैंने भी खुशी-खुशी हाँ कह दिया था; पर इस समय वह घटना वर्षों पहले बीती हुई सी दीख रही थी।

अपना देश

सर्दी का मौसम शुरू हो गया था जब मैं हाइडिलबेर्ग लौटा। इस बीच प्रोफ़ेसर राइनहार्ट को अमेरिका के एक विश्वविद्यालय से व्याख्यान देने का निमन्त्रण आया था। उसे स्वीकार कर वे अमेरिका चले गये थे। उनके लौटने में अब कुछ सप्ताहों की देर थी।

मैं हान्स से मिलने गया। वह भी कहीं बाहर गया हुआ था। मेरे पास जितने पैसे बच रहे थे उनसे मैं विद्यार्थियों के उपयुक्त औसत दर्जे की कोठरी का पहले महीने का किराया मुश्किल से चुका सकता था। इसलिए मैं सस्ती कोठरी की तलाश में निकला। बीच शहर से दूर, जहाँ कारख़ानों में काम करने वाले मज़दूर ही अधिक संख्या में रहा करते थे, मैं एक ग़रीबों के मुहल्ले की ओर बढ़ा।

रास्ते में मेरा ध्यान मकानों के सामने अथवा खिड़की से लटकाये गये, किराये पर उठने वाली कोठरियों के बोर्डों पर था; उनमें भी विशेषकर मकानों की सबसे ऊपर वाली मंज़िल पर। जिन मकानों की दीवारें फटी रहतीं, दरवाज़े टूटे रहते अथवा जो सब दृष्टियों से बिलकुल बेढंगे से दीखते, उनकी ओर ही मेरा ध्यान ख़ास तौर से जाता क्योंकि मुझे आशा थी कि उन मकानों में रहने वाले ग़रीब सस्ते में मुझे अपने घर का एक कोना किराये पर दे देंगे।

दो-तीन घण्टे तक घूमते रहने के बाद एक ऐसी छत पर की कोठरी मिली जिसका किराया सप्ताह में दो मार्क (दो रुपया) था। जिस मकान में वह कोठरी थी वह एक बड़े कब्रगाह के ठीक बगल में था। इसकी मालकिन का व्यवसाय कफ़न बेचना था और वह स्वयं उस मकान के दोमंज़िले पर रहती थी। वह जिस मंज़िल पर रहती थी वहाँ भी एक कोठरी ख़ाली थी; पर उसका किराया अधिक था। अपना 'मज़ार्दे' (छत पर की कोठरी) दिखलाने में पहले तो घर वाली को संकोच हुआ; पर जब उसने देखा कि मैं उस 'मज़ार्दे' में ही रहना पसन्द करता हूँ तो वह उसकी बड़ी तारीफ़ करने लगी।

वह 'मज़ार्दे' बिलकुल छोटा और ठीक कछुए के पेट के आकार का था। जिस स्थान से कछुए अपना गला बाहर निकालते हैं वैसा दीखने वाला स्थान बिलकुल ख़ाली सा था और केवल वहाँ से उस 'मज़ार्दे' में रोशनी आ रही थी। बैठे रहने पर, उस छेद से छोटे चौकोर आकाश के सिवा और कुछ दिखलाई नहीं पड़ता था; पर खड़े होने पर, नीचे दाहिनी ओर छोटे-छोटे पेड़-पौधों से ढके एक मैदान का थोड़ा सा भाग दीखता था जो असल में कब्रगाह था। बाईं ओर ज़रा दूर पर (क्योंकि उस 'मज़ार्दे' से ठीक नीचे की चीज़ें नहीं देखी जा सकती थीं) एक लाल रंग का कारख़ाना था जहाँ पर तीन लम्बी-लम्बी, धूएँ से काली हुई चिमनियाँ दिखलाई देती थीं। उधर का दृश्य भी दाहिनी ओर के ही समान सुनसान, वीरान तथा निर्जन सा दीखता था। यह दृश्य बड़ा ही उदास तथा अप्रिय था और बाहर उजाला रहने पर भी ऐसा लगता मानो वह सारा दृश्य ही किसी घने अन्धकार में छिपा है। उस ओर मुझे दिखलाते हुए घर वाली कहने लगी—

'इस 'मज़ार्दे' से आप बाहर का बड़ा ही सुन्दर दृश्य देख सकते हैं। ऊपर देखिये तो स्वच्छ आकाश दिखलाई देता है, बाईं ओर शहर का

दृश्य और दाहिनी ओर थोड़ी सी हरियाली। इससे बढ़ कर और क्या चाहिये? यहाँ रहने पर आप अनायास ही कवि बन जायँगे।'

इस 'मञ्जार्दे' के एक भाग में डेढ़ टाँग पर टिका हुआ बाबा आदम के ज़माने का एक सोफ़ा रखा था। गद्दे के स्थान पर गहरी धूल के कारण वह नरम और चिकना दिखलाई देता था; और तीन स्थानों पर उसके भीतर के पुराने लोहे के जंग लगे हुए स्प्रिङ्ग बाहर झाँक रहे थे। उस सोफ़े के सिरहाने की ओर काठ की एक तिकोनी तिपाई भी रखी थी। मालकिन ने उस सोफ़े की ओर दिखलाते हुए कहा—

'और आपके सोने के लिए यह नरम सोफ़ा है। देखिये ज़रा दबा कर, कैसा गरम है! इस पर कभी बड़े-बड़े लखपती व्यवसायी बैठा करते थे। अभी भी यह 'मञ्जार्दे' मैं किसी को किराये पर नहीं देना चाहती थी; पर आप ठहरे विद्यार्थी, विद्यार्थियों की सहायता करना मेरा धर्म है। आप ख़ुशी से यहाँ रहिये, आपका मन यहाँ ऐसा लग जायगा कि आप फिर और कभी कोई दूसरी कोठरी देखना न चाहेंगे। अभी पिछले ही महीने में सताइस आदमी इस 'मञ्जार्दे' को किराये पर माँग चुके हैं; पर मैंने किसी को भी नहीं दिया, क्योंकि बाहर से अच्छे कपड़े रहने पर भी वे मुझे ख़ानदानी नहीं दीखते थे। आप ठहरे विद्यार्थी, आप अवश्य ही अच्छे ख़ानदान के होंगे; आपसे मुझे कोई भय नहीं।'

जितनी देर मैं वहाँ खड़ा था उतनी देर में ही मेरा दम घुटने सा लगा था, चारों तरफ़ अन्धकार सा दीखता था, अपने भीतर-बाहर कहीं भी अन्धकार के सिवा और कुछ नहीं देख रहा था। मुझे ऐसा लग रहा था मानो बुख़ार आ गया हो। मैंने पूछा—

'लेकिन यहाँ रोशनी तो बिलकुल ही नहीं है!'

'ओह! रोशनी? रोशनी की आप बिलकुल ही चिन्ता न करें। मेरे पास नीचे किरासन तेल से जलने वाला एक लैंप है, वह मैं आपको दे

दूँगी। हाँ, उसका शीशा टूटा हुआ है; पर उससे कोई हानि नहीं। इस हालत में भी वह इलेक्ट्रिक लाइट से कहीं अच्छा है। किरासन तेल की लैंप से आँखों के ख़राब होने का डर नहीं रहता; और आप युवक ठहरे, अपनी आँखों की फ़िक्र सबसे अधिक करनी चाहिये। आँखों में ही सारी दुनिया है।

'यहाँ आपके कमरे में कभी-कभी सुन्दर फूल भी लाकर रख दिया करूँगी। क़ब्रगाह का माली मुझे बड़ा ही सस्ता दे जाया करता है। बड़े सुन्दर फूल हैं; अगर ये क़ब्रों पर सजाये जायँ तो भला उनकी बहार ही लूटने वाला कौन है ? ज़िन्दा लोग ही उनकी बहार लूट सकते हैं और उनमें भी आपके समान युवक ! आपके कमरे की रौनक़ ही फिर कुछ दूसरी हो जायगी।'

उस 'मज़ार्द' का रङ्ग-रूप देखने पर मुझे पता लग गया था कि वह मनुष्यों के रहने योग्य नहीं था। हाँ, किसी को यदि क़ब्र में ही रहना पसन्द आये तब बात ही दूसरी है। फिर भी उस घर वाली की वाक्पटुता से प्रभावित हुए बग़ैर रहना भी नामुमकिन सी बात थी। दूसरा ख़याल सस्तेपन का था; उससे सस्ता किसी छप्पर के नीचे भी स्थान मिलना नामुमकिन था। मैंने फ़िलहाल वहीं अपना डेरा डालने का निश्चय किया।

मकान-मालकिन के नीचे चले जाने पर अपने भीतर, बाहर, चारों ओर सन्नाटा-ही-सन्नाटा दिखलाई देने लगा। मैं उस तिकोनी तिपाई पर बैठने लगा। मैंने अभी उस पर अपना आधा ही भार रखा होगा कि वह चर-चर कर कहने लगी—

'नये अतिथि ! आप मुझे मुक्ति देने आ रहे हैं ? आपका हृदय से स्वागत !'

दूसरे क्षण ही मैंने अपने को अनायास ही डगमगाते हुए पाया

और अभी सँभल भी नहीं पाया था कि मेरा स्टूल मुझे डगमगाते देख खिलखिला कर हँस पड़ा। फ़र्श से उठ कर देखा तो मेरा स्टूल दाँत निपोरे करवट बदलने की चेष्टा कर रहा था।

सोफ़े की ओर दृष्टि गई तो वह भी मुझे ऐसा ही कहता हुआ दिखलाई दिया—

'मैं भी अपने सगे भाई स्टूल की तरह मुक्ति के मार्ग पर हूँ।'

उस पर न बैठ मैंने खड़े रहना ही अधिक अच्छा समझा। अपने मन-ही-मन यह सोच कर हँसा भी कि उस 'मञ्जादें' की सभी चीजें मेरी ही अवस्था के उपयुक्त तथा मुझसे सहानुभूति दिखलाने वाली मिलीं।

इन्हीं दिनों विश्वविद्यालय भी नये सत्र के लिए खुल गया। अब तक जरमन-भाषा में इतनी योग्यता हो गई थी कि प्रोफ़ेसरों के व्याख्यान अनायास ही समझ लेता था, इसीलिए 'पढ़ा-लिखा आदमी' बनने की जो बहुत दिनों से इच्छा प्रबल होती चली आ रही थी, उसे पूरा कर लेने का निश्चय किया।

विश्वविद्यालय में जिन प्रोफ़ेसरों का अधिक नाम था, विशेषकर उनके ही व्याख्यान सुना करता। ऐसे ही प्रोफ़ेसरों में एक प्रोफ़ेसर कुंच थे। इनके प्रति मेरा ध्यान विशेषकर इसलिए आकर्षित हुआ कि ये भारत की संस्कृति, इतिहास, कला-कौशल, सामाजिक जीवन आदि के धुरन्धर विद्वान् समझे जाते थे।

भारतवर्ष के सम्बन्ध में वे कई ऐसी मोटी-मोटी पुस्तकें भी लिख चुके थे जो केवल बड़े-बड़े पुस्तकालयों की आलमारियों की ही शोभा बढ़ाया करती थीं। उन दीर्घकाय ग्रन्थों को देख कर ही उन्हें उलटने की बहुत कम लोगों की हिम्मत हो सकती थी। फिर भी ये पुस्तकें

प्रोफ़ेसर कुंच की ख्याति के लिए कम उपयोगी सिद्ध नहीं हुई थीं। लगभग चालीस-पचास वर्ष पहले जब प्रोफ़ेसर महाशय जवान थे तो एक बार अंग्रेज़ी-सरकार द्वारा तीन महीने के लिए भारत घूमने का एक प्रकार का पारितोषिक भी पा चुके थे। संयोग से वे तीन महीने गरमी की ऋतु में पड़े थे; इसीलिए कुंच महाशय ने अपना पूरा-का-पूरा समय शिमले के एक होटल में बिताया था और वहाँ से ही सारे भारत की सभी प्रकार की परिस्थितियों का 'वास्तविक' अध्ययन किया था ! उसके बाद से उन्होंने न तो फिर से भारत जाने या कोई और स्थान देखने का ही कष्ट उठाया और न किसी भारतवासी की लिखी पुस्तक को ही अपनी दृष्टि से परिचित होने का सौभाग्य प्राप्त होने दिया। पर ये बातें किसी भी रूप में प्रोफ़ेसर साहब के भारत-सम्बन्धी 'वास्तविक ज्ञान' के दावे में किसी प्रकार की कमी लाती हुई नहीं समझी जाती थीं।

एक दिन सचमुच ही मैं उनका व्याख्यान सुनने जा पहुँचा। उनका व्याख्यान एक बड़े से हॉल में हुआ करता था, जहाँ पर लगभग दो सौ विद्यार्थियों के बैठने का स्थान था। सबसे पिछली कतार में जो लोग बैठे थे वे किसी विशेष जरमन विद्यार्थी-सङ्घ के सदस्य थे। उनके सर के बाल ख़ूब चिकने-चुपड़े थे। माँग के पास दो बहुत ही पतली धारियाँ रख छोड़ी गई थीं जिनका प्रत्येक बाल बड़ी सावधानी से काटा हुआ था। चेहरे पर अनेक जगह तलवार के कटे रहने के निशान थे। बातें करते समय वे विद्यार्थी बड़े अभिमान के साथ उन निशानों की ओर संकेत करते हुए बातें करते थे। सर के आकार के मुकाबले में बहुत ही छोटी केवल चार अंगुल लम्बी-चौड़ी टोपी दाहिनी कनपटी से चिपकी थी। उन टोपियों को देख कर पहले-पहल उन्हें देखने वाले ने शायद ही समझा होता कि वे टोपियाँ हैं; उसके बदले शायद वह

यही समझता कि उस जगह कोई फोड़ा हो गया है और उसीको ढकने के लिए वह चिट लगा रखी गई है।

उस हॉल में स्थान-स्थान पर विद्यार्थिनी लड़कियाँ बेंचों के सहारे खड़ी ज़ोरों से बातें कर रही थीं। जिन लड़कियों की प्रकृति थोड़ी शरमीली थी और ज़ोरों से बातें करना पसन्द नहीं करती थीं, वे इस बात का काफ़ी ख़याल रखती थीं कि हँसते समय उनकी पूरी बतीसी दिखलाई दे। विद्यार्थियों के आते-जाते तथा उठते-बैठते समय बेंचों की फटाफट की आवाज़ आ रही थी; पर सभी यही चेष्टा करते दिखाई देते थे कि उनका आना अथवा बैठना इस प्रकार हो कि दूसरे उसे देख या सुन न पायें।

थोड़ी देर में प्रोफ़ेसर साहब भी वहाँ आ पहुँचे और लोगों को शान्ति से बैठने का इशारा करते हुए अपने बोलने के मञ्च पर जा चढ़े। उनकी लम्बी दाढ़ी तथा काले रंग का लम्बा कोट देख कर एक क्षण के लिए प्रोफ़ेसर के बदले उन्हें पादरी समझ लेना ही अधिक स्वाभाविक था।

अभी मैं पूरी तरह यह निश्चय भी नहीं कर पाया था कि प्रोफ़ेसर महाशय का सर कुम्हड़े के आकार का है अथवा हाँड़ी-जैसा, कि उनका व्याख्यान शुरू हो गया। पहले कुछ मिनटों तक तो मुझे ऐसा दीखा मानो किसी ग्रामोफ़ोन के रेकर्ड पर सुई लगा दी गई है और आप-से-आप उससे शब्द निकलने लगे हैं। पर भारतवर्ष का नाम बार-बार आते रहने के कारण मैं अपना ध्यान अधिकाधिक उनके व्याख्यान की ओर केन्द्रीभूत करने लगा। मेरा ध्यान उस ओर जितना ही अधिक केन्द्रीभूत होता जाता, मेरे हृदय में एक प्रकार का सन्नाटा छाता जाता, आवेश तथा क्रोध के मारे मेरा चेहरा थोड़ी ही देर में तमतमा उठा। प्रोफ़ेसर महाशय कह रहे थे—

'भारत में अंग्रेजों के जाने के पहले वहाँ एकता, शान्ति, न्याय, सफ़ाई का ख़याल आदि बातों—एक शब्द में ऐसा कहा जाय कि सभ्यता—का नाम-निशान तक न था। वहाँ के बाशिन्दे अभी भी अधिकांश संख्या में हिन्दू धर्म के मानने वाले हिन्दू हैं। इस धर्म का भवन क्रूरता की नींव पर बनाया गया है!

'यूरोपियन लोग ठगबाज़ी की प्रथा से, जो हिन्दू-धर्म का मूल स्तम्भ है, अपरिचित हैं। इसलिए इस विषय पर मैं विशेष रूप से अगले व्याख्यान में प्रकाश डालूँगा। संक्षेप में ठगबाज़ी का मतलब है धर्म के नाम पर यात्रियों की बलि चढ़ा देना। मनुष्यों की बलि चढ़ाना हिन्दुओं के लिए सबसे बड़े पुण्य का कार्य है! फिर इसके बाद हिन्दू धर्म में सती-दाह का नम्बर आता है। हिन्दू स्त्रियाँ विधवा होते ही ज़िन्दा जला दी जाती हैं। धर्म का सम्बन्ध मन्दिरों से भी है, पर हिन्दू धर्म के मन्दिर वास्तव में वेश्यावृत्ति के लिए खोले जाते हैं!

'हिन्दुओं के बाद मुसलमानों का नम्बर आता है। क्रूरता तथा चरित्रहीनता में ये भी हिन्दुओं से पीछे नहीं रहते हैं; पर इनके धर्म में एक विशेष बात यह है कि औरत को चुरा कर अथवा ज़बर्दस्ती किसी से की गई शादी ही जायज़ करार दी जाती है; साधारण प्रकार से शादी करने की प्रथा को ये कायरता के नाम से पुकारते हैं।

'फिर इन हिन्दू, मुसलमान तथा भारत के सभी बाशिन्दों में जो बातें समान हैं उन्हें सुन कर आप एकदम दङ्ग रह जायेंगे। उनके यहाँ पिता का पुत्री के साथ, भाई का बहन के साथ, पिता-पुत्र दोनों का एक ही स्त्री से सम्बन्ध रखना आम बात है तथा बुरा नहीं समझा जाता! वहाँ जैसे ही लड़कियाँ पैदा होती हैं वैसे ही उनका विवाह हो जाता है

और सात-सात वर्ष की अवस्था में वे स्वयं बच्चे पैदा करने लगती हैं। इसके सिवा·······'

प्रोफ़ेसर साहब के इतना कहते-कहते मेरे दिमाग़ का पारा उस हद तक चढ़ चुका था जिसके आगे बर्दाश्त की शक्ति नहीं रह जाती। क्रोध इतना चढ़ आया था कि अपने जूते के फ़ीते तक खोलने लगा था; पर उसे निकालने में जब देर होने लगी तब मैं चिल्ला उठा—

'सरासर झूठ!'

प्रोफ़ेसर एक क्षण के लिए रुक गये; पर मेरी ओर दृष्टि पड़ते ही हँसने लगे। मैंने उनका व्याख्यान सुनने वालों की ओर दृष्टि दौड़ाई। किसी के भी चेहरे पर आश्चर्य की रेखा नहीं थी। प्रोफ़ेसर ने जो भी कुछ कहा था उसे वे केवल स्वाभाविक ही नहीं, बल्कि एकमात्र सत्य समझ रहे थे। प्रोफ़ेसर के हँसने लगने पर मेरी ओर देख कर कई विद्यार्थी भी मुसकराने लगे। प्रोफ़ेसर ने फिर कहना शुरू किया—

'आप इसे सहन नहीं कर पाते, पर मैं जो कुछ भी कह रहा हूँ वह सत्य है तथा समाज-शास्त्र के वैज्ञानिक अन्वेषण के लिए उसका जानना नितान्त आवश्यक है।'

अब तक 'समाज-शास्त्र' के 'जानकारों' के प्रति जो श्रद्धा थी वह एक-ब-एक लुप्त हो गई। उनका वास्तविक पैशाचिक रूप मैं अपनी आँखों के सामने देखने लगा। कस कर दाँतों से होंठ दबा रखा था, फिर भी मुँह से निकल ही पड़ा—

'पिशाच! तेरा दिमाग़ ख़राब हो गया है।'

चारों ओर से 'श्‌···श्‌···श्‌···' की आवाज़ आने लगी। मैं यह भी बरदाश्त नहीं कर पाया और अपने चारों ओर सर घुमा कर मैंने देखा और बोल उठा—

'गधे!'

मेरी समझ में मेरी यह आवाज़ दबी ज़बान से निकली थी; फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि उस हॉल में ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं था जिसके कानों में मेरी वह आवाज़ न पहुँच पाई हो। प्रोफ़ेसर साहब ने अपने स्थान से ही चिल्ला कर कहा—

'बाहर जाओ।'

और भी एक-दो तरफ़ से यही आवाज़ आई। मैं उठ कर बाहर चला आया। पर तुरन्त—मालूम नहीं, क्या मन में आया—जिस दरवाज़े से प्रोफ़ेसर ने उस कमरे में प्रवेश किया था, उधर जाकर उसे खोलने की चेष्टा करने लगा। वह बन्द था। मैं उस पर घूँसे से खटखटाने लगा। इतने में देखा कि दूसरे दरवाज़े से निकल कर विद्यार्थी बाहर जा रहे हैं। वे हँस रहे थे।

मेरी हालत अजीब तरह की हो रही थी। आप-ही-आप ज़ोरों से बड़बड़ाता तथा दौड़ता हुआ सड़क पर निकल आया; क्रोध के कारण जो ख़ून सर में चक्कर लगाने लगा था उसे घूंट कर फिर से गले के नीचे उतारने की चेष्टा करने लगा। मन में रह-रह कर आ रहा था कि कुल्हाड़ी लेकर जाऊँ और जिसने मुझे अपमानित किया है उसकी माँग पर जहाँ बाल नहीं, ठीक उसी जगह तोल कर और कस कर एक हाथ मारूँ। उसके हँसने की आवाज़ अभी भी मेरे हृदय को छेद रही थी। पर फिर मन में आता—उस एक के मारने से आख़िर क्या होगा? उसके समान ही विचार रखने वाले यहाँ बहुत हैं, उन सबसे अकेले इस प्रकार बदला नहीं लिया जा सकता। उन सबके प्रति मेरे भीतर ऐसी घृणा भर आई कि उसकी गन्ध से मेरा अपना दम घुटने सा लगा।

सत्य तथा वैज्ञानिक अन्वेषण के नाम पर वे ऐसा अन्याय क्यों करते हैं, यह बात मेरी समझ में नहीं आ रही थी। मैंने अथवा मेरे

देश ने उनका क्या बिगाड़ा है कि वे उसे इतनी घृणा की दृष्टि से देखते हैं ? यदि वे वहाँ के विषय में नहीं जानते तो चुप रहें; पर इस प्रकार प्रचार करने से आखिर उन्हें क्या मिलता है ? उनके पक्ष की पुष्टि करने वाली कोई भी दलील मेरी समझ के बाहर थी और उनके कार्यों में सरासर अन्याय के सिवा और कुछ भी नहीं देख पाता था। मनुष्यों के अन्याय, उनके घृणित-से-घृणित, भद्दे-से-भद्दे, वीभत्स-से-वीभत्स स्वरूप को, जान पड़ता था, मानो अभी जीवन में पहले-पहल ही देखने का मौका मिला है। 'सत्य' तथा समाज-विज्ञान के वैज्ञानिक अन्वेषण का स्वरूप भयङ्करता के साथ-ही-साथ ऐसा वीभत्स दीख रहा था कि उस ओर दृष्टि डालने में भी इस समय घृणा हो रही थी।

अपने 'मजार्दे' में पहुँच कर मैंने दरवाजा बन्द कर लिया और सोफे पर पड़ रहा। अपना चेहरा भी कपड़े से इस प्रकार ढक लिया कि साँस लेना मुश्किल हो गया।

उन दिनों जरमनी के नात्सी-दल के हाथ में वहाँ की राज्य-शक्ति आ गई थी। उस दल के नेता हिटलर ने भी बहुत पहले से ही अपनी वैदेशिक नीति में यह घोषित कर रखा था कि भारत-जैसे उपनिवेशों के लोग नीच हुआ करते हैं और गोरी जातियों को उन्हें घृणा करने तथा उन पर शासन करने का पूर्ण अधिकार है! कालेजों के प्रोफ़ेसर नात्सी-दल की इसी नीति का अपने व्याख्यानों में समर्थन किया करते थे और ऐसा करने के लिए वे बाध्य भी किये जाते थे।

मुझसे प्रोफ़ेसर तथा विद्यार्थियों की कटाक्षपूर्ण हँसी भुलाई नहीं जा रही थी। यह बात मुझे बहुत खटक रही थी कि प्रोफ़ेसर के कथन में कोई बात भी सच्ची नहीं थी; पर लोग उनका ही विश्वास करते और यदि उनके खिलाफ़ चिल्ला-चिल्ला कर मैं लोगों को अपने देश के विषय में,

जैसा कि मैंने उसे देखा है और जिससे परिचित होने का मैं दावा रख सकता हूँ, बतलाता तो लोग मुझे पागल के सिवा और कुछ नहीं कहते।

अन्याय—यह सरासर अन्याय है।

मैं इस तरह सोचता-विचारता और करवटें बदलता सो गया। दूसरे दिन सबेरे विश्वविद्यालय में व्याख्यान सुनने जानने की इच्छा नहीं हुई। वे व्याख्यान असत्य, घृणा तथा अन्धकार की ओर ले जाने वाले थे, उनका उद्देश्य मेरे देश तथा वहाँ के बाशिन्दों में अपने-आपके प्रति नीचता का भाव लाना था।

मुंह धोते समय चीनी-मिट्टी के बर्त्तन में, जिसमें पानी भरा था, नाक डुबाये बड़ी देर तक दम साधे रहा और अपने-आपसे कहता रहा—

'हाँ, वास्तव में ही तुम्हें चुल्लू-भर पानी में डूब मरना चाहिये।'

तौलिये से मुंह पोंछते समय प्रोफ़ेसर के मुंह से निकली बहुत सी बातें फिर याद आने लगीं। मैं अपने-आपसे कहने लगा—

'हाँ, हमारा देश धन-धान्य पूर्ण होने पर भी संसार के सारे देशों में सबसे अधिक निर्धन है। ग़रीब लोगों को देख कर लोग उनका मज़ाक उड़ाया ही करते हैं, यह स्वाभाविक ही है। पर यह भी तो एक बार सोचना चाहिये कि आख़िर इतनी दरिद्रता हमारे देश में आई ही कैसे? इसका कारण अवश्य ही हमारी गुलामी है। हमारी गाढ़ी मेहनत की कमाई पर दूसरे देश धनाढ्य हो गये हैं और आज भी धनाढ्य बने हैं, गुलछर्रे उड़ा रहे हैं। वे हमें लूटने वाले हैं; पर उनकी ओर कोई उँगली तक नहीं उठाता, क्योंकि वे स्वतन्त्र हैं, शक्तिशाली हैं। हमें सभी दुत्कारते हैं, धिक्कारते हैं; क्योंकि हम गुलाम तथा शक्तिहीन हैं।'

बाहर सड़क पर आने पर सबसे पहले प्रोफ़ेसर कुंच के ऐसिस्टेंट लोकनर महाशय मिले। वे स्वयं ही हंसते हुए सामने आये और हाथ मिलाते हुए बोले—

'आपकी विजय के लिए बधाई!'

'मेरी विजय? कैसी विजय?'

'किसी प्रोफ़ेसर को ऐसी खरी-खोटी आज तक किसी ने भी नहीं सुनाई होगी।'

इतना कह कर वे फिर हँसने लगे। मुझे उनकी हँसी में व्यंग के सिवा और कुछ नहीं दिखलाई दिया। उनसे शीघ्र ही बिदा ले मैं आगे बढ़ता चला गया। अपने को गुलाम, शक्तिहीन तथा पराजित एवं दलित के रूप में देख रहा था और इसे बर्दाश्त करना असम्भव हो रहा था। फिर अपना चेहरा ढक लेने की इच्छा हो रही थी। और आगे न बढ़ बगल के विश्व-विद्यालय वाले पुस्तकालय में जा घुसा। वहाँ पर भारतवर्ष के सम्बन्ध में जितनी पुस्तकें थीं उनकी सूची देख गया और फिर उनके पन्ने उलटने लगा। अधिकांश पुस्तकें अंग्रेज़ों की लिखी थीं अथवा उन्हें ही आधार मान कर किसी दूसरे ने लिखी थीं। प्राय: उन सभी पुस्तकों से केवल एक ही प्रकार की बू आती थी। सभी अपने-आपको भारत का सबसे बड़ा जानकार सिद्ध करने की चेष्टा करते थे। अपनी इसी चेष्टा की पूर्ति में वे अपनी कल्पना-शक्ति की बागडोर पूरी तरह से छोड़ देते थे और भारत के नाम पर किसी ऐसे देश का कल्पना-पूर्ण चित्र चित्रित करने लगते थे जिसका पृथ्वी पर होना अवश्य ही विचारशीलों के लिए असम्भव सी बात हो जाती। उन पुस्तकों के लेखकों ने शुरू से अन्त तक केवल एक ही बात सिद्ध करने का अपना उद्देश्य बना रखा था और वह यह कि भारतवासी नीच और अंग्रेज़ उच्च हैं, इसीलिए अंग्रेज़ों को भारत पर अधिकार जमाये

रखने का अधिकार है। अंग्रेजों का यह अधिकार जमाये रखना भारत-वासियों के ही फ़ायदे का है, क्योंकि जिस क्षण भारत में अंग्रेजी सल्तनत नहीं रह जायगी उसी क्षण वहाँ उत्पात, ख़ून-ख़राबी मच जायगी तथा घरेलू लड़ाइयों में ख़ून की नदियाँ बहने लगेंगी। सच बात यह है कि इन्हीं ख़ून की नदियों का अतिरंजित वर्णन वे उन पुस्तकों में किया करते और बच्चों को जिस प्रकार भूत-प्रेत से डराया जाता है उसी प्रकार अपने पाठकों के भीतर डर जमाने की चेष्टा किया करते।

जो लेखक निष्पक्ष रहने का दावा करते थे उन्होंने अपना एकमात्र उद्देश्य बना रखा था विजेताओं को उत्साहित करना, उनकी प्रशंसा करना तथा विजित लोगों को और भी अधिक नीचा दिखलाना, उन्हें धिक्कारना। जिन्होंने भारतवर्ष में संयोग से कुछ घण्टों के लिए भी पाँव रखा था, वैसे लेखक तो उपर्युक्त बातों को दोहराना अपना जन्म-सिद्ध अधिकार मानने लगे थे। कुछ लेखक तो ठीक ऐसे लालची कुत्तों की तरह थे जो किसी भोज में दुम हिलाते हुए केवल जूठन चाटा करते हैं। जिन लोगों का भारतवर्ष की समस्या तथा वहाँ की बातों से जितना ही कम परिचय था उन्होंने अपना अज्ञान छिपा रखने के लिए उतनी ही मोटी पुस्तकें लिख रखी थीं तथा अपने को भारतवर्ष की जानकारी पर सबसे बड़ा प्रामाणिक व्यक्ति सिद्ध करने की चेष्टा की थी।

अपने देश की समस्या को इस पहलू से देखने वालों के अध्ययन ने मुझे एक सप्ताह तक और किसी भी काम अथवा विचार के लिए निकम्मा बनाये रखा। अख़बारों के पढ़ने की मुझे बहुत कम ही आदत थी; पर इन दिनों भारतवर्ष के सम्बन्ध में जिन-जिन अख़बारों में समाचार छपा करते उन्हें पढ़ने लगा। उनका भी आशय उपर्युक्त पुस्तकों से कुछ भिन्न नहीं था।

मैं अपने देश की किसी प्रकार की भी बुराई को अस्वीकार करने की चेष्टा करता था, यह बात नहीं थी। उन लेखकों का उद्देश्य हमारी बुराई दिखला कर हमें कुछ अच्छे रास्ते पर लाना नहीं था, बल्कि वे जो कुछ भी दिखलाते थे, एक शत्रु की हैसियत से; और उनका उद्देश्य हमें सदा नीचे दवाये रखना तथा नीचा बतलाते रहना था। मुझे ठीक ऐसा लगता था जैसे हमारा देश किसी समुद्र में डुबाया जा रहा हो और चारों तरफ़ के लोग उसके साँस लेने के लिए सर उठाने का प्रयत्न करते ही गिद्ध की तरह उसका मांस नोच खाने के लिए टूट पड़ते हों।

प्रोफ़ेसरों का व्याख्यान सुनना, समाज-विज्ञान का अध्ययन करना, आदि बातें—जिनमें अपना समय बिताना सत्र के आरम्भिक दिनों में निश्चय किया था—इस समय मुझे ज़हर की घुट्टी की तरह दिखलाई देने लगी थीं।

इन दिनों एक क्षण के लिए भी यह चेतना मेरे भीतर से दूर नहीं होती थी कि मैं भारतवासी हूँ और उस देश के अपमान में मेरा अपना अपमान है तथा उसके प्रति किया गया अन्याय मेरे निज के प्रति किया गया अन्याय है।

मुझे इस समय अपने यूरोप के जीवन पर एक बार शुरू से आख़ीर तक दृष्टि डाल जाने पर यही आश्चर्य हो रहा था कि आख़िर वह चेतना इतने दिनों से क्योंकर दवी पड़ी थी और मैंने अपना ध्यान 'रोमैंस' आदि की ओर क्योंकर इतनी देर तक खिंचे रहने दिया। इस दोष के लिए अब अपने को क्षमा करने के लिए राज़ी नहीं था।

एक दिन अपने घर से निकल कर ज्यों ही सड़क पर आया, आस-पास के लड़के मुझे घेर कर खड़े हो गये और कहने लगे—

'मुझे भी एक सेब दीजिये।'

'तुम लोगों को कैसे मालूम कि मेरे पास सेब हैं?'

'हमारी माँ ने कहा है कि आप अक्सर चुरा लाया करते हैं।'

चुराने का नाम सुन कर उन बच्चों के साथ-ही-साथ मैं भी हँस पड़ा। कई बार उन बच्चों के साथ खेल चुका था, इसलिए उनसे सेब के विषय में सच्ची बात जान लेने में भी अधिक समय नहीं लगा। वास्तव में बात ऐसी हुई थी कि उस दिन घर से मेरे चले जाने पर घर-मालकिन 'मझार्दे' में उसे साफ़ करने गई। (पहले वह सप्ताह में दो बार साफ़ किया करती थी, पर जबसे उसे किराया नहीं मिला था, यह पहला ही मौका था जब वह ऊपर गई थी।) वहाँ सेब तथा कुछ केक देख कर उसने आस-पास की स्त्रियों से चर्चा की थी कि किराया देने के लिए मेरे पास पैसे नहीं, फिर मैं इतने आराम से रहता ही कैसे हूँ? इसका उत्तर भी उसने स्वयं ही देते हुए कहा था कि मैं चोरी-चाटी करके खाया करता हूँ। उसके कथनानुसार तो मैं उस घर-मालकिन की भी एक बार रोटी तथा पनीर चुरा कर खा गया था! सेब देख कर तो उसे विश्वास ही हो गया कि मैंने उसी के सेब चुराये थे; क्योंकि अपने पास रखे सेबों को वह भली भाँति पहचानती थी! पड़ोस की स्त्रियों के सामने मेरे विषय के इस व्याख्यान में उसने यह भी सिद्ध कर दिया था कि मेरे पास एक ऐसी चाबी है जिससे सभी प्रकार के ताले खुल जाया करते हैं, और दूसरी औरतों को सचेत कर दिया कि वे यदि मुझसे अपनी चीज़ों की रक्षा करना चाहती हैं तो उन्हें ताले के साथ ही साथ अपने दरवाज़ों की ऊपर और नीचे की सिटकनियाँ भी बन्द रखनी चाहियें। उस सभा में सर्वसम्मति से पास हो गया था कि मैं चोर हूँ, और वह भी अकेला ही नहीं बल्कि भारतवासी मात्र ही चोर हुआ करते हैं! उन्हीं चन्द घण्टों में उस बात का इतना प्रचार हुआ था कि मुहल्ले-भर का बच्चा-बच्चा तक यह बात जान गया था।

मैं घर-मालकिन के स्वभाव से भली भाँति परिचित हो चुका था और इसीलिए समझता था कि उससे झगड़ने का बुरा छोड़ कर कोई भला परिणाम नहीं निकलने का। पर क्रोध के कारण पाँव ऐसे काँपने लगे थे मानो मैं बहुत पुराना शराबी ही होऊँ। आगे पाँव रखते समय मुझे सबसे बड़ा खटका यह हो रहा था कि कहीं दूसरी ओर से कोई परिचित आता हुआ न मिल जाय।

अभी कुछ ही दूर गया हूँगा कि सचमुच ही पीछे से मुझे किसी ने पुकारा। घूम कर देखा तो लोकनर महाशय थे और उनके पास ही केटी खड़ी थी। मुझे चुप देख कर केटी ने पूछा—

'इस सत्र में भी आप यहीं अध्ययन कर रहे हैं?'

उत्तर में मैंने थोड़ा मुसकराने का प्रयत्न किया; पर वह मुसकराहट ऐसी बेढंगी निकली कि दूसरे ही क्षण अपना चेहरा अपनी आँखों के सामने व्यङ्ग-चित्र के रूप में दीखने लगा।

हम लोग शहर के मुख्य रास्ते पर खड़े थे। हमारे बाईं ओर एक बड़ा सा सिनेमा-घर था जिसके मुख्य दरवाज़े पर बड़ी रौनक़ थी तथा लाल, हरे, नीले रङ्ग की रोशनी चमक रही थी। मुझे उधर ग़ौर से निहारते देख केटी ने कहा—

''बङ्गाल के जङ्गलों में?' यह तो भारत-सम्बन्धी फ़िल्म है! बाहर जो चित्र लगे हैं उनसे तो मालूम पड़ता है कि फ़िल्म बड़ा ही अच्छा होगा।'

हम लोग साथ ही वह फ़िल्म देखने गये। उस फ़िल्म में भारतवासियों के ऐसे भद्दे चित्र दिखलाये गये थे और उनका चरित्र ऐसा हीन दिखलाया गया था कि उसे देख कर किसी भी भारतवासी का सर नीचा हुए बिना न रहता। ख़ासकर हमारे देश की स्त्रियों का चरित्र बड़ा ही पतित दिखलाया गया था; वेश्याओं का नाच ऐसी

कमीनी हरकतों के साथ दिखलाया गया कि दर्शकों के मन में घोर से घोर घृणा के भाव भर रहे थे। पूरा फ़िल्म ही इस प्रकार का था कि भारतवासियों के चरित्र, उनके नैतिक जीवन, बाहरी रहन-सहन आदि में कोई भी अच्छी बात नहीं दिखलाई गई थी—उन सबका स्वरूप जितना अधिक दूषित दिखलाया जा सकता था, दिखलाया गया था।

विदेश में भारत-सम्बन्धी फ़िल्म देखने का यह मेरा पहला ही अवसर था। यदि उस फ़िल्म की सभी बातें विदेशी लोग सच्ची मानें तो भारत तथा यहाँ के लोगों को घृणा की दृष्टि से देखे बिना नहीं रह सकते, इसमें कोई सन्देह नहीं। अपने देश के इस हद तक हीन दिखलाये जाने की बात देख मेरा सारा शरीर क्रोध से जलने लगा। फ़िल्म की वीभत्स बातें देख कुछ लोग अपनी हँसी नहीं रोक पा रहे थे। उन्हें हँसता देख मैं ज़मीन में गड़ता जा रहा था।

उस फ़िल्म के तैयार करने वालों ने यूरोप का सुन्दर-से-सुन्दर चित्र दिखलाने का प्रयत्न किया था; पर यूरोप से भी मैं इतने काल में भली भाँति परिचित हो चुका था और यह जानता था कि यदि वहाँ का भी कुत्सित चित्र लिया जाय तो वह भी अवश्य ही कम-से-कम भारत के बराबर ही रसातल को पहुँचा हुआ दीखेगा। यदि सभी बातों पर शुद्ध भावना से विचार किया जाता तो अवश्य ही मेरा सर नीचा होने का कोई कारण नहीं था; पर उस मण्डली में, सच्चे कहे जाने वाले वैसे चित्रों को देख कर, मेरी सुन ही कौन सकता था!

केटी मेरे चेहरे का वह परिवर्तन देख रही थी, पर उसने मुझे छेड़ा नहीं। जिस समय हम फिर बाहर सड़क पर आये, मैं लहू के घूंट पी रहा था। फ़िल्म देख कर अपनी धारणा बना लेने वाले लोगों के

वास्तव में निर्दोष रहने पर भी उन पर अत्यन्त क्रोध आ रहा था और उनका बुरे-से-बुरा कुछ कर डालने की प्रवृत्ति हो रही थी।

अपने मन को बहुतेरा समझाने पर भी भीतर-ही-भीतर यह अस्वीकार नहीं कर सकता था कि जबसे उस 'मज़ार्दे' में रहने लगा था, मेरा जीवन अधिकाधिक नीरस बनता जा रहा था। यदि कभी नीचे की सड़क से कोई बड़ी लारी निकल जाती तो वह अवश्य ही मेरे 'मज़ार्दे' तक को थोड़ा हिला देती, नहीं तो सदा एक प्रकार की शांति सी वहाँ पर छाई रहती जिसे अस्वीकार करते रहने पर भी दिल से घृणा करने लगा था। वह शांति कब्र की शांति सी दीखती थी और मालूम पड़ता था कि मैं ज़िन्दा ही उस कब्र में डाल दिया गया हूँ। यदि कब्रगाह से उस मौके पर करुणाजनक बाजे की आवाज़ आती तो मेरा वह विचार और भी पक्का हो जाया करता। फिर मुझे इस बात में कोई सन्देह न रह जाता कि वह बाजा मुझे अपनी 'मज़ार्दे' वाली कब्र में ही ज़िन्दा गाड़ देने के लिए बजाया जा रहा है। एक सप्ताह में ही मैं अपने-आपसे अपरिचित बन गया। चहल-पहल वाला, सदा परिवर्तित होने वाला, सदा हँसता हुआ भी कोई जीवन हो सकता है, इस बात पर से धीरे-धीरे विश्वास उठता जाता था।

इन्हीं दिनों मुझसे मिलने के लिए एक दिन हान्स मेरे 'मज़ार्दे' में आया। मेरी सारी परिस्थिति समझ लेने पर उसने कहा—

'लोगों की बातों को तुम अधिक महत्त्व दिया करते हो; यदि इस बात का ख़याल छोड़ दो तो फिर तुम्हारी परिस्थिति में ऐसी कोई बात नहीं जिसके लिए इतनी अधिक चिन्ता की जाय।'

हान्स अपनी बातों से मेरे घाव पर मलहम सा लगा रहा था। ऐसा लगता था मानो वे बातें मेरे किसी सगे भाई के मुँह से निकल रही हों।

उसने समय-समय पर अपना निज का उदाहरण देते हुए कहा कि लोगों को पहले स्वयं अपना निज का स्वरूप देखना चाहिये और फिर उसके बाद ही किसी दूसरे के विषय में कुछ कहने का अधिकार रखने का दावा करना चाहिये। लोग ऐसा नहीं किया करते; इसीलिए दूसरे के विषय में वे जो कुछ भी कहते हैं उसका कुत्तों के भूँकने से कुछ अधिक महत्त्व नहीं। मेरे विषय में उसने कहा कि मेरे इस प्रकार दबने अथवा चुप्पी साध लेने से लोग और भी अधिक शोख़ बन जायँगे तथा और भी अधिक चिढ़ाया करेंगे। मुझे उसने लोगों को उपयुक्त उत्तर देने की सलाह दी और कहा कि मैं स्वयं अपने देश के विषय में कुछ लिखूँ और वह अख़बारों में छपवाया जाय। अपनी उस प्रकार की पूरी तैयारी कर लेने पर प्रोफ़ेसर से भी टक्कर ली जा सकती है और दूसरे अख़बारों के लिए लिखने पर उससे थोड़ी-बहुत आर्थिक सहायता भी मिल सकती है। भाषा सुधारने तथा टाइप करने का काम उसने अपने ऊपर ले लिया।

हम दोनों हँसते हुए उस 'मज़ार्द' से बाहर निकले और दोनों को ही विश्वास हो गया कि उसी क्षण से हमारे आनन्द का समय आरम्भ हो गया है। उसके बाद जो कई घण्टे सड़क पर मैंने बिताये, उस समय भी मेरे भीतर उदासी अथवा उत्साहहीनता का कोई भाव नहीं था।

जिस समय घर लौटा मेरे पाँव आनन्द के मारे बड़ी जल्दी-जल्दी पड़ रहे थे। मुझे ऐसा दीखता था मानो नदी, पहाड़ी, आकाश, सभी मुझसे कह रहे हैं—

'तुम नीच नहीं, इसीलिए नष्ट भी नहीं हो सकते। तुम्हें नष्ट होने की बात सोचने का अधिकार ही नहीं है। हताशा, निराशा आदि को

ठोकर मार उठ खड़े हो और लड़ाई में अपनी सारी शक्ति लगा दो। तुम्हारी विजय अनिवार्य है।'

मेरे भीतर से भी उसके उत्तर में निकल रहा था—

'नहीं, मैं पददलित या नष्ट नहीं होने का ! मेरी जय अनिवार्य है।'

वे मेरे अथवा मेरे देश के विषय में चाहे जो कह या लिख सकते हैं, मैं उसकी परवा नहीं करता। जो सत्य है उसे वे पलट नहीं सकते। उनका कथन सरासर झूठ है, इसलिए मैं उसे किसी भी हालत में स्वीकार नहीं कर सकता। मैं उसे अस्वीकार करता हूं; इसीलिए वह मेरी बेचैनी का कारण नहीं बन सकता।

इन बातों के अपने भीतर जम जाने तथा आत्मविश्वास के भाव के जाग्रत हो जाने पर दूसरे दिन से ही पूरे उत्साह तथा साहस के साथ काम पर जुट गया। सबसे पहले अपने देश की आर्थिक तथा सामाजिक परिस्थिति पर छोटे-छोटे लेख लिखना आरंभ किया। मुझे लिखने की आदत नहीं थी; पर बिना लिखे उन दिनों रह भी नहीं सकता था।

एक सप्ताह के भीतर ही दो-तीन लेख तैयार हो गए और हान्स ने भी उनकी भाषा दुरुस्त कर दी। अब प्रश्न उनके छपवाने का था। मैं पहले से ही यह समझ बैठा था कि चूंकि मेरे लेख सत्य के अधिक निकट हैं, इसलिये समाचारपत्र वाले उन्हें अवश्य ही ले लेंगे। मैंने तीन लेख तीन समाचारपत्र वालों के पास भेजे। एक लेख तीसरे ही दिन की डाक से 'धन्यवाद-सहित वापस' मिला। उसके वापस करने का उसमें कोई कारण भी नहीं दिया गया था। दूसरा लेख कई सप्ताह तक प्रतीक्षा तथा काफ़ी लिखा-पढ़ी करने के बाद इस कारण लौटा दिया गया कि उसके लिये उस समाचारपत्र में स्थान नहीं था। तीसरा लेख एक समाचारपत्र के सम्पादक ने बिना पढ़े ही रद्दी की टोकरी में

छाज दिया था; इसलिए उसके विषय में और कुछ पूछ-ताछ करना ही व्यर्थ था।

अपने मित्रों की सलाह से शहर के एक ऐसे समाचारपत्र के पास, जिसमें भारतवर्ष के समाचार प्रायः छपा करते थे, तथा जो पत्र भारत से सहानुभूति दिखलाता हुआ सा समझा जाता था अपना लेख पोस्ट द्वारा न भेज स्वयं लेकर गया। उसके एक सम्पादक ने बातें तो मेरे साथ बड़ा ही सौजन्य दिखलाते हुए कीं पर अन्त में सलाह यह दी कि यदि प्रोफ़ेसर कुंच उस लेख को ग्राह्य मान लें तो फिर उस पत्र को उसे छापने में कोई एतराज़ न होगा। उसके उत्तर से अधिक कड़वा मेरे लिए शायद ही कोई दूँसरा उत्तर हो सकता था। प्रोफ़ेसर कुंच की मेरे लेखों से सहमत होने की बात तो दूर रही, उनके विचारों को जानते हुए अपना लेख उनके पास ले जाना तक मैं अपने लिए बहुत बड़ा अपमान समझता था।

पर मेरे भीतर उन दिनों आशा की जैसी तरंगें उठ रही थीं, वे सम्पादकों के मेरे लेखों को अस्वीकृत कर देने से दब जाने वाली नहीं थीं। सम्पादकों के उत्तरों की मैं बिलकुल ही परवा न करता। मैं अपने को न केवल उनकी बराबरी का बल्कि उनसे श्रेष्ठ समझने लगा था। वे यदि केवल झूठी बातें ही छापना पसन्द किया करते हैं तो करते रहें! मैं उनकी परवा नहीं करता।

।

मैं सड़क छोड़ कर नदी के किनारे-किनारे चलने लगा। वहाँ कोई रास्ता नहीं था। छोटी-छोटी झाड़ियों को लाँघता हुआ आगे बढ़ता गया।

कुछ दूर आगे जाकर खड़ा हो गया। पीछे फिर कर देखा। शहर

आँखों से ओझल हो गया था। उस ओर से नदी के पानी की कल-कल सुनाई पड़ रही थी।

आज भी वहाँ पर पश्चिमाकाश को अपने सब रंग के बादलों के साथ नदी में स्नान करते हुए पाया। सामने नदी के दोनों ओर पहाड़ियाँ दूर तक दिखलाई देती थीं और जहाँ पर वे क्षितिज में मिल जाना चाहती थीं उधर ही उनके थोड़े ऊपर चाँद अपने को उजले बादलों से ढक लेने की चेष्टा कर रहा था। उसकी यह चेष्टा नीचे पानी में भी दिखलाई देती थी। एक क्षण बाद ही उजले बादलों को उसने दूर फेंक दिया और खिलखिला कर हँसते हुए स्नान करने लगा।

थोड़ी देर के लिए मैं अपने-आपको भी भूल गया। उसी स्थान पर लेट रहा और ऊपर आकाश की ओर देख कहने लगा—

'तुम कितने विशाल तथा सुन्दर हो और मैं जिनके बीच रहता हूँ वे कितने नीच तथा भद्दे हैं!'

थोड़ी देर बाद अपने-आपसे कहने लगा—

'लोग मुझे चाहे जैसा क्यों न समझें, मैं असल में जैसा हूँ खुद ही जानता हूँ।'

अपने दोनों हाथ ऊपर की ओर इस प्रकार उठाये मानो आकाश तथा उन बादलों का आलिंगन करना चाहता हूँ। फिर उन्हें कस कर दबाते हुए कहा—

'हाँ, यही मेरा वास्तविक स्वरूप है। इसे संसार का कोई भी व्यक्ति कलुषित नहीं कर सकता।'

नात्सी

राइन किनारे जिस जरमनी से मेरा परिचय हुआ था उसका रूप दिनोंदिन बदलता जा रहा था। जिन सरल चेहरों ने शुरू-शुरू में मुझे उतना अधिक आकर्षित किया था अब वे ही रूखे, कान्तिहीन और भय से काँपते हुए दिखाई देते थे। दो-एक बहुत निकट के मित्रों को छोड़ कर बाकी परिचित लोगों में इतना अधिक परिवर्तन आ गया था कि उन्हें पहचानना तक कठिन हो रहा था। उन परिचितों का पुराना हार्दिक जरमन अभिनन्दन अब विरले ही दिखाई देता। उसके स्थान पर अब वे दूर से ही अपना दाहिना हाथ तलवार की तरह फुर्ती से ऊपर उठाते और कहते—'हाइल हिटलर!'

यह परिवर्तन सारी जरमन जाति को ही किस दिशा में खींचे लें जा रहा है, यह वहाँ की विद्वद्-मण्डली ठीक-ठीक समझ पा रही थी, पर वह उसका निराकरण करने में असमर्थ थी। अख़बार, रेडियो, सिनेमा, थियेटर, स्कूल, कालेज, नौकरी—जितने कुछ भी प्रचार के साधन हो सकते हैं सब-के-सब केन्द्रीय शक्ति के हाथ में थे। वह केन्द्रीय शक्ति इन दिनों नात्सी दल के हाथ में थी। इस दल के सिद्धान्तों के अनुसार सब तरह की राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक त्रुटियों के दूर करने का

साधन एक ही था—ज़ोर-ज़बरदस्ती ! इसीलिये अपने विचार का प्रचार भी वह दल अधिकतर ज़ोर-ज़बरदस्ती के ही साथ किया करता था।

जरमनी की भूमि फ्रांस की तरह ज़ोर-ज़बरदस्ती के खिलाफ़ क्रान्ति करने वाली नहीं थी, और न यहाँ के लोग फ्रांसीसी लोगों की तरह विचार-स्वातन्त्र्य को ही सबसे ऊपर मानने के आदी थे। जरमनी का ऐतिहासिक विकास इस ढङ्ग से हुआ था कि लोग अपनी-अपनी मर्ज़ी के अनुसार चलने की अपेक्षा केन्द्रीय शक्ति की मर्ज़ी के अनुसार, उसका हुक्म मान कर, चलना ही अधिक पसन्द करते थे। शायद यही एक ख़ास कारण है कि दुनियाँ में सबसे अच्छी फ़ौज जरमनी ही तैयार करने में समर्थ होता आया है।

जरमनी के लोग जानते थे कि देश की आन्तरिक परिस्थिति ने ही नात्सी दल को पनपाया है। नात्सियों के पीछे, उनका सूत्र-सञ्चालन लोहे के मालिक क्रुप, कोयले के राजा थीसेन, बिजली के मालिक सीमेन, रसायन के मालिक ई०गे० और अखबारों के मालिक हुगेनबेर्ग कर रहे हैं, यह वे स्पष्ट देखते थे। वे जानते थे कि उन्हीं चन्द जरमन धनी-वर्ग के नेताओं का हित-साधन करने के लिये नात्सी दल उन्हींके द्वारा धकेल कर आगे खड़ा किया जा रहा है। जरमनी के मज़दूर आर्थिक सङ्कट के ज़माने में अपने हकों की प्राप्ति के लिये विशेष रूप से लड़ने के लिये तुल गये थे। उनसे काम लेने वाले और उनके श्रम पर धनी बनने वालों में इतना साहस नहीं था कि वे खुल्लम-खुल्ला उनके सामने आकर उन्हें दबाते; इसीलिये उस धनी-वर्ग को नात्सी दल के पीछे छिप-छिप कर शिकार खेलने की आवश्यकता पड़ी थी।

उसी दल ने आकर मज़दूरों की एकता भङ्ग की। महायुद्ध के बाद जितना विचार-स्वातन्त्र्य रखने का हक जरमन जनता ने अपना लिया था उसे उसने आकर नष्ट किया। विश्वविद्यालयों से सरस्वती की

मूर्ति हटा कर रणचण्डी की मूर्ति स्थापित की गई। और सबसे बड़ा काम यह किया गया कि युद्ध को ही मनुष्यता की चरम सीमा घोषित करना शुरू हुआ। जरमन जनता का ध्यान आन्तरिक मामलों से फेर कर बाह्य मामलों की ओर लाना ज़रूरी था, नहीं तो वहाँ के धनी-वर्ग के हाथ में अपनाया हुआ धन सुरक्षित नहीं रह सकता था।

इसीलिये जरमन जनता की शान्ति भङ्ग की गयी। विदेशियों को अपनाने में शायद ही और किसी देश की क्षमता जरमन जाति के समान हो! लेकिन इस जनता की न तो राय ली गयी, और न उसकी दिमागी ताक़त में उतना साहस था कि वह अपने विचार खोल कर सामने रख सकती। यदि उसने इस बात की कोशिश की होती तो भी उसे अपने विचार-प्रचार के साधन जुटाना मुश्किल हो जाता। उन सब साधनों पर पहले से ही धनी वर्ग का एकाधिकार था और उसने अपने सङ्कट के मौके पर उन्हें नात्सी दल के व्यवहार के लिये सौंप दिया था। इन साधनों का उपयोग कर और ज़ोर-ज़बरदस्ती के ज़रिये भली भाँति सङ्गठित कर नात्सी दल ने डण्डे के बल आम जनता से अपना सिद्धान्त मनवाना शुरू कर दिया था।

मुझे अपने देश को लेकर जो इतना अधिक झेलना पड़ा था, उसकी जड़ में भी नात्सी दल की ही आज्ञा थी। मुझे ताज्जुब होता कि जिस प्रकार प्रोफ़ेसर राइनहार्ट और हान्स मुझे और मेरे देश को समझ पाते हैं उसी तरह और सब जरमन भी क्यों नहीं समझ पाते। कितने ही, जिन्होंने निष्पक्ष दृष्टि से देखना शुरू भी किया था, इस समय अव्वल दर्जे के पक्षपाती बन गये थे। इस सम्बन्ध की बातें भी प्रोफ़ेसर राइनहार्ट के आने पर ही स्पष्ट हुईं। सब बातें सुन लेने पर मुझे ऐसा जान पड़ा मानो मुझसे कहीं अधिक तकलीफ़ उन्हें पहुँच रही है।

में जब प्रोफ़ेसर कुंच अथवा अख़बार के कुछ सम्पादकों पर दोष मढ़ता तो वे कहते—

'ये लोग तो 'बिचारे' हैं; इनमें तो विरोध करने की भी शक्ति नहीं है! इनका सूत्र खींच रहा है नात्सी दल का परराष्ट्र-नीति-विशेषज्ञ आल्फ्रेड रोज़ेनबेर्ग। उसकी नीति के अनुसार भारतवर्ष जैसे देशों को नीचा दिखलाने तथा अपमानित करने में नात्सी लोगों का अभिप्राय अंग्रेज़ों से मित्रता बढ़ाना है। उसी मित्रता के बल पर वे यह भी आशा रखते हैं कि अपने बड़े शत्रु सोवियट रूस पर हमला कर उसे परास्त कर सकेंगे। पर यह उनकी भूल है। रोज़ेनबेर्ग जैसे व्यक्तियों का राजनीति की वर्णमाला तक से भी परिचय नहीं है। देख लेना, यह हालत अधिक दिनों तक नहीं रहेगी। नात्सी कम-से-कम इस क्षेत्र में आँख खोल कर देखने के लिए बाध्य होंगे।'

कुछ ही सप्ताह बाद वास्तव में ही ऐसा हुआ। भारतवर्ष के प्रति जरमन अख़बारों का रुख़ एक-ब-एक बदल गया। जो अख़बार भारत की सामाजिक और राष्ट्रीय दुर्बलताओं को लेकर उसे नीच सिद्ध किया करते थे, वे ही अब वहाँ के राष्ट्रीय आन्दोलन का संसारव्यापी महत्व साबित कर दिखलाने लगे। मुझे उन पर आश्चर्य करते देख प्रोफ़ेसर राइनहार्ट ने कहा—

'तुम देखना, अब छोटे-से-छोटे तक की आवाज़ बदल जायगी। नात्सियों की बुद्धि मोटी है। अपना वास्तविक शत्रु-मित्र उन्हें तुरन्त ही पहचान में नहीं आता। जरमनी का धनी-वर्ग अब तक सोवियट रूस को अपना सबसे बड़ा शत्रु समझता था, और विचारों तथा भावी समाज-सङ्गठन की कल्पना के सम्बन्ध में सचमुच ही इन दोनों में बहुत बड़ा अन्तर है। पर यह मामला बहुत-कुछ सैद्धांतिक ठहरा, इसलिए इसका आर्थिक प्रश्नों के समान महत्व नहीं है। आर्थिक

मामलों में इस समय सोवियत-जरमन सङ्घर्ष उतना अधिक नहीं रह गया है और इस क्षेत्र में सबसे बड़ी दुश्मनी अंग्रेज़ों से है। उनके साथ जरमनी की दुश्मनी इस सीमा को पहुँच चुकी है कि बिना लड़ाई के और कोई चारा नहीं। अंग्रेज़ों से लड़ाई ठनेगी, अब यह हिदायत नात्सी दल को ज्यों ही जरमनी के धनी-वर्ग ने दी कि उस दल को बाध्य होकर अपनी नीति पलट देनी पड़ी। जिसे वे कल गाली देते थे उसकी ही अब वे सराहना करेंगे। देखना, अब अख़बारों का रुख़ पलटते ही साधारण नात्सी सदस्य भी अपनी बोली बदलेंगे। प्रोफ़ेसर कुंच के भी विचार यहीं से नियन्त्रित होते हैं, इसलिए वे भी पलटेंगे। ऊपर से सिर्फ़ आदेश आने की देर है; हम जरमन लोग आदेश पालन करना ख़ूब अच्छी तरह जानते हैं।'

मध्यम वर्ग के जिन नेताओं को अभी हाल तक अलग-अलग छोटे-छोटे दल कायम कर एक-दूसरे के साथ झगड़ते देखा था वे सब-के-सब अब एक ही नात्सी सिद्धांत का समर्थन करने लगे थे। वे इस समय उस सिद्धांत की महत्ता का गुणगान कर रहे थे। जो अभी कल ही उनके लिए देश का सबसे बड़ा नुकसान करने वाला था एकमात्र वही अब जरमनी में नया प्राण फूँकने वाला समझा जाने लगा था।

कुछ ऐसे भी नेता थे जिन्होंने अब तक जरमन जाति की राष्ट्रीयता की भावना की अवहेलना की थी, उसे बहुत अधिक संकीर्ण और हेय साबित करने की चेष्टा की थी। अब वे ही लोग रास्तों पर सबसे आगे-आगे काली या ख़ाकी नात्सी वर्दी लगाये—'जरमनी, जरमनी, जरमनी—संसार में सबसे ऊँचा' यह जरमन राष्ट्रीय गान गाते चलते दिखाई देते थे।

जो अपने को मनुष्यता के भावों का ठेकेदार तक मान बैठे थे

उनकी भी श्राव पलट गई थी। ये अपने को पहले फ्रांसीसी लोगों से कहीं अधिक मनुष्यता का हिमायती समझते थे। इनके सिद्धांत के अनुसार मनुष्यता के भावों का उद्भव जरमनी से हुआ था; उस आदर्श के लिए मर-मिटने वाले भी वे अपने को ही समझा करते थे। फ्रांस से लड़ने के पक्षपाती जरमन देश-भक्तों के साथ इनका झगड़ा चला करता था। वे देश-भक्त बाहरी शत्रु से लड़ने के पहले अपने देश के इन मनुष्यता के हिमायतियों से ही निपट लेना चाहते थे। अब इन दोनों दलों के लोग देखने लगे थे कि उनके आपसी झगड़ों का निबटना तो बहुत दूर की बात रही, यदि वे और अधिक उसी भाँति झगड़ते रहे तो शत्रु आकर देश और मनुष्यता दोनों को ही एक ही बार में नष्ट कर देगा।

अब प्रश्न उठता था—'वास्तविक शत्रु कौन है?' इस पर भी गौर करने की साधारण जरमन लोगों को आवश्यकता नहीं थी। इस पर बहस-मुबाहिसा भी बलपूर्वक दबा दिया जाता था। जरमनी का धनी-वर्ग जिधर इशारा करता नात्सी उधर ही अपना शिकार देखते और सारे जरमन राष्ट्र को उधर ही टूट पड़ने का हुक्म देते। पहले जरमनी में निवास करने वाले यहूदियों की बारी आयी। कुछ धनी कारखानेदार यहूदी पूँजीपतियों के माल से अपने माल को निम्न कोटि का और महँगा पाते थे; उनके लिये प्रतिद्वन्दिता करना मुश्किल था। यह झगड़ा सबसे पहले निपटाने के लिये नात्सी लोगों का इशारा यहूदियों की ओर कर दिया गया। यहूदियों के खिलाफ़ जिहाद बोल दिया गया। जब इसकी पोल जरमन जनता के सामने खुलने-खुलने को हुई तो उसका ध्यान देश के समाजवादी दल की ओर फेर दिया गया। और इस आन्दोलन का नामकरण हुआ—'जरमन मजदूर दल की एकता का प्रयत्न!' देश के भीतरी विरोधियों की ओर जब और

अधिक ध्यान अटकाये रखना सम्भव नहीं हुआ तो वह बाहरी देशों की ओर फेरा गया। पर राज्य-शक्ति का मूल सिद्धांत यही बना रहा कि चाहे जैसे भी हो, मज़दूर अपनी दृष्टि धनी लोगों द्वारा अपनाये हुए धन की ओर न फेरें। संसारव्यापी आर्थिक सङ्कट द्वारा उनके पेट में भूख की ज्वाला जब अधिक प्रज्वलित होने लगी तो उन्हें बताया गया कि उस भूख का कारण आस्ट्रिया का जरमनी से अलग होना, जेकोस्लोवाकिया के जरमनों की निम्न अवस्था, पोलैंड वालों द्वारा दान्त्सिग के जरमनों का कुचला जाना और इन सबके पीछे फ्रांस का जरमनी को घेर रखने का कुचक्र है। फ्रांस ने ही तो वरसाइ की सन्धि द्वारा जरमन जाति का इतना बड़ा अपमान किया था और जरमन राष्ट्रीयता को कुचल रखने की चेष्टा की थी!

जरमनी का सबसे बड़ा शत्रु फ्रांस घोषित किया गया। इसका सबसे बड़ा कारण जरमन धनी-वर्ग, अपने हित की दृष्टि से, यही देखते थे कि उसीकी आड़ में उनके माल और व्यवसाय का सबसे बड़ा प्रतिद्वन्दी—ग्रेट ब्रिटेन—छिपा है। ब्रिटेन और जरमनी के बीच युद्ध छिड़ने पर फ्रांस किसी भी हालत में तटस्थ नहीं रह सकता था, यह भी वे जानते थे। वे इस नतीजे पर पहुँच चुके थे कि ब्रिटेन पर वार करते समय उन्हें पहला आघात फ्रांस ही पर करना पड़ेगा। इसीलिए जरमन राष्ट्र को फ्रांस के ख़िलाफ़ जिहाद छेड़ देने के लिए तैयार किया गया।

इसलिए देखते-ही-देखते जरमन-फ्रांसीसी सीमा पर मोर्चेबन्दी पक्की कर डाली गई। देश की सम्पत्ति का बहुत बड़ा हिस्सा युद्धोपयोगी शस्त्रास्त्र की तैयारी में खर्च किया जाने लगा। प्रत्येक जरमन में, बच्चे-बच्चे तक में, तोप के मुँह में घुस जाने के लिए तैयार रहने का भाव भरा जाने लगा। देश का सारा वायुमण्डल युद्ध का वायुमण्डल बन

गया। इस प्रकार वस्तुतः युद्ध तो बहुत पहले ही, उसी समय, आरम्भ हो चुका था। सिर्फ़ उसका विस्फोट और उसके द्वारा होने वाला संहार संसार को देखना बाकी था।

प्रोफ़ेसर राइनहार्ट-जैसी प्रकृति के जरमन विद्वान अपने सामने का वह सब परिवर्तन देख कर अपनी दृष्टि सुदूर भविष्य की ओर फेरते और विचार में पड़ जाते। उनके भीतर प्रश्न उठता—

'यह युद्ध क्यों? यह मनुष्य-संहार हमें कहाँ ले जाकर पहुँचायगा?'

उन दिनों इस प्रकार का प्रश्न उठना भी देशद्रोह में शुमार कर लिया जाता था। नात्सी सरकार जरमन जनता को अपनी नीति में अन्धविश्वास रखने के लिए विवश करती थी। उसे भय था कि यदि लोगों के बीच वैसे प्रश्न उठे और जनता तनिक भी सन्देह में पड़ गई तो युद्ध की तैयारियाँ पूरी तरह से नहीं चल सकेंगी। सभ्य जरमन न तो वास्तविक लक्ष्य पहचान लेने पर वैसे नीच आदर्श के लिए वैसा त्याग करने के लिए तैयार होंगे और न वहाँ के नौजवान आधुनिक युद्ध में अपना संहार कराने के लिए जरमनी की सीमाओं पर जायँगे।

पर इस प्रकार का प्रश्न न उठाना प्रोफ़ेसर राइनहार्ट-जैसे विद्वानों को अपनी बुद्धि का अपमान करना मालूम होता था। यह प्रश्न उठाने का क्या परिणाम होगा, इस पर भी वे भली भाँति विचार कर चुके थे। वे कहते—

'हमारे सामने जरमनी की मृत्यु हो रही है, यूरोप रसातल को जा रहा है; यदि हम लोगों ने नात्सी सिद्धांतों के विरुद्ध आवाज़ नहीं उठाई तो इतने परिश्रम से गढ़ी गई हमारे पश्चिम की सभ्यता की

बुनियाद ही खोखली हो जायगी, हमारे देश के बड़े-से-बड़े विचारकों का सदियों का परिश्रम व्यर्थ हो जायगा। सारी यूरोपीय सभ्यता और विशेषकर जरमन सभ्यता के लिए यह सबसे अधिक ख़तरे का समय है। हम लोगों का तटस्थ अथवा चुप रह जाना उसे अवश्य ही नष्ट कर देगा। अगर हमारी आवाज़ द्वारा और कुछ नहीं हुआ—ये मामले आगे बढ़ते ही रहे, मनुष्य-संहार चरम सीमा को पहुँचा ही दिया गया—तो भी आगे आने वाले ऐतिहासिक इतना तो स्वीकार करेंगे कि जरमनी में सभ्य मनुष्य भी रहते थे, जिन्होंने अपनी सभ्यता को बचाने की चेष्टा में अपना प्राण न्योछावर कर दिया। यह मौत आदमियों की मौत होगी।'

जब कभी कोई उनके सामने वरसाई की सन्धि द्वारा किये गये जरमनी के अपमान की चर्चा करता और उसके लिए फ्रांस अथवा यूरोप के और राष्ट्रों को दण्ड देकर उनसे प्रतिशोध लेने की बात उठाता तो वे कहते—

'इस प्रतिशोध का असर बिलकुल ही उलटा होगा। जिन राष्ट्रों के ख़िलाफ़ हम लड़ेंगे उन्हें यदि हम परास्त करने में सफल भी हुए तब भी उन्हें हम उपनिवेशों की तरह अपने चंगुल में नहीं रख सकेंगे। उनकी सभ्यता हमारी ही तरह विकसित है; वे एक हो जायँगे और फिर मज़बूत हो जाने पर उसी तरह का प्रतिशोध हमसे लेंगे। यह चक्र हमारी पश्चिमी सभ्यता के नेस्तनाबूद हो जाने तक चलता रहेगा। पर एक लक्षण अच्छा दिखाई देता है; और इसीलिए उम्मीद होती है कि इतनी दूर तक मामला नहीं बढ़ेगा। जरमन जनता को बहुत अधिक ठगा गया है। उसकी ग़रीबी ज्यों-ज्यों युद्ध के कारण बढ़ती जायगी, त्यों-त्यों वह युद्ध का वास्तविक लक्ष्य समझती जायगी और यह प्रश्न करने लगेगी—'किसके फ़ायदे के लिए यह लड़ाई लड़ी जा रही है? इस

समय हमारा स्थान कहाँ है और लड़ाई के बाद कहाँ पर रहेगा? इस ढङ्ग के प्रश्नों का प्रत्येक महायुद्ध के बाद उठना स्वाभाविक है। गत महायुद्ध के बाद भी ये प्रश्न उठे थे; उस समय जनता जगी थी, लोगों ने अपना वास्तविक शत्रु पहचाना था। जहां तक पहचानने का प्रश्न है, याद रखो, हम जरमन वैज्ञानिकों की जाति हैं। हम जन्म से ही वैज्ञानिक प्रकृति के होते हैं। अगर किसी चीज़ को पहचानते हैं तो भली भांति उसकी तह में पहुँच कर उससे परिचय प्राप्त करते हैं। यही हमारी जाति की सबसे बड़ी विशेषता है। आज हम नात्सी सरकार का हुक्म मान कर चल रहे हैं, किन्तु साथ ही आँखें खोल कर यह भी देख रहे हैं कि उनकी नीति हमें किस दिशा में लिये जा रही है। वे हमें भटकाते रहना चाहते हैं, सारी जनता को भटकाते रहना चाहते हैं, पर युद्ध में कथित शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर चुकने पर भी हमेशा इसी प्रकार जरमन जाति को भटकाते चले जाना सम्भव नहीं होगा। लोग 'फ्रंट' पर शत्रुओं का संहार कर जब घर लौटेंगे तो सबसे अधिक ताज्जुब उन्हें इसी बात पर होगा कि उनका वास्तविक शत्रु तो घर में ही था, वे नाहक ही देश की सीमा के बाहर जाकर इतनी खून-ख़राबी करते रहे। उस समय वे देश की सम्पत्ति और देश के विचारों का वास्तविक शोषण करने वालों को, जरमन और उसके साथ ही सारी यूरोपीय संस्कृति को रसातल की ओर ले जाने वालों को पहचानेंगे और उनसे प्रतिशोध ले कर ही शान्त होंगे।'

थोड़ा विचार कर उन्होंने फिर कहा—

'उस समय हमारे-तुम्हारे विचार के अनुसार नहीं, बल्कि अपने वास्तविक अनुभवों के आधार पर वे नये ढङ्ग से समाज-सङ्गठन करेंगे और संसार के सामने युद्ध की नहीं, बल्कि स्थायी शांति की नए ढङ्ग की

तुम देखना, हमारी जरमन जाति उस समय
म संहार की क्रिया में यदि आगे जाना जानते
करना भी हम जानते हैं। और जातियों से
तना ही रहता है कि जब हम सृष्टि करते हैं
। हमारी सृष्टि 'मनुष्यता'-'मनुष्यता' की डींग
हम पहले अपना काम कर देते हैं और फिर
ं करते हैं।'

प्रायः सब प्रोफेसरों ने क्लास में आने पर
सलामी दे पढ़ाना आरम्भ कर दिया था। सिर्फ़
पना पुराना जरमन तरीका कायम रखा था।
सी अधिकारी तथा नात्सी दल के विद्यार्थियों
का यह बर्ताव खटका करता। उन विद्यार्थियों
क दिन उनके पढ़ाना शुरू करने के पहले ही

मी क्यों नहीं देते ?'

प्रोफ़ेसर राइनहार्ट ने मुसकराते हुए उत्तर
ी चीज़ों में ही अपनापन दीखता है।'

सी सलामी नहीं दी तो हम आपके क्लास में

र पुराने जरमनी, दोनों का दुर्भाग्य मानूँगा।'

 शत्रु हैं!' नात्सी विद्यार्थी-दल के नेता ने
वहाँ से उठ कर चला गया। उसके पीछे-
सब सदस्य और बाद में और विद्यार्थी भी

सजा के डर से उठ कर चले गये। मैं अकेला अपने स्थान पर बैठा रहा।

'मुझे एक विद्यार्थी का तो गर्व रहेगा !' कहते हुए प्रोफ़ेसर मुझे अपने साथ लेते हुए बाहर निकले। दरवाजे के पास खड़े नात्सी विद्यार्थी दल के दो नेता प्रोफ़ेसर राइनहार्ट को सुना कर आपस में बातें करने लगे—

'यह प्रोफ़ेसर अपने को बहुत बड़ा विद्वान समझता है।'

'और फिर भी इतना मूर्ख है कि 'हाइल-हिटलर' नहीं कहता !'

'अजी मूर्ख नहीं, पागल हो गया है।'

'हां, ठीक कहा, पागलख़ाने में जाने की यह काफ़ी योग्यता रखता है।'

'लेकिन ऐसे लोगों के लिये हिटलर ने जो तारों से घिरी हुई जगह तैयार कर रखी है, अभी तो इन्हें वहीं अपनी बुद्धि सुधारने के लिये भिजवा देना चाहिये।'

वे विद्यार्थी इस अन्तिम प्रस्ताव से पूर्णतया सहमत हो गए थे। हँसते हुए वे एक ओर चले गये।

अगले दिन से प्रोफ़ेसर राइनहार्ट नहीं दिखाई दिये। कई दिन बाद विश्वविद्यालय के आंगन में उनकी निजी लिखी हुई पुस्तकों के साथ उनके निजी पुस्तकालय की सब पुस्तकें नात्सी विद्यार्थियों द्वारा जलाई जाती दिखाई दीं।

पुस्तकों को भली भांति जलाने के लिये वे अब उन्हें डंडे से उलटते तो मज़ाक करते हुए कहते—

'प्रोफेसर राइनहार्ट को पूर्व के देशों से बहुत प्रेम था न! इसीलिये कब्र में न जाकर यहां अपनी चिता जलवाई।'

धुआँ और आग की ओर इशारा करते हुए हान्स ने मुझे दिखाया—

'यह है नात्सी जरमनी!'

डूएल

हान्स नाटक-घर से दो टिकट ले आया। उस दिन कोई भारतीय नर्त्तक-मण्डली उस शहर में आई हुई थी और वहाँ पर उसी का नाच होने वाला था। अब तक भारत के नाम पर इस विषय में बहुत बार धोखा खा चुका था। यूरोप की ही मण्डलियाँ केवल अपनी नर्त्तक-मण्डली अथवा संगीत-मण्डली का नाम भारतीय ढङ्ग पर दे देती थीं और उसी का प्रचार भारत के नाम पर हुआ करता था। उस दिन भी इससे अधिक आशा मैं नहीं रखता था। पर उस नाटक-घर के मुख्य दरवाज़े पर किसी नर्त्तक का एक बड़ा सा चित्र टँगा था। नाच के रङ्ग-ढङ्ग, वेष-भूषा तथा नर्त्तक का रङ्ग-रूप देख कर मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं रह गया कि वह सचमुच ही भारतीय है।

अभी नाटक-घर की रोशनी बुझाई ही गई थी और सामने का पर्दा हटने ही वाला था कि अँधेरे में अपना स्थान टटोलते हुए हम लोग जा बैठे। हम लोगों का स्थान कुछ बुरा नहीं था।

अभी हम बैठ ही पाये होंगे कि सामने का पर्दा हटा। पर्दे के हटने पर भी थोड़ी देर तक मञ्च अँधेरे में ही रहा। फिर धीरे-धीरे धुँधले प्रभात की रोशनी वहाँ दिखलाई गई। मञ्च की सजावट काफ़ी

मच्छी थी। उसी धुँधले प्रभात में सङ्गमरमर का एक विशाल मन्दिर मोटे-मोटे तथा बड़े ऊँचे पायों के साथ दिखलाया गया था। उस मन्दिर के बीच आँगन में कोई व्यक्ति खड़ा बाँसुरी बजा रहा था। पहले तो उस व्यक्ति ने अपने पाँव ठीक उसी प्रकार रखे थे जैसे कृष्ण-लीला में कृष्ण के पाँव बाँसुरी बजाते समय रहा करते हैं। फिर धीरे-धीरे उसी बाँसुरी के ताल में उसने नाचना भी शुरू कर दिया। पर्दे के भीतर से तबला, सारंगी तथा और भी कई बाजों के धीरे-धीरे बजने की आवाज़ आ रही थी और उस व्यक्ति के पैरों में जो घुँघरू बँधे थे उनकी आवाज़ पर्दे के भीतर से आने वाली आवाज़ को दबाती हुई नाच का वास्तविक ताल दे रही थी।

मैं अपने देश के संगीत से भली भाँति परिचित नहीं था, फिर भी मेरे लिए यह पहचानना कठिन नहीं हुआ कि वह व्यक्ति जिस स्वर में बाँसुरी बजा रहा था तथा नाचता जा रहा था उसका ताल चौताल तथा राग भैरवी था। वह संगीत ऐसा समझ पड़ रहा था मानो हम अभी प्रभात की नींद में सो रहे हों और कोई बड़ी ही सावधानी से सुरीले राग में हमें धीरे-धीरे जगाने का प्रयत्न कर रहा हो। जगाने वाला अपने जानते इसका भरपूर प्रयत्न कर रहा था कि कहीं सोने वाले यह न समझ बैठें कि कोई उनके बिलकुल पास ही बैठा गा रहा है। इतने निकट से गाने पर भी ऐसा दीखता था मानो वह आवाज़ कहीं दूर से आ रही है।

जब सामने के स्टेज पर धीरे-धीरे फिर घोर अन्धकार छा गया और बाँसुरी की आवाज़ सुदूर अतीत में लुप्त हुई सी दीखने लगी और नर्त्तक भी नहीं दिखलाई देने लगा तो मेरी नींद टूट गई। मेरे चारों ओर बैठे लोग तालियाँ पीटने लगे थे। उन तालियों के पीटने की आवाज़ कानों में ऐसी कर्कश लगने लगी कि इच्छा हुई कि जितने लोग

मेरे चारों ओर बैठे हैं उनके गालों पर उसी प्रकार बिना सोचे-समझे तमाचे जड़ने लगूँ। पर अजीब बात तो यह थी कि बाँसुरी बजाने वाला फिर स्टेज पर आ लोगों की ओर देख कर तथा अपने दोनों हाथ उठा-उठा कर भारतीय ढङ्ग से उन्हें नमस्कार कर रहा था। हाँ, इतनी बात अवश्य थी कि इस समय स्टेज पर काफ़ी उजाला कर दिया गया था। लोग जितनी ही अधिक तालियाँ पीटते, वह नर्त्तक उन्हें उतना ही झुक-झुक कर प्रणाम करता। मुझे आश्चर्य हो रहा था कि ताली पीट-पीट कर जिन लोगों ने उसके संगीत की मधुरता फीकी कर दी है, आख़िर वह गुस्से में भर कर उन्हें कम-से-कम घूँसा क्यों नहीं दिखलाता। उसका यह कार्य मैं स्वयं पूरा कर रहा था। अच्छा था कि लोग न तो मेरी ओर देख रहे थे और न उन्हें देखने का मौका ही मिला; क्योंकि फिर उस हॉल में अँधेरा कर दिया गया।

इस बार जब पर्दा हटा तो स्टेज पर उस पहले के मन्दिर के सामने एक नदी बहती हुई दिखलाई दी और बहुत दूर पर सर उठा कर खड़े हुए पहाड़ भी दिखलाई देने लगे। पहली बार की अपेक्षा इस बार वहाँ पर कुछ हल्की सी रोशनी थी जिसके कारण धुँधलापन दूर हो गया था। इस बार उस दूर की पहाड़ी से सूर्य की प्रथम किरणें निकलती हुई दिखलाई दीं। अभी लोगों का ध्यान उस उगते हुए सूर्य की ओर जा ही पाया था कि उसी समय चुपचाप नदी-किनारे साड़ी पहने हुए एक युवती गाती हुई दिखलाई दी। उसके दोनों पाँवों में छोटे-छोटे घुँघरू बँधे थे जिनकी आवाज़ उसके आगे बढ़ने के समय स्पष्ट सुनाई देती थी। नदी-किनारे पहुँच कर वह रुक गई और नाचने लगी। यह 'गङ्गापूजा-नाच' था।

मेरे ठीक सर के ऊपर से किसी के खिलखिला कर हँसने की आवाज़ आई। उस हँसने वाले की ओर बिना देखे ही अपने को

जितना कुछ रोका जा सकता था, रोकते हुए मैंने कहा—'मूर्ख !'

लोगों के तालियाँ पीटते रहने के कारण मेरी आवाज़ अपने चारों तरफ़ के घेरे तक भी नहीं पहुँच पाई।

अन्तिम नाच नटराज का रुद्र रूप में तांडव-नृत्य था। वह मुझे उस समय ख़ास तौर से अच्छा लगा, क्योंकि उस नाच में जो क्रोध दिखलाया जा रहा था उसी में मुझे जीवन की वास्तविकता दिखलाई दी और उसकी तुलना में पहले के भावुक नाच बिलकुल झूठे तथा असत्य जान पड़े।

नटराज के नाच का मञ्च पर जिस गुस्से में अन्त हुआ, मैं भी न मालूम क्यों अपने भीतर वैसा ही गुस्सा महसूस करते हुए उठ खड़ा हुआ और दरवाज़े की ओर बढ़ा। दूसरे लोग खड़े तालियाँ पीट रहे थे। हान्स भी ताली पीट रहा था। मैंने उसका हाथ पकड़ कर खींचा और उसके 'ठहरो-ठहरो' की परवा न कर उसे ढकेलता हुआ दरवाज़े के पास ले आया। दरवाज़े से बाहर निकलने वाले सबसे पहले आदमी हमीं दोनों थे।

हान्स उस समय क्या सोच रहा था, मुझे मालूम नहीं ! मैं स्वयं केवल नटराज के ताण्डव-नृत्य की बार-बार याद करता हुआ बाहर सड़क पर आ निकला।

नाच देखने के बाद हम लोग भोजन करने यूनिवर्सिटी-काफ़े में पहुँचे। हमारे पहुँचते ही उस काफ़े के केलनरों ने हमें सलाम किया। उस सलाम का भी मेरे मन में उस समय इसीलिये महत्त्व था कि मेरा सलामालेकुम उन दिनों किसी दिन ही और किसी-किसी व्यक्ति से ही हुआ करता था। अपने चारों ओर बिना देखे ही हम लोग एक किनारे जा बैठे। अभी केलनर ने फेन से भरा हुआ बिअर का गिलास हम

लोगों के सामने लाकर रखा ही था कि जिस रास्ते से हम लोग उस काफ़े में घुसे थे उधर से ही आगे-आगे केटी और उसके पीछे-पीछे लोकनर वहाँ आ धमके। मैंने अपना रुख़ इस तरह रखा मानो उन्हें देखा ही नहीं और हान्स से कहा—

'अब यहाँ से चला जाय!'

वह हँसने लगा। उसी समय हमारी बगल से बड़े ही मधुर स्वर में सुनाई दिया—

'गुतेन आबेन्द!'

मजबूर होकर मुझे केटी की ओर देखना और उससे हाथ मिलाना पड़ा। लोकनर ने भी मुसकराते हुए अपना हाथ मेरी ओर बढ़ाया। उससे उस समय हाथ न मिलाना सामाजिक नियम के ख़िलाफ़ होता; इसलिए उससे भी हाथ मिला कर मैं फिर अपने स्थान पर बैठ गया। वे दोनों भी हम लोगों के पास की ही एक मेज़ पर जा बैठे। उस मेज़ पर मार-पीट करने वाली किसी विद्यार्थी-संस्था का एक सदस्य पहले से ही बैठा था। उसके गाल, होंठ तथा सिर पर तलवारों के निशान थे और किसी से बातें करते समय बड़ी शान से उन निशानों को सामने रख कर बातें करता था, चाहे वैसा करने से वह कुबड़ा सा भले ही मालूम पड़ता हो—इसकी उसे परवा नहीं थी। वह शायद लोकनर का परिचित था; क्योंकि उससे केटी का भी उसने ही परिचय कराया। संयोग से मेरी कुर्सी का रुख़ भी उसी ओर था; इसलिए इच्छा न होने पर भी उन लोगों की ओर मुझे देखना ही पड़ता था। अपनी मेज़ पर बैठे विद्यार्थी से मेरा परिचय कराते हुए लोकनर ने कहा—

'आप भारतवर्ष में ठीक गङ्गा-तट के रहने वाले हैं।'

मुझे पता नहीं, इस रूप में मेरा परिचय देने में लोकनर का क्या

उद्देश्य था। जो भी हो, उस विद्यार्थी की ही तरह मैंने भी अपनी कुर्सी पर बैठे-बैठे ही झुक कर उसे नमस्कार कर लिया। वह विद्यार्थी शायद अब तक इसी ताक में था कि उसे बोलने का कोई मौका मिले। परिचय होने के साथ ही उसने भारतीय संगीत तथा नृत्य की प्रशंसा की झड़ी लगा दी। मुझसे वह इस बात का खुलासा कराना चाहता था कि आखिर मामूली बांस की बांसुरी से इतनी सुन्दर आवाज़ क्योंकर निकलती है! वह बहुत देर तक नृत्य-संगीत-विशारद होने का अपना परिचय देता रहा। मेरे कान उस समय उस विषय पर लोकनर के विचार सुनने के लिये उत्सुक हो रहे थे। केवल उसी समय नहीं, बल्कि पिछले कितने दिनों से ही अज्ञात रूप में मेरे भीतर यह इच्छा रहती चली आ रही थी कि लोकनर को चिढ़ा हुआ देखूँ। उसके मुँह की वह बनावटी हँसी मैं बरदाश्त नहीं कर सकता था। मेरी आंतरिक इच्छा थी कि लोकनर को चिढ़ता हुआ देखूँ और फिर उस समय स्वयं हँसूँ जिससे उसकी चिढ़ का पारा बहुत ऊँचा चढ़ जाय।

उस विद्यार्थी के मुँह से भारतीय नृत्य-संगीत की प्रशंसा सुन कर लोकनर के चेहरे पर जिस प्रकार का भाव आता जा रहा था, उसीसे मैंने अन्दाज़ा लगा लिया था कि आज उससे कोई-न-कोई मूर्खतापूर्ण कार्य अवश्य ही हो जायगा। थोड़ी देर चुप रहने के बाद लोकनर भी भारतीय नृत्य तथा संगीत पर टीका-टिप्पणी करने लगा। उसकी टीका-टिप्पणी उस विषय के अच्छे जानकार के विस्तृत रूप में व्याख्या करने वाले व्याख्यान का रूप धारण करती जाती थी। उसके कथनानुसार भारतीय वाद्य-यन्त्रों की तुलना थाली पीटने, उसके गाने के स्वर की मुर्गे के बाँग देने और नृत्य की कौए के पङ्ख हिलाने से की जा सकती थी! अपनी समझ से इन सुन्दर-से-सुन्दर उपमाओं के

ढूँढ़ लेने पर वह भारतीय वाद्य, गान और नृत्य के आदर्श की विवेचना करने लगा। इस विवेचना में सारी भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता को भी घसीट लाने से वह बाज़ नहीं आया, और अन्त में सिद्ध करने लगा कि इन सब का लक्ष्य केवल एक है और वह है अपनी काम-वासना का वीभत्स-से-वीभत्स रूप सामने रखना और फिर उसकी आराधना में ही अपनी सारी शक्ति लगा देना। इतना कह चुकने पर शिव और पार्वती, कृष्ण और राधा, राम और सीता आदि के प्रेम के प्रमाण सामने रखता हुआ अपने कथन की पुष्टि करने लगा।

मैंने अपने को काबू में रखने का पहले से ही निश्चय कर लिया था, इसलिये सारे क्रोध के आवेग को दबाते हुए तथा तीव्र तीखी दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए मैंने कहा—

'संसार की सुन्दर-से-सुन्दर तथा उच्च-से-उच्च वस्तु को अपनी आँखों द्वारा वीभत्स-से-वीभत्स तथा घृणित-से-घृणित बना कर देखने की आपकी आँखों में अद्भुत क्षमता है।'

मेरी यह बात लोकनर के लिए चुभने लायक सिद्ध नहीं हुई। दूसरे ही क्षण अपनी बात पुष्ट करने के लिए वह बोला—

'सचमुच भारतीय गान सुन कर मुझे बिल्लियों का म्याऊँ-म्याऊँ करना और नाच देख कर कौओं का पङ्ख हिलाना याद आने लगता है।'

अनुकूल उत्तर देने की इच्छा से मैंने पहले की ही तरह शांति रखते हुए कहा—

'और मुझे आपके यहाँ का गाना सुन कर गधों का रेंकना और नाच देख कर मेढ़कों का फुदकना याद आने लगता है।'

यह बात लोकनर के दिल में जा चुभी। उसने बातचीत का सिलसिला बदल मेरी व्यक्तिगत बातों पर कटाक्ष करते हुए कहा—

'किसी चोर के कहने से हमारा गान या नाच खराब नहीं बन सकता।'

'भारतीय गान-नृत्य के विषय में ठीक यही बात आप पर लागू होती है।'

अब आपे से बाहर हो लोकनर कहने लगा—

'तुम्हें इस तरह की बातें करने का अधिकार नहीं है। अपने लिए यही बहुत समझो कि अब तक पुलिस के हवाले नहीं कर दिये गये। तुम्हारा जैसा पासपोर्ट लेकर रहने वालों के लिए जेल में स्थान है, उन्हें इस प्रकार खुल कर रहने या बातें करने का अधिकार नहीं।'

मैंने झुँझला कर कहा—'चुप रह कुत्ते! तुझ जैसे घृणित कुत्तों से, जो किसी भी पवित्र वस्तु को अपवित्र बना दिया करते हैं, बातें करने में मैं स्वयं ही अपना अपमान समझता हूँ।'

मेरी ये बातें सुन कर वह मेरे ऊपर अपने सामने का काफ़े का प्याला फेंकना चाहता था और मैं भी जवाबी हमले के लिए अपने सामने का बिअर का गिलास थामे बैठा था; पर मुझे हान्स ने पकड़ लिया और लोकनर को उसकी मेज़ पर बैठे उसके परिचित विद्यार्थी ने। उस काफ़े में जितने लोग बैठे थे, हम लोगों को घेर कर तमाशाई की तरह आ खड़े हुए। लोकनर उठ कर खड़ा हो गया और चिल्ला कर कहने लगा—

'अभी पुलिस बुलाओ। इसे पुलिस के हवाले करो। इसने··· इसने·······'

अब तो वह तुतलाने सा लगा। उसे उस अवस्था में देख कर मैं सचमुच ही हँसने लगा। पर लोकनर ने आगे जो कहा, उसे सुन कर तो मैं अपनी कुर्सी से उछल पड़ा। उसने कहा—

'इसने हमारे देश की लड़कियों की इज्जत ली है।'

मैं झपट कर उसके पास जा पहुँचा और बोला—

'जब तक तुम मुझे अपमानित करते रहे, मैं बर्दाश्त करता गया, पर मुझे अपमानित करने के साथ-ही-साथ यदि किसी लड़की को अपमानित करना चाहोगे, तो मैं बर्दाश्त नहीं कर सकूँगा। तुम्हारी अपेक्षा मैं लड़कियों को हज़ारगुना अधिक आदर की दृष्टि से देखता हूँ।'

'यहीं पूछ कर देख ले!'

'चुप रह झूठा! नहीं तो....' इतना कह मैंने उसकी ओर फेंकने के लिए अपना बिअर का गिलास हाथ में ले लिया था, पर ठीक इसी समय काफ़े के मालिक ने आकर मुझे पकड़ लिया और दरवाज़े की ओर ले जाते हुए कहा—

'आप लोग कहीं पागल तो नहीं हो गये हैं? यह काफ़े है कि खेल का मैदान?'

'मैं खुद ही अब तुम्हारे काफ़े का मुँह नहीं देखना चाहता।' मैं यह दुहराता-तिहराता जा रहा था और हान्स मुझे खींचे हुए समझाता हुआ बाहर लेता जा रहा था। मेरे पीछे-पीछे मुझे पकड़ने के लिए शोर मचाता लोकनर आ रहा था और उसका परिचित विद्यार्थी उसे पकड़ रखना चाहता था। लोकनर कह रहा था—

'देखो! चोर भाग न जाय! पकड़ रखो! पुलिस बुलाओ! उसने......'

ठीक दरवाज़े पर आकर हम दोनों फिर खड़े हो गए। सब एक-दूसरे का दरवाज़ा रोके हुए थे, कोई भी बाहर नहीं निकल पा रहा था। लोकनर और मैं दोनों ही हल्ला मचा रहे थे और अपनी-अपनी बात ही हम खुद नहीं समझ पा रहे थे। जिस विद्यार्थी ने लोकनर को पकड़ रखा था उसने गम्भीर होकर कहा—

'हम लोग यह मामला खुद तय करेंगे। हम सभी विद्यार्थी ठहरे। बिना मामला तय हुए कोई भी घर नहीं लौटेगा। पर मामला तय करने का यह स्थान नहीं। हम लोग अपनी सामाजिक कोठरी में चलें।'

वह विद्यार्थी हमारा नेतृत्व करने लगा और हम लोग उसके पीछे-पीछे चुपचाप एक-दूसरे को घुड़कते हुए चलने लगे। वह सामाजिक कोठरी वहाँ से दूर नहीं थी। उस कोठरी में उस समय और कोई भी नहीं था; केवल हम पाँच विद्यार्थी वहाँ जा घुसे। एक लम्बी मेज़ के दोनों ओर आमने-सामने लोकनर और मैं बैठाये गए। हान्स मेरे पास, और अपरिचित विद्यार्थी लोकनर के पास मेज़ पर ही बैठ गये। केटी हम चारों के बीच एक कुर्सी पर बैठ गई। अपरिचित विद्यार्थी ने ही कहना शुरू किया—

'अब शांति से मामला तय किया जाय। पहले यह तय किया जाय कि दोष किसका है?'

अभी वह अपरिचित विद्यार्थी अपना वाक्य भी पूरा नहीं कर पाया था कि हाथ का इशारा करके लोकनर ने कहा—

'उस निग्रो (हबशी) का।'

हान्स ने उसका जवाब दिया—

'आपकी बात सरासर झूठ है। ये निग्रो नहीं।'

'निग्रो हो या और किसी काली जाति का, इसे हमारी लड़कियों को अपमानित करने का अधिकार नहीं।'

'कौन कहता है कि उसने अपमानित किया है?' हान्स ने पूछा।

लोकनर केटी की ओर देखने लगा। वह सर नीचा किये अपने पांवों की ओर देख रही थी। उससे लोकनर ने पूछा—

'क्यों? मेरी बात सच नहीं?'

केटी ने कोई उत्तर नहीं दिया।

'केटी ! तुमसे पूछता हूँ, क्या मेरी बात ठीक नहीं ?' लोकनर ने अपना प्रश्न दुहराते हुए पूछा।

'नहीं।' केटी ने बिना सर ऊपर उठाये ही उत्तर दिया।

लोकनर ने जो उत्तर सुना उस पर उसे विश्वास नहीं हुआ। उसने पहले की भी अपेक्षा अधिक कर्कश स्वर में पूछा—

'उसने तुम्हें कभी अपमानित नहीं किया ?'

'नहीं ! उनका व्यवहार मेरे साथ सदा ही शुद्ध रहा है, उनके व्यवहार में कभी भी अपमान करने का भाव छू तक नहीं गया था।'

लोकनर अपनी ही निगाह में अपने को अपमानित हुआ सा देखने लगा। वह इसे सहन नहीं कर सका और उलटे उस पर पर्दा डालने के लिए केटी से पूछा—

'कहीं तुम पर किसी ने जादू तो नहीं कर दिया है ?'

'हाँ ! हिन्दुस्तानी जादूगर भी हुआ करते हैं।' हान्स ने हँसते हुए तथा तीव्र दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए कहा।

केटी ने पहले की ही तरह शांत रूप में कहा—

'मुझ पर यदि कोई जादू चलाना भी चाहे तो नहीं चलने का। जो सच बात है वही मैं कह रही हूँ।'

लोकनर के चेहरे से यह स्पष्ट झलकने लगा था कि उसका मेरे ऊपर का आक्षेप झूठा था, पर फिर भी जोर डाल कर अपनी पुष्टि केटी से कराना चाहता था और इसीलिए उसे भयभीत करने वाले शब्दों में पूछा—

'फिर मैं झूठा हूँ ?'

केटी चुप रही। इससे लोकनर की व्याकुलता और भी अधिक बढ़ने लगी। उसने अब लम्बे लम्बे वाक्यों की शरण ली और इस प्रकार

अपने भीतर के सत्य पर पर्दा डालने का प्रयत्न करना चाहा। उसने कहा—

'जो आदमी अपनी घर-मालकिन का सेब चुराने से भी नहीं हिचकता, जिसके नीच आचरण की गवाही उसका सारा मुहल्ला है, वही तुम्हारी दृष्टि में सच्चा और मैं झूठा हूँ, क्यों ?'

'मैं अफ़वाहों पर विश्वास नहीं करती।'

'और मेरे कथन पर ?'

'यदि तुम्हारे कथन का आधार वे अफ़वाहें ही हैं तो उन पर भी नहीं।'

'तो इसका मतलब यह है कि इस काले आदमी की तुलना में तुम मुझ-जैसे एक जरमन को, जो नात्सी दल का भी सदस्य है, झूठा और नीच समझती हो ! फिर हमारा-तुम्हारा प्रेम······'

पर बीच में ही लोकनर को रुक जाना पड़ा। केटी का चेहरा लाल हो आया था। उसने लोकनर की ओर इस प्रकार देखा मानो जितना कुछ भी क्रोध-मिश्रित धिक्कार का भाव हो सकता है उसे उसने अपनी आँखों में भर लिया हो और उसे अपने सामने बैठे व्यक्ति को जला डालने के लिए उस पर छोड़ देना चाहती हो। उसने कहा—

'क्यों, वाक्य पूरा क्यों नहीं कर डालते ? तुम इस प्रेम का डर दिखला कर मुझसे झूठी बात मनवाना चाहते हो ! तुम मुझे इतना पतित और हीन समझते हो, यह मुझे इतने स्पष्ट रूप में नहीं मालूम था। मैं भी अब तुम्हें बतला देना चाहती हूँ कि मैं किसी से अपमान किये जाने की पात्र नहीं। मैं ऐसी नीच नहीं। नीच तुम स्वयं हो। पहले से ही मुझे डर था कि तुम्हारे साथ रहने से मेरा जीवन शायद सुखी नहीं बन सकेगा। अच्छा हुआ कि शादी से पहले ही तुम्हारा सच्चा स्वरूप मुझे दिखाई पड़ गया। तुम शायद अभी

अपना प्रेम का नाता तोड़ने में हिचक रहे हो; लो, मैं स्वयं ही उसे तोड़ डालती हूँ। यह है तुम्हारी अँगूठी।'

इतना कह वह अपने हाथ की अँगूठी निकालने लगी। ऐसा मालूम पड़ता था मानो वह उस अँगूठी को ठीक उसके सिर पर पटक कर उसे तोड़ डालना चाहती है। अँगूठी निकालने की जल्दबाज़ी में उसने अपनी अँगुली का चमड़ा भी छील डाला। पर उस आवेश में उसे इसका खयाल भी नहीं था। अँगूठी निकाल कर उसने लोकनर के सामने की मेज़ पर पटक दी और उठ कर वहाँ से जाने लगी। उसे रोकते हुए अपरिचित विद्यार्थी ने कहा—

'थोड़ी देर रुकिये। यह मामला इस प्रकार तय नहीं हो सकता। दोष आपका नहीं, बल्कि इन दोनों का है। इसमें सन्देह नहीं कि ये दोनों ही बराबर दोषी हैं। तब फिर हमारी मंडली में जिस प्रकार से ऐसे मामले तय किये जाते हैं वैसे ही यह मामला भी क्यों नहीं तय किया जाय? इन दोनों के हाथों में दो तलवारें दे दी जायँ, एक का सहायक मैं और दूसरे का हान्स बन जाय और मामला डूएल के द्वारा निपटा लिया जाय।'

फिर थोड़ी देर तक 'डूएल' की बात चलती रही। अपरिचित विद्यार्थी को उसमें मज़ा आ रहा था। लोकनर भी उसके लिये अपने को तैयार बतलाने लगा। मैं भी अपने को कायर अथवा दब्बू नहीं दिखलाना चाहता था, इसीलिये मैं भी उसके लिये तैयार हो गया। केवल केटी और हान्स का मत उसके विपक्ष में था। वे इस बात पर अड़ गये थे कि 'डूएल' किसी भी हालत में न हो।

मैं भी डूएल-जैसी बातों को न केवल मूर्खतापूर्ण बल्कि अत्यन्त ही घृणास्पद मानता था। डूएल-जैसी चीज़ों के मूल में ईर्ष्या रहती है, और वह भी किसी स्त्री के सम्बन्ध की। व्यक्तिगत जीवन में इस

प्रकार की ईर्ष्या से बढ़ कर शायद ही किसी चीज़ को मैं घृणा करता हूँगा। अपने जीवन का मूल्य इतना कम नहीं समझता था कि उसे इस प्रकार की ईर्ष्या की बलि चढ़ा दिया जाय, पर दूसरे कहीं मेरा वास्तविक मतलब न समझ मुझे कायर मानने लगें, इस विचार से मैं डूएल के लिये तैयार था। मुझे इस सम्बन्ध में वाद-विवाद करने में भी लज्जा आती थी, इसलिए केवल अपनी स्वीकृति देकर मैं चुप हो रहा।

दोनों पक्षों में अधिक देर तक वाद-विवाद चलते रहने के बाद यह बात सूझी कि डूएल का व्यावहारिक कार्य पूरा करना भी कोई आसान बात नहीं। जरमन विद्यार्थियों की जिन संस्थाओं के निरीक्षण में डूएल हुआ करता था उनका यह नियम था कि डूएल में भाग लेने वाले दोनों ही दल उस संस्था के सदस्य हों अथवा डूएल के वाद से उसके सदस्य होना स्वीकार करें। लोकनर तो उस संस्था का पहले से ही सदस्य था, पर मैंने न तो उन संस्थाओं की कभी पूछ-ताछ की थी और न करना ही चाहता था। अपरिचित विद्यार्थी डूएल तथा उसके शास्त्र का पूरा पंडित था; क्योंकि वह स्वयं भी कई बार उसमें भाग ले चुका था; पर हमारे डूएल को व्यावहारिक रूप देने का उसे भी कोई रास्ता नहीं दिखलाई दे रहा था। उसकी ओर से कोई उपयोगी सुझाव न पेश होते देख लोकनर ने मेज़ पर अपना हाथ पटकते हुए कहा—

'इसमें और अधिक विचार करने की क्या आवश्यकता है? इन्हें पुलिस के हवाले कर दिया जाय और वही यह निश्चय करे कि हम दोनों में कौन झूठा और कौन सच्चा है। मैं अभी भी दावे के साथ कह सकता हूँ कि इनका पासपोर्ट जाली है। ऐसे झूठे, चोर, दगाबाज़ लोगों का स्थान जेल में ही होना चाहिये; यह हम लोगों की मूर्खता

थी कि अब तक इन्हें स्वतन्त्र घूमने दिया है। इस प्रकार का कार्य हमारे लिये देशद्रोह है। मैं स्वयं अभी जाकर पुलिस को बुलाये लाता हूँ; वही सारा मामला साफ़ कर देगी। अभी, मैं अभी जाता हूँ।'

मेरे पासपोर्ट का असली मामला यह था कि उसकी अवधि जरमनी में रहते वक्त ही समाप्त हो गई थी। ब्रिटिश कौंसल बिना कोई वजह दिखलाये ही उसकी अवधि और आगे बढ़ाने के लिए तैयार नहीं था। जरमनी के नात्सी लोगों की दृष्टि में भी मैं खटक रहा था। उन्हें यदि मेरे पासपोर्ट की असुविधा की पूरी जानकारी होती तो वे बड़ी आसानी से एक मामूली दरख़ास्त जरमन पुलिस के पास भेज कर या तो मुझे गिरफ्तार करा सकते थे अथवा जरमनी के बाहर भिजवा दे सकते थे। पर यह बात मेरे इने-गिने दोस्तों को ही मालूम थी। उनमें से ही किसी से शायद लोकनर को भी इसका पता लग गया था।

लोकनर समझ रहा था कि शायद उसको पुलिस बुला लाने के लिये जाने देने में वहाँ पर बैठे लोग बाधा डालेंगे, उसका हाथ पकड़ कर उसे बैठायेंगे, उसकी आरज़ू-मिन्नत करेंगे; पर ऐसा किसीने भी नहीं किया। जाते-जाते भी उसने दरवाज़े पर से कहा—

'अब देख, मैं तुझसे कैसा बदला लेता हूँ और तुझे कैसा मज़ा चखाता हूँ। तुझे जेल में सड़ते देख कर ही मुझे सन्तोष होगा। अभी, अभी, यहीं बैठे रहना! ख़ैर, तुझ पर पहरा देने वाले मौजूद हैं, तू भाग नहीं सकता! अभी पुलिस सारा मामला साफ़ किये देती है!'

इतना कहता हुआ वह चला गया। उसके निकल जाने के बाद अपरिचित विद्यार्थी ने कहा—

'यह तमाशा देखने की मेरी इच्छा नहीं। डुएल में वीरता है,

अभिमान है ! पुलिस तुम्हारा क्या कर लेगी ? मैं जानता हूं, तुम विद्यार्थी हो और हमारे विद्यालय में पढ़ते हो। मुझे पुलिस से कुछ लेना-देना नहीं। इस तरह यह मामला कभी भी तय नहीं होने का ! कल हम लोगों की सभा होने वाली है; वहीं पर यह मामला पेश किया जायगा। ख़ैर, आज अब और कोई मज़ा नहीं, मैं भी जाता हूँ !'

इतना कह कर वह भी चला गया।

केटी अब तक बिलकुल घबड़ाई बैठी थी। उसके मुँह से बोली नहीं निकल रही थी। अपरिचित विद्यार्थी के उस कमरे से निकलते ही उसने हान्स से कहा—

'तुम जल्दी जाकर एक किराये की मोटर ले आओ। पर यहाँ नहीं, फ्राँकफुर्तर-होफ़-होटल के सामने लाकर उसे खड़ा रखना। जल्दी—'

मुझे पता नहीं, केटी हान्स से इतनी अधिक परिचित थी अथवा नहीं ; पर इस समय उसने उसे तू कह कर और हुक्म देते हुए यह बात कही। हान्स भी बिना एक शब्द कहे वहाँ से चला गया।

अब मैं अकेला ही वहाँ केटी के साथ बैठा रह गया। जिस स्वर में अभी उसने हान्स को मोटर लाने का हुक्म दिया था उसी स्वर में मुझसे कहा—

'उठो !'

मैं उठ खड़ा हुआ। उसने मुझे बाहर चलने का इशारा किया; पर मैं इस प्रकार अपने स्थान पर खड़ा रहा मानो उसकी दूसरी बात मेरी समझ में ही नहीं आ रही है। उसने पूछा—

'आते क्यों नहीं ?'

'कहाँ ?'

'क्या इस समय भी तुम्हें समझाने की आवश्यकता है ? अभी पुलिस आई जाती है।'

'तो आने दो न !'

'पकड़ जाओगे !'

'तो क्या हुआ ?'

'उससे फ़ायदा ?'

मैं वास्तव में इस समय तक बिलकुल शांत था। पुलिस थोड़ी ही देर में वहाँ पर पहुँच जायगी, यह मुझे मालूम था; पर उससे भय नहीं हो रहा था। केटी के मुंह से 'उससे फ़ायदा ?' सुन कर आँखों के सामने बहुत सी बातें एक साथ ही नाच गईं। मैं वास्तव में निर्दोष था; पर मेरे ऊपर विश्वास ही कौन करता ? मैं व्यर्थ में सताया जाता। एक विचार यह भी मन में आ रहा था कि इस प्रकार भाग जाने पर मेरे परिचित क्या कहेंगे ? मेरे विषय में उनकी अवश्य ही ख़राब धारणा हो जायगी। वे अवश्य ही समझने लगेंगे कि लोकनर का कथन सत्य था और मैं झूठा था, इसीलिए भाग निकला। इसके बाद भारतीयों को और भी कितने अविश्वास और घृणा की दृष्टि से ये लोग देखने लगेंगे ? फिर क्या किया जाय ?

मेरे मन में जो कुछ भी चल रहा था, मेरे चेहरे से ही केटी जान गई। उसने मेरा हाथ पकड़ कर खींचते हुए कहा—

'तुम्हें भागना ही होगा।'

'किसलिये ?' केटी ने मुझे फिर से पहले के ही प्रश्न पर लौटते तथा पाँव आगे न बढ़ाते देख अपने चेहरे का रुख़ पलटा और मेरे दोनों हाथ अपने हाथ में ले सीधे मेरी आँखों की ओर देखते हुए कहा—

'मेरे लिए।'

उसे और कुछ कहने की आवश्यकता नहीं थी। उसने मुझे अपनी ओर खींचा। मैं उसके बिलकुल निकट आ गया था, इतने निकट कि उसका साँस लेना स्वयं अनुभव कर रहा था। बाहर निकल

कर हम लोगों ने अपने पीछे का दरवाज़ा बन्द कर दिया। स्वयं तेज़ी से आगे कदम बढ़ाते हुए केटी ने बिलकुल धीरे से कहा—

'जल्दी ! जल्दी !'

मुश्किल से हम लोग सड़क की दूसरी ओर पहुँच पाये होंगे कि केटी एक-ब-एक खड़ी हो गई और पीछे की ओर दिखलाया। जिस सड़क को हम लोगों ने अभी पार किया था वह काफ़ी चौड़ी थी। उसके बीच में ट्राम के आने-जाने की लाइन बिछी थी और उसके दोनों ओर मोटरों की सड़क थी। इन सड़कों के किनारे फुटपाथ था। हम दोनों जिस स्थान पर खड़े थे वहाँ से वह मकान दिखलाई देता था जिससे निकल कर हम अभी आये थे। इस समय उसके सामने एक मोटर आ खड़ी हुई थी; उसके भीतर से लोकनर तथा उसके साथ सादी पोशाक में और भी दो आदमी उतर रहे थे। पानी के बुलबुलों की तरह और भी कई सिपाही वहाँ पहुँच कर उस मकान के पास पहरा देने लगे थे।

हम लोग वहाँ से आगे बढ़े। केटी मेरी बगल-बगल चल रही थी। फ्रांकफुर्तर-होफ़-होटल के पास आकर हम लोग रुक गये। उसने मुझे उस होटल के सामने ट्राम खड़ी होने के स्थान पर खड़ा कर दिया और अकेली होटल में गई। कुछ ही मिनटों में वह फिर लौट कर आई और मेरा हाथ अपने हाथ में ले फुटपाथ पर टहलते हुए धीमे शब्दों में कहने लगी—

'यह बड़ी मुश्किल हुई। यहाँ से स्विटज़रलैंड के लिए आज रात को और कोई गाड़ी नहीं जाती। अभी बीस मिनट में एक पैसेंजर गाड़ी जाने वाली है, पर वह कल दोपहर को जरमनी की सीमा पार

करेगी। और तुम्हें हर हालत में सबेरा होने तक जरमनी के बाहर पहुँच जाना चाहिये।'

'ऐसा क्यों? मैं तो हान्स के साथ बर्लिन जाने वाला हूँ। अभी क्या बजा है? सवा बारह! साढ़े बारह पर गाड़ी छूटती है।'

'नहीं नहीं! तुम बर्लिन नहीं जाओगे। यहाँ से सबसे निकट स्विटज़रलैंड है, तुम वहीं जाओगे। तुम जानते नहीं, जिन नीच लोगों से तुम्हारा पाला पड़ा है वे तुम्हारा सत्यानाश करने में कुछ भी नहीं उठा रखेंगे! सिर्फ़ इतना मालूम हो जाने पर कि तुम्हारे पास पुराना पासपोर्ट है, मालूम नहीं कितने प्रकार के मुकदमों में, जिनका आज तक तुमने नाम नहीं सुना होगा, पुलिस तुम्हें फँसा देने की चेष्टा करेगी। अन्तर्राष्ट्रीय क्रान्तिकारियों से लेकर जुआरी, डकैत, चोर, स्त्रियों का व्यवसाय करने वाली आदि-आदि, पता नहीं, पातालपुरी की कितनी संस्थाओं के तुम सदस्य सिद्ध किये जाओगे। तुम अपनी सफ़ाई देना चाहोगे; पर कोई सुनेगा नहीं। इस झमेले में पड़ने से अच्छा है, तुम स्विटज़रलैंड में रहो। पर रातोंरात तुम वहाँ पहुँचोगे कैसे, यही मुझे नहीं सूझ रहा है!'

इसी समय एक मोटर होटल के सामने आकर लग गई थी। हान्स के साथ हम लोग उसमें जा बैठे और पाँच मिनट के भीतर ही स्टेशन पहुँचा दिये गये। हान्स ने अकेले अपना बर्लिन तक का टिकट लिया; मेरे विषय में केटी ने उसे निश्चिन्त रहने के लिए कहा और बतलाया कि मैं अभी उसके एक रिश्तेदार के घर जा रहा हूँ।

हान्स की गाड़ी छूटने में पाँच मिनट की देर थी, जब हम लोग उसके प्लैटफ़ार्म पर पहुँचे। केटी फिर रेल का टाइमटेबिल देखने चली गई थी। कुछ महीने पहले डेन्मार्क की सरहद पर बिदा लेते समय हान्स के साथ जितनी घनिष्ठता थी, आज वह उससे कहीं अधिक बढ़ी हुई थी।

वह सगे भाई से भी बढ़ कर मेरा अपना बन गया था। मैंने उससे कहा भी—

'माँ से कह देना कि मैं अपनी शक्ति-भर सदा ही इस बात का प्रयत्न करता रहूँगा कि मुझसे ऐसा कोई भी कार्य न होने पाये जो उनके लिए मेरे प्रति असन्तोष का कारण बन सके अथवा जिससे वे मेरे प्रति निराश हो सकें। मैंने कोई अपराध नहीं किया है, फिर भी मुझे अपराधियों की तरह भागना पड़ रहा है। मैं वास्तव में निर्दोष हूँ और इसीलिए कम-से-कम माँ मुझे अपराधी न समझें। उनका मेरे ऊपर अपने पुत्र-जैसा जो स्नेह है, मैं सदा ही उस स्नेह को तथा उनका मेरे प्रति जो विश्वास है उसे पवित्र तथा दृढ़ बनाये रखूँगा।'

तुरन्त ही केटी फिर वहाँ आ पहुँची और धीरे—पर तीव्र—शब्दों में बोली—

'हमें जल्दी करनी चाहिये, नहीं तो सारा मामला बिगड़ जायगा।'

हान्स की गाड़ी छूटने में अभी दो मिनट की देर ही थी कि हम लोग वहाँ से दूसरे प्लैटफार्म की ओर चले। हान्स हाथ हिला कर बिदा देता रहा। केटी मुझे जिस प्लैटफ़ार्म पर ले आई वहाँ भी एक गाड़ी लगी थी। उसमें चढ़ने वाले मुसाफ़िर बहुत ही थोड़े थे। गाड़ी का सबसे अगला डब्बा तो बिलकुल ही ख़ाली था। हम दोनों उसी में जा बैठे। केटी ने बाहर टँगी हुई घड़ी की ओर झाँक कर देखा और कहा—

'अभी भी दस मिनट बाकी हैं। मुझे भय नहीं; पर इतने समय में मालूम नहीं क्या-से-क्या हो जा सकता है। अपना बस नहीं! इतनी देर रुके ही रहना पड़ेगा!'

सचमुच ऐसा लग रहा था कि आज समय बहुत धीरे-धीरे बीत रहा है। लोकनर जिस समय पुलिस को बुलाने गया था उस समय से

अब तक आधा घण्टा भी न बीत पाया था, पर जान पड़ता था कि ज़माना गुज़र गया है। गाड़ी जितनी देर नहीं छूट रही थी, प्रत्येक मिनट ही पहाड़ सा मालूम हो रहा था। प्लैटफ़ार्म पर जो कोई भी गुज़रता हुआ दिखलाई देता, मालूम पड़ता, वे सभी सादी पोशाक में पुलिस के आदमी हैं और मुझे पकड़ने के लिए ही वहाँ आ पहुँचे हैं। केटी के मन में भी वैसी ही बातें आ रही थीं। वह अपने मन-ही-मन हिसाब लगा कर कहने लगी—

'नहीं, अगर पुलिस चाहे भी तो इतनी जल्दी यहाँ नहीं पहुँच सकती। उस रेस्तुराँ में, जहाँ तुम बैठे थे, और तुम्हारे घर पर ढूँढ़ते-ढूँढ़ते ही कम-से-कम आधा घण्टा और लगेगा। फिर भी कल सबेरे सीमा पार करते समय सावधानी से काम लेना। मुंह से कोई ऐसी बात न निकालना जिससे किसी को सन्देह करने का मौक़ा मिले। अगर तुम्हारा चमड़ा हम लोगों के समान सफ़ेद होता तब कोई परवा नहीं थी; पर रंग दूसरा होने के कारण तुम अपने को आसानी से यहाँ पर छिपा नहीं सकते।'

फिर, दूसरों से बातें करते समय मुझे किस प्रकार की सावधानी रखनी चाहिये, यह भी वह मुझे देर तक समझाती रही। उसने कहा कि पूछने पर तुम अपने को उस भारतीय नर्तक-मण्डली का सदस्य बताना जो उस दिन आई थी। स्विटज़रलैंड जाने का उद्देश्य वहाँ की नाट्यशालाओं में तमाशा दिखलाने के सम्बन्ध में बातचीत करना बतलाना चाहिये। फिर उसी प्रकार की और भी कई बातें कह चुकने पर एक-ब-एक चौंकते हुए बोली—

'लो, सबसे ज़रूरी चीज़ छूटी ही जा रही थी। यह लो, तुम्हारा लूचेर्न तक का टिकट। वहाँ तक का टिकट इसी विचार से ले लिया है कि जरमनी की सीमा से तुम जितनी ही दूर रहो उतना ही अच्छा

है। अभी दो घण्टे के बाद तुम्हारी यह गाड़ी बाडेन-बाडेन पहुँचेगी। वहाँ तुरन्त ही तुम्हें म्युनिच से बाजेल जाने वाली डाकगाड़ी मिलेगी। तुम उसी गाड़ी में सवार हो लेना ; कल सबेरे सूर्य निकलने के पहले ही तुम जरमनी की सीमा पार कर चुकोगे। फिर वहाँ से लूचेर्न की गाड़ी लेना। जैसे ही लूचेर्न पहुँचना, मेरे नाम एक कार्ड जरूर लिख देना, क्योंकि तुम कुशलपूर्वक सीमा पार कर गये या नहीं, यह जानने के लिये मैं उत्सुक रहूँगी।'

इतना कहते हुए उसने मेरे हाथ में टिकट दे दिया। मैं उसे उस टिकट का दाम देने लगा। उसने कहा—

'रहने दो यह बेवकूफ़ी !'

'ऐसा क्यों ?'

'तो इसका मतलब यह है कि तुम भी मुझे नीची दृष्टि से देखते हो।'

मैं उसे मना भी नहीं पाया था कि मेरी गाड़ी छूट गई। मैं समझता था, वह उतर पड़ेगी; पर उसने कहा—

'मैं तुम्हें पहुँचाने तीन स्टेशन आगे तक चलूँगी, वहाँ से फिर इधर को एक डाकगाड़ी आती है उससे लौट आऊँगी। मैं तुम्हें बाडेन-बाडेन तक पहुँचाना चाहती थी; पर यह अच्छा नहीं होगा। लोग यहाँ मेरी भी खोज करेंगे और तुम्हारे लिये ज्यादा अच्छा होगा अगर तुम अकेले ही आगे जाओ। मुझसे अगर तुम्हारे विषय में कोई पूछने आयगा तो मैं उसे भटका सकूँगी, यह तुम्हारे लिये अधिक अच्छा होगा। मेरा यहाँ रहना ही तुम्हारे लिये अधिक हितकर होगा।'

गाड़ी के स्टेशन के हाते से बाहर निकल जाने पर हम लोगों की छाती पर से पत्थर सा हटता दिखाई देने लगा। काफ़ी सर्दी होने पर भी हम लोगों ने दोनों ओर की खिड़कियाँ खोल दी थीं और स्वच्छ हवा

में साँस लेने लगे थे। बहुत दिनों से हम दोनों के बीच जो बड़ी दीवार सी खड़ी हुई दीख रही थी वह इस समय आप-से-आप लुप्त हो गई थी। हम दोनों खुल कर बातें कर रहे थे और अपने भीतर जान-बूझ कर जो छाती पर पत्थर रख छोड़ा था उसे हलका करने लगे। सबसे अच्छी बात तो यह थी कि अविश्वास एक-दूसरे के प्रति बिलकुल ही नहीं था। हमारे मुंह से जो शब्द निकलते उन पर बिना किसी प्रकार की टीका-टिप्पणी किये दूसरा उसे हृदय से निकला हुआ मान लेता। बहुत दिनों से जो विचार मुझे सता रहा था उसके भी इस समय बाहर निकलने का मौका था। मैंने उससे पूछा—

'क्या जरमन जनता ही अब भारतवासियों से घृणा करने लगी है?'

'क्या इसलिए कि तुम लोग हमें चाहते हो?'

'नहीं! इसलिये कि हम भारतवासी हैं।'

'तुम्हारी बातों में छोटे बच्चों से भी अधिक भोलापन है।'

इतना कह कर उसने मेरा सर अपनी गोद में ले लिया और उस पर हाथ फेरने लगी।

तीसरे स्टेशन पर गाड़ी इतनी जल्दी आ जायगी, इस बात की हमने कल्पना तक नहीं की थी। उसकी गाड़ी ठीक मेरे सामने लगी थी। वह मुझसे बिदा ले सामने के डब्बे में सवार हो गई।

हम एक-टक एक-दूसरे को देख रहे थे। बातें करने की अब आवश्यकता नहीं थी। बिना कुछ बोले ही हम एक-दूसरे को भली भाँति समझ रहे थे। हम दोनों ही एक-दूसरे से पूछ रहे थे—

'और हम लोगों की मुलाकात अब कब होगी?'

गार्ड का बाडेन-बाडेन सुन कर मैं गाड़ी से उतर पड़ा। बाजेल की ओर जाने वाली डाकगाड़ी के लिए मुझे कुछ ही मिनट रुकना

पड़ा। डाकगाड़ी के तीसरे दर्जे का जो दरवाज़ा खोला उसमें केवल दो बेंच थीं। एक पर एक स्त्री सोई थी और दूसरी पर एक आदमी उठका हुआ ऊंघ रहा था। डब्बे में मेरे पहुँचने पर उसने पांव नीचे कर लिये और मुझे बैठने का स्थान दिया। मैं भी ऊंघने लगा।

किसी आदमी को कर्कश आवाज़ में 'पासपोर्ट' 'पासपोर्ट' कह कर चिल्लाते सुन कर मेरी नींद टूट गई। मुझे इसमें कोई भी सन्देह नहीं रह गया कि वह चिल्लाने वाला पुलिस का आदमी है और हाइडिलबेर्ग की ही पुलिस ने उसे तार कर दिया है। मैंने मन-ही-मन कहा—

'अब मैं गिरफ्तार कर लिया गया।'

मशीन की तरह बिना कुछ कहे-सुने तुरन्त मैंने अपना अवधि समाप्त हुआ पासपोर्ट उसके हाथ में दे दिया। उसने उसे बिना देखे उसके अन्तिम पृष्ठ पर एक छाप डाल मुझे लौटा दिया।

गाड़ी आगे बढ़ती जा रही थी। मैंने पास बैठे मुसाफ़िर से पूछा—

'स्विटज़रलैंड की सीमा और कितनी दूर है?'

उसने हँसते हुए उत्तर दिया—

'और कौन सी सीमा? अब तो हम लोग स्विटज़रलैंड में हैं। अभी-अभी ही तो स्विटज़रलैंड का पास-कन्ट्रोलर पास देख कर गया है।'

'और जरमनी वाले?'

'उनकी सरहद बहुत पहले ही ख़तम हो चुकी है।'

मैंने खिड़की का शीशा साफ़ कर बाहर देखा। सबेरा हो चला था। उस डब्बे के बरामदे में आकर खिड़की खोल दी और बाहर झाँक कर देखने लगा। सर्दी से दाँत कटकटाने लगे, पर उसकी परवा उस समय नहीं थी। अपने को ख़तरे से निकल आया हुआ स्वतन्त्र देख रहा था—खुली हवा में साँस ले रहा था।

इसी समय हमारी गाड़ी के इंजिन ने नये प्रकार की सीटी बजा कर नये स्टेशन में अपने घुसने की सूचना दी। हम लोग उतर पड़े।

लूचेर्न की गाड़ी में अभी दो घण्टे की देर थी। स्टेशन से बाहर आ, बिना कुछ सोचे समझे ही, जिस दिशा से मेरी गाड़ी आई थी उसी ओर लौट पड़ा। पीछे जो कुछ छोड़ आया था, एक-एक करके सबकी याद आने लगी।

थोड़ी दूर आगे जाने पर रास्ता राइन नदी के किनारे से होकर जाता था। नदी जिस ओर बहती थी उधर दृष्टि दौड़ा कर मन-ही-मन मैंने कहा—

'उधर ही जरमनी है; यहाँ से थोड़ी दूर पर ही उसकी सीमा शुरू हो जाती है।'

नदी-किनारे के एक पत्थर पर बैठ गया और जरमनी की ओर देखने लगा। डेढ़-दो साल पहले वहाँ एक अपरिचित की तरह प्रवेश किया था, पर अब, मनुष्य-जीवन के सबसे सुन्दर समय युवावस्था का एक अंश जिस रूप में वहाँ बिताया था उसकी स्मृति मेरे लिए सदा के लिए ही अमिट बन गई थी। प्रोफ़ेसर राइनहार्ट, हान्स और केटी का चेहरा एक क्षण के भीतर ही और एक साथ ही आँखों के सामने नाच गया। जरमनी छोड़ने का मतलब मेरे लिए सर्वप्रथम इन्हीं व्यक्तियों को छोड़ना था।

जरमनी की सभ्यता तथा संस्कृति की सराहना में हजारों पन्नों वाली मोटी पुस्तकों के पढ़ने पर भी मेरे भीतर उस देश के प्रति वैसी धारणा नहीं बन सकती थी जैसी इस समय उन इने-गिने कुछ व्यक्तियों के चेहरे याद आने से बन रही थी। उनके चेहरों में मैं उनकी संस्कृति तथा परंपरा का जीता-जागता सुन्दर-से-सुन्दर स्वरूप देख रहा था।

एक क्षण के लिये प्रोफ़ेसर कुंच, लोकनर अथवा मेरी मकानों की मालकिन फ्राउ मूलर की याद आने पर मुझे सन्देह होने लगता कि क्या वे भी जरमन हो सकते हैं ? जरमनी में नात्सी-सरकार का प्रभाव जमने पर उसके द्वारा मुझे भारतवासी होने के कारण जितना कुछ झेलना पड़ा था उसकी याद आने पर यह बात समझ में नहीं आ रही थी कि जरमनी-जैसे सभ्य देश में वैसी बातें आख़िर सम्भव ही क्योंकर हो पाईं।

बहुत देर तक उस भूमि की ओर देखता और वहाँ के अपने परिचित तथा अपरिचित सब मित्रों से मन-ही-मन बिदा लेता रहा। जिन्हें वहाँ केवल एक बार देखा था, जिनका नाम-पता तक मुझे मालूम नहीं था, जीवन में संयोग के सिवा और किसी भी हालत में जिनसे फिर भेंट होने की सम्भावना नहीं थी, उन लोगों से भी उसी तरह बहुत देर तक बिदा लेता रहा।

एकाएक आँखों के सामने एक ऐसा दृश्य आया जो बहुत-कुछ उस दृश्य के समान था जिसे एक यूगेंड-हेरबेरगर (युवा-रात्रि-निवास) में देखा था। जिन लोगों को वहाँ पर उपस्थित नहीं देखा था वे भी इस समय उपस्थित दिखलाई देते थे। बीच में एक युवक बैठा गितार (सितार जैसा वाद्य-यन्त्र) बजा रहा था और उसके चारों तरफ़ बहुत से लोग उसे घेरे बैठे थे। उन्हीं लोगों में हान्स, हाना, प्रोफ़ेसर राइनहार्ट, केटी और मैं भी था। हमारी आँखों के सामने राइन-किनारे की पहाड़ी पर रसीले अंगूरों की लताओं से सजी 'लोरेलाई' की पहाड़ी थी। हम लोग झूमते-झूमते उधर ही देख रहे थे और गाते जा रहे थे—

"सुन्दर है जवानी—मस्ती की घड़ियों में,
सुन्दर है जवानी—वह फिर नहीं आती,

वह फिर नहीं आती,
हाँ, सचमुच, वह फिर नहीं आती,
वह फिर नहीं आती,
सुन्दर है जवानी—वह फिर नहीं आती।"

पंचम खण्ड

बीमारी

पीछे जो कुछ भी छोड़ आया था उसका मुझे पता था, पर आगे क्या होगा इसका कुछ भी अन्दाज़ नहीं लगाया जा सकता था। जिन्हें पीछे छोड़ आया था उनसे और एक बार मन-ही-मन विदा लेकर जिस समय स्टेशन लौटा उस समय तक जिस गाड़ी से मुझे लूचेर्न जाना था वह निकल चुकी थी। वहाँ पहुँचने की मुझे कोई वैसी जल्दी भी नहीं थी; इसलिये बिना अधिक अफ़सोस किये फिर स्टेशन के बाहर निकल आया। दूसरी गाड़ी दोपहर को छूटती थी; उस समय तक स्टेशन के आस-पास ही घूमते रहने का निश्चय किया।

स्टेशन के पास ही एक अजायबघर था। अब तक अपनी आँखों के सामने जो कुछ देखा करता था वह मुझे जीवित अजायबघर ही जैसा दिखलाई देता था। उसीमें उलझे रहने के कारण कोई भी 'मुर्दा-अजायबघर' देखने का मुझे कम ही मौका मिला था। आज दोपहर तक का समय किसी प्रकार बिताने का प्रश्न जब मेरे सामने था ही तो उसकी भी एक झाँकी कर लेने के लिये भीतर घुसा। थकावट तथा न सो सकने के कारण जो मूर्त्तियाँ अथवा चित्र देखता था उन पर केवल सरसरी दृष्टि डालते हुए आगे बढ़ता जाता था।

फिर भी एक बड़े से हॉल में, जहाँ पर बाजेल के प्रसिद्ध चित्रकार बेकलिन तथा वैसे ही दूसरे प्रसिद्ध चित्रकारों के चित्र टँगे थे, एक चित्र के आगे रुक गया। उस चित्र में तथा राइन-किनारे की हाना में कोई समानता नहीं थी, शायद दोनों दो विपरीत स्वभाव वाली लड़कियों के चित्र थे; पर मुझे उस चित्र को देख कर बार-बार हाना की याद आने लगी। जबसे हाना से बिदा ली थी, आज तक कोई पत्र उसे नहीं लिखा था। अपने सामने के चित्र का पोस्टकार्ड वहीं ख़रीद लिया और उसके पास लिख भेजने के लिये अपने पाकेट में रख लिया। उसकी बगल में एक और चित्र टँगा था जिसके नीचे लिखा था—'अनजान चित्रकार द्वारा अनजान बालक का चित्र।' चित्रकारी की कला का ज्ञान न रहते हुए भी मैं बहुत देर तक उस चित्र की ओर देखता रहा। उस लड़के के शरीर पर चिथड़े थे तथा सर के बाल भी वैसे ही बिखरे हुए थे। चेहरा सुन्दर नहीं था, फिर भी उसमें मुझे एक अद्भुत सुन्दरता दीखने लगी। मालूम नहीं उसका मेरे ऊपर क्या प्रभाव हुआ कि और दूसरे हॉल में न जा सीधे स्टेशन की ओर आया और लूचेर्न की गाड़ी में जा बैठा।

दो-एक चिट्ठी लिखने का विचार कर ही रहा था कि सारा शरीर टूटता हुआ सा मालूम होने लगा। डब्बे के एक कोने में बड़ी देर तक आँखें मूँद कर उबका रहा। मुझे यह डर लग रहा था कि कहीं उठने का प्रयत्न करते ही मूर्च्छा खा कर गिर न पड़ूँ। लूचेर्न पहुँचने पर जब एक रेलवे-कर्मचारी ने यह बतलाया कि गाड़ी और आगे नहीं जाती, तो उतर पड़ा। पर मेरा अधिकार अपने पाँवों पर नहीं था। सर में भारी पीड़ा हो रही थी। आँखों के आगे की सारी चीज़ें नाचती हुई दिखाई दे रही थीं। स्टेशन के बाहर शहर में जाने के लिये जो पुल मिलता था, कई बार उसकी लोहे की छड़ें पकड़ कर

खड़ा हो गया। किसी प्रकार अपने को घसीटता हुआ झील के किनारे-किनारे चला और जब मन में यह विश्वास हो गया कि काफ़ी दूर तक अपने को घसीट लाने में सफल हुआ हूँ तो पीछे फिर कर देखा। शहर मेरे बाईं ओर पीछे छूट गया था। वहाँ लौटने की इच्छा नहीं हो रही थी और न एक कदम भी आगे बढ़ने की शक्ति रह गई थी। वहीं झील-किनारे की घास पर लेट गया। धूप निकली हुई थी, पर रह-रह कर ऐसी सर्दी लगने लगती थी कि कलेजा तक काँप उठता था और दूसरे ही क्षण गरमी के कारण ऐसी बेचैनी मालूम होती कि सामने की झील में कूद पड़ने की इच्छा होने लगती थी।

मुझे ज़ोरों का बुख़ार चढ़ आया था।

जैसी शरीर की हालत थी, मन की भी ठीक उसके अनुरूप ही जान पड़ती थी। ऐसा मालूम होता था कि उसके भी सभी पुर्ज़े अपनी शक्ति से अधिक काम करने लग गये हैं। जिन बातों से अपने को बिलकुल ही प्रभावित हुआ नहीं मानता था वे ही बातें बड़ी ऊँची-ऊँची तरंगों के रूप में मन में उठने लगी थीं। अपने देश के अथवा विदेशों के साहित्य में जितने भी मुख्य-मुख्य चरित्र अंकित हुए पढ़े थे, वे जीते-जागते रूप में मेरी आँखों के सामने से गुज़रते हुए दिखलाई दिये। ये चरित्र मधुर-से-मधुर तथा कठोर-से-कठोर थे। सबसे पहले कालिदास की शकुन्तला को सरोवर के उस पार मृगों को प्यार करते हुए तथा उनके साथ खेलते हुए देखा; पर तुरन्त ही, मालूम नहीं क्योंकर, वही शकुन्तला गेटे की इफ़िगेनिए में परिणत होकर सरोवर के उस पार बैठी दिखाई दी। अभी उसे एक क्षण भी स्थिरतापूर्वक नहीं देख पाया था कि उसी के स्थान पर पुश्किन की तातयाना को देखने लगा। तातयाना का चेहरा सामने आते ही चाइ-कोव्सकी के ऑपेरा में देखी तातयाना का रूप दिखलाई देने लगा जिसके साथ बाजा बज रहा था और वह गा रही थी—

'मेरी बरबादी ही सही······'

यह चित्र भी भली भाँति नहीं देख पाया था कि लेरमंतोव की तमारा सरोवर के उस पार बैठी हुई दिखलाई दी और उससे 'डेमोन' कह रहा था—'व्यर्थ है तेरा रोना अभागी···।' फिर उसका भी चेहरा लुप्त हो गया और उसके स्थान पर दस्तोयेव्सकी की नास्तास्या फ़िलिपोवना को देखा। उसके प्रभाव से ऐसा प्रभावित हुआ कि अपने आपको मूर्ख मानने लगा। उपन्यासों अथवा नाटकों में जितने लोगों को सताया जाता देखा था, वह सब अपने ऊपर बीतता मानने लगा। संसार का अन्याय मुझे बर्दाश्त नहीं हो रहा था। उसका अन्याय मुझे ज़िन्दा ही जलाता हुआ सा दिखलाई देने लगा। शरीर में उस ज्वाला की लहर भी उठ रही थी। मैंने कपड़े उतार कर फेंक दिये और 'बचाओ', 'बचाओ' चिल्लाता हुआ झील में कूद पड़ा।

वहाँ थोड़ी देर तक तैरता रहा; पर तुरन्त ही मेरे हाथ और पाँव दोनों ही काठ की तरह अकड़ गये और मैं डूबने लगा। फिर मुझे चेतना आई कि क्या यों ही डूब कर मेरा अन्त हो जायगा?

मेरे भीतर से दृढ़तापूर्वक किसी का उत्तर मिला—

'कदापि नहीं।'

मैं अपनी अन्तिम शक्ति लगा पानी से बाहर निकल आया। थोड़ी देर पहले अपने भीतर जो कमज़ोरी और निराशा का भाव आ रहा था वह झील में डुबा दिया गया, ऐसा मैं समझने लगा। कपड़े पहनते-पहनते जिस ओर की पहाड़ी पर दृष्टि गई उधर से स्विस देशभक्त 'विलियम टेल' निकलते दिखलाई दिये। गीता में कहा हुआ कृष्ण का वाक्य याद आया—

'शस्त्र रख देना कायरता है। युद्ध करो। तुम्हारी विजय अनिवार्य है।'

मैं टहलने की कोशिश करने लगा, पर पाँव इतने भारी हो आए थे कि एक कदम भी आगे नहीं रख सका। हृदय ज़ोरों से धड़कने लगा था और सारा शरीर बेतरह काँप रहा था। मैं जानता था कि इस बार बुरी तरह बुख़ार के चपेटे में पड़ गया हूँ। मैं अपने को असहाय नहीं समझता था, बीमारी से हार मान उसको आत्मसमर्पण नहीं करना चाहता था। स्वस्थ रहना चाहता था और जीना चाहता था। अपने जीवन का लक्ष्य स्पष्ट अपनी आँखों के सामने देखता था। मैं उसे शब्दों में व्यक्त भले ही न कर पाता होऊँ; पर यह देखता तो अवश्य था कि मुझे जीवन में बहुत कुछ करना है और उसकी दूसरी लड़ाइयों के लिए अपने को जीवित तथा स्वस्थ बनाये रखना अनिवार्य है।

कुछ समय के लिए मैं अपने को एक तीसरे व्यक्ति के रूप में देखने लगा और बुख़ार के साथ-ही-साथ जीवन के अनेक क्षेत्रों में अपने को लड़ते हुए पाया। युद्ध के मैदान में बजने वाली रण-भेरी मेरे जीवन-संग्राम के क्षेत्र में बजती हुई सुनाई देने लगी। मैंने नंगी तलवार लिये अपने चारों ओर के शत्रुओं से अपने को लड़ते हुए पाया।

अब तक खड़ा था। एक-ब-एक आँखों के सामने बिलकुल अँधेरा छा गया। मैं घास पर लेट गया और अँधेरे में ही हाथों से घास नोचने लगा। फिर अत्यन्त थका हुआ सा हाँफता-हाँफता चुपचाप न्वित होकर पड़ रहा।

उस अवस्था में भी मेरी मानसिक शक्ति बराबर संग्राम करती जाती थी और मेरे भीतर गूँज रहा था—'भय किसका? मेरी जय अनिवार्य है।'

जिस समय फिर मुझमें थोड़ी शक्ति आई और आँखें खोलीं तो देखा कि बहुत पहले ही सूर्यास्त हो चुका था और अब धीरे-धीरे अँधेरा भी हो चला था। बुख़ार का झोंका अभी भी गया नहीं था; वह शायद

बढ़ता ही जा रहा था। पर उसी झोंके में उठ खड़ा हुआ और शहर की ओर चला। थोड़ी दूर आगे बढ़ने पर दाहिने हाथ की ओर एक मकान दिखलाई दिया। उसके मुख्य दरवाज़े पर शायद कोई तख्ती टँगी थी; पर उसे बिना पढ़े ही मैंने समझ लिया कि यह कोई रेस्तुराँ होगा। उस दरवाज़े के दोनों ओर दो बत्तियाँ जल रही थीं। अभी जितनी दूर के फ़ासले पर था वहाँ से वे बत्तियाँ दो बड़ी-बड़ी आँखों-जैसी दीख रही थीं और मालूम नहीं क्यों दूसरे ही क्षण मैं यह समझने लगा कि वे हाना की आँखें हैं और मुझे शरण देने के लिए बुला रही हैं।

अपने को बहुत सँभालते रहने पर भी उस रेस्तुराँ की एक कुर्सी पर धड़ाम से जा गिरा; पर अच्छा था कि किसीने ध्यान नहीं दिया। उस रेस्तुराँ की लड़की को खाना लाने के लिए कहा। मेरे मुँह की आवाज़ बहुत अस्पष्ट थी; पर मेरी विदेशी ज़बान के कारण उसे कुछ खटका नहीं हुआ। जिस समय वह भोजन लेकर मेरे सामने रखने आई, मैं मेज़ के सहारे सर टेक कर नींद लेने लगा था। उसने मुझे जगाया। पर भोजन करने के लिए हाथ उठाने के प्रयत्न में मैं स्वयं ही कुर्सी से नीचे गिर गया। फिर कौन-कौन लोग और किस प्रकार उठा कर मुझे एक कमरे में लाये, इसका मुझे कुछ भी पता नहीं। जिस समय थोड़ा-थोड़ा होश आने लगा, मैं समझ रहा था कि अभी भी झील-किनारे घास पर लेटा हुआ हूँ। पर यहाँ तो मुझे सर्दी लग रही थी और शरीर ढकने के लिए मेरे बदन पर के कपड़ों के सिवा और कुछ भी नहीं था! फिर शरीर क्योंकर ढका हुआ है? यह महसूस कर कि मैं बड़ी ही मुलायम और नरम जगह पर लेटा हुआ हूँ, आश्चर्य हो रहा था कि क्या ज़मीन भी इतनी नरम हो सकती है!

पूरी चेतना आने पर मैंने देखा कि मैं एक बड़े ही नरम बिस्तरे पर

लिटाया गया हूँ। कमरे में रोशनी नहीं थी, पर बाहर के दालान से शीशे के बीच होकर जो रोशनी आती थी उसके धुँधले प्रकाश में देखा कि कोइ स्त्री मेरे पाँवों के पास बैठी है। मैं उसे पहचान नहीं पाया। मुझे आँखें खोलते देख उसने पूछा—

'क्यों? भूख लगी है?'

अब मुझे याद आया कि यह वही स्त्री है जो मेरे लिए रेस्तुराँ में भोजन ले आई थी, पर जिसे खाने के पहले ही मैं बेहोश होकर गिर पड़ा था।

'नहीं' कह कर मैं करवट बदलना ही चाहता था कि देखा—उस कमरे का दरवाज़ा खुला और एक आदमी सादी पोशाक में तथा एक सिपाही की वर्दी में भीतर घुसा। सिपाही को देखते ही मुझे एक दूसरे प्रकार की चेतना आ गई और मैं समझने लगा कि वे मुझे पकड़ने के लिए ही आए हैं। पता नहीं, उस सिपाही अथवा उस सादी पोशाक वाले—किसने मेरा हाथ पकड़ा था कि मैंने झटका देकर हाथ छुड़ा लिया, उनकी ओर से मुँह फेर लिया और बड़ी तेज़ आवाज़ में चिल्लाने लगा—

'मैं अपराधी नहीं, अपराधी तुम लोग स्वयं हो। मैं जानता हूँ, तुम्हें लोकनर ने यहाँ भेजा है। तुम मेरा पासपोर्ट देखने और मुझे पकड़ने आए हो। तुम मुझे अब बहुत सता चुके। मुझे शांति से रहने दो, मैंने किसी का कुछ बिगाड़ा नहीं है। मुझे शांति से मरने दो—अकेले! अकेले में शांति से मरने दो! मैं तुम्हारी सूरत नहीं देखना चाहता!'

मालूम नहीं और क्या-क्या मैं कहना चाहता था, पर मेरे मुँह से साफ़-साफ़ आवाज़ नहीं निकल रही थी। मेरी बोली मेरे सिवा शायद ही कोई समझ पाया होगा। उन थोड़े से शब्दों के कहने में ही

मैंने इतनी शक्ति खर्च कर डाली कि फिर हाँफने लगा। आँखें मूँद लेना चाहता था, पर पलक बन्द नहीं कर पा रहा था। उसी समय देखा, मेरे पाँव के सामने खड़ी औरत ने कोई कागज़ उस सिपाही के हाथ में दिया। सिपाही ने उसे देखा और कहा—

'सब ठीक है!'

फिर कोई आदमी मेरे माथे पर हाथ रख और नाड़ी अपने हाथ में ले देख रहा था, जो थोड़ी देर में बोला—

'बुख़ार बहुत अधिक है, पर घबड़ाने की वैसी कोई बात नहीं। कल तक देखा जाय—अगर बुख़ार नहीं उतरा तो अस्पताल ले जाया जायगा।'

मैं उसका विरोध करना चाहता था, पर इस बार मुँह से बिना कोई शब्द निकाले ही हाँफता रह गया। कमरे में बहुत देर तक शांति रहने के बाद जब फिर से चेतना आई तो बड़े ज़ोरों की प्यास सी लगी हुई जान पड़ने लगी। गला सूखा जा रहा था। मैंने आँखें मूँदे-मूँदे ही कहा—

'प्यास लगी है।'

थोड़ी देर में ही उत्तर मिला—

'यह है पानी! पीओ।'

मैंने आँखें खोलीं। जो औरत मेरे पाँव के पास बैठी थी वही हाथ में पानी से भरा गिलास लिये खड़ी थी। मैं गिलास अपने हाथ में लेना चाहता था, पर उसने नहीं लेने दिया और मेरा सर अपने एक हाथ से पकड़ स्वयं पानी पिलाने लगी। उसके हाथ बड़े ही नरम थे और मुझे बड़ा ही आराम मिलता हुआ जान पड़ा। मैंने उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया और कहा—

'तुम्हें अनेक धन्यवाद!'

उसने मेरे हाथों से अपना हाथ छुड़ाने का प्रयास नहीं किया। फिर मैंने उससे पूछा—

'पुलिस वाले चले गये?'

'हाँ! कब के!'

'वे मुझे पकड़ने आए थे?'

'तुम्हें वे पकड़ने क्यों आयेंगे! डाक्टर को बुला लाये थे।'

'पर मेरा पासपोर्ट तो वे ले गये!'

'नहीं। देख कर फिर तुम्हारे कोट के पाकेट में रख दिया।'

मैं शांत हुआ। फिर उससे कहा—

'सर दुख रहा है।'

वह मेरा सर अपने हाथ से दबाने लगी। वैसे ही मुझे नींद भी आ गई।

दूसरे दिन सवेरा होने तक काफ़ी होश में आ गया था। वही स्त्री मेरे लिए जलपान भी ले आई। मेरे जलपान कर चुकने पर वह तुरन्त ही वहाँ से चली जाना चाहती थी, पर मैंने उसे रोक रखा और उससे बातें करता रहा। फिर मुझे याद आया कि कल जो ख़त रेल में ही लिखना चाहता था, अब तक नहीं लिख पाया हूँ। उन ख़तों का उत्तर भी चाहता था, पर कोई अपना निश्चित पता नहीं मालूम था। उस स्त्री ने अपने पते पर ख़त मँगाने के लिए कहा और पता लिख भी दिया।

दो ख़त लिख कर उस औरत को डाक में डालने के लिए दे देने के बाद फिर शरीर टूटने सा लगा। लेट गया। कल की ही तरह फिर अस्वीकार करने लगा कि जो भी हो, बुख़ार के पाले नहीं पड़ूँगा। बहुत देर तक उसी इच्छा की प्रबलता के कारण अपने को सँभालता भी रहा; पर तीसरे पहर के बाद और रोकना मुश्किल हो गया। कल-जैसी ही छटपटाहट और बेचैनी होने लगी। पता नहीं उस बेचैनी में क्या-क्या

बकता-झकता रहा। मैं पुनः झील में स्नान करने जाना चाहता था, पर दरवाज़े पर लोगों ने रोक लिया और पकड़ कर फिर बिछौने पर लिटा दिया। मैं उन लोगों को गालियाँ देने लगा; पर अच्छा था कि वे मेरी भाषा नहीं समझते थे। क्रोध का शेष आवेश बिछौने को नोच-नोच कर ही ठण्ढा करने लगा और अन्त में बहुत थक जाने पर पिछले दिन-जैसा बेहोश होकर पड़ रहा।

जब नींद टूटी उस समय ऐसा जान पड़ा मानो अभी आधे घण्टे पहले ही सोने के लिए लेटा था। अभी-अभी एक क्षण पहले अज्ञात में कुछ बक-झक कर रहा था, यह भी याद आने लगा। पर इस समय किसीने अपनी गोद में मेरा सर रख लिया था और हाथों से माथा सहला रही थी। आँखें खोलने का प्रयत्न करते देख उसने पूछा—

'अब कैसे हो?'

अपने आपको भली भाँति पहचान सकने के लिए बीमारी बहुधा बड़ी ही सहायक सिद्ध हुआ करती है। मनुष्य के मन में कुछ ऐसे धीमी आवाज़ में बोलने वाले विचार रहा करते हैं जो अपनी जड़ दृढ़तापूर्वक जमाये रहते हैं, फिर भी अपने को प्रकट नहीं होने देते। मनुष्य जब स्वस्थ रहता है उस समय ये विचार यदि ऊपर उठने का प्रयत्न भी करते हैं तो स्वस्थता के प्रकाश में चौंधिया से जाते हैं और फिर दब जाते हैं। मनुष्य ऐसे विचारों की सदा अवहेलना किया करता है और सर्वदा ही अपने आपसे कहा करता है—'ये विचार मेरे भीतर नहीं।'

मैं जिस चारपाई पर लेटा था उसके सामने की आलमारी में एक बड़ा सा शीशा लगा हुआ था। उसमें अपना चेहरा तथा दुर्बल शरीर देख कर अपने पर बड़ा ही तरस आ रहा था और अपने आपसे

कह रहा था—'ऐसे शरीर का न रहना ही अच्छा है।' फिर उस शरीर को एक तीसरे व्यक्ति के रूप में देखने लगा और उससे बार-बार पूछता—'आखिर तुम्हारी अवस्था ऐसी हुई ही कैसे ?'

इस बुखार की दवा मुझे अपने सिवा और कोई डाक्टर नहीं दे सकता था। जिस समय बिछौने पर लेटे-लेटे अपना चेहरा सामने की आलमारी वाले शीशे में देखा, मुझे अपने रोग का कारण मालूम हो गया। मैं अपने-आपसे कहने लगा—

'मैं भी कैसा दुर्बल मनुष्य हूं। अपने को जीवित रखने के लिए दूसरों की—बाहर की—सहृदयता पर अपने को आश्रित कर लिया है। छि: ! छि: !!'

अपनी उस दुर्बलता पर मुझे ग्लानि होती। उससे जितनी जल्दी हो, छुटकारा पाने की चेष्टा करने लगा, और कुछ ही सप्ताह बाद उससे वास्तव में छुटकारा ले भी लिया।

अपनी शक्ति पुनः पहचान में आ जाने के बाद स्विटज़लैंड की पहाड़ी, झील, झरने, वसन्त की हरियाली, जिस ओर भी दृष्टि जाती, वे मुझे कहते हुए दिखलाई देते—

'संग्राम में कूदो। योद्धा बनो ! तुम्हारी विजय अनिवार्य है।'

उस पहाड़ी तथा उन झरनों के साथ खेलने जाने वालों में से मालूम नहीं कितनों को ही उन्होंने यह पाठ पढ़ाया होगा और लड़ने के लिये नई शक्ति प्रदान की होगी। वहाँ आने वाले और यात्रियों की तरह मैं उनके पास से स्वास्थ्य ख़रीदने नहीं आया था और इसी लिए जिस प्रकार का जीवन वहाँ पर बिता रहा था उससे सन्तोष नहीं था।

मेरी पुनः वह अवस्था आ गई थी जब मेरे देश की दरिद्रता हर समय आँखों के सामने नाचा करती, अपने को सताने वालों के

विरुद्ध लड़ाई लड़ने की बात कभी भूल न पाता और इसीलिये उस प्रकार से सैर करते रहना बहुत ही खटका करता। मेरी इच्छा स्वदेश लौट जाने की होती थी, पर वहां तक पहुँचना वैसा आसान नहीं दीखता था। अपना ख़र्च आप चलाने में समर्थ नहीं हो रहा था, यह देख कर भी बड़ी चिढ़ हो रही थी।

मैंने अपने विषय में यही निश्चय किया कि वहाँ से पैदल ही गेनोआ तक की यात्रा करूँगा और फिर किसी जहाज़ में छिप कर भारत लौटूँगा। पर संयोगवश एक ऐसा मौका आया जिसने मेरा कार्य-क्रम एक विभिन्न रूप में ही बदल दिया! एक दिन मैं झील-किनारे टहलने गया था, वहीं पर मुझे एक ढलती उम्र के धनी भारतीय मिले। ये अकेले यूरोप की यात्रा करने निकले थे। भारतवर्ष में बहुत बड़ी ज़मींदारी रहने के कारण उन्हें यात्रा के लिये पैसों की कमी नहीं थी, पर यूरोपीय भाषाएँ न जानने के कारण बड़ी तकलीफ़ें उठानी पड़ती थीं। अंग्रेज़ी भी उन्हें टूटी-फूटी ही आती थी। शाकाहारी रहने के कारण प्रत्येक बार ही भोजन के समय उनके सामने विकट समस्या आ उपस्थित हुआ करती; फिर भी यहां पहुँच जाने पर बिना यूरोप देखे लौट जाना अच्छा नहीं समझते थे। हम लोग साथ ही कई स्थानों पर घूमने गये और दो-तीन दिन के सहवास के बाद ही उनके प्रस्ताव के अनुसार मैंने स्विटज़रलैंड, आस्ट्रिया और इटली की यात्रा में उनके साथ रहना स्वीकार कर लिया। वे मेरा यात्रा-खर्च उठाने के लिये तैयार थे और मिहनताने के रूप में भारत लौटने का एक जहाज़-टिकट भी ख़रीद देने वाले थे।

मैं उन भारतीय महाशय के साथ स्विटज़रलैंड के दूसरे स्थान देखने निकला। एक-दो दिन के बाद ही उनकी संगति से मेरा मन ऊबने लगा। यात्रा में जिन आदतों का मैं आदी था, उनकी आदतें ठीक

उनके विपरीत थीं। हम दोनों के विचारों में भी न तो कोई समानता थी और न उसके आने की ही सम्भावना थी। जिन देशों का ये भ्रमण कर रहे थे वहाँ के लोगों के रहन-सहन आदि का परिचय प्राप्त करना अथवा प्राकृतिक दृश्य देखना उनका उद्देश्य न था; बल्कि उन सुन्दर-सुन्दर होटलों की इमारतों का फ़ोटो लेना था, जिनमें वे टिका करते थे और जिन्हें अपने एलबम में चिपका कर उनके नीचे यह लिख दिया करते थे कि 'इसमें मैं टिका था'। इसका एकमात्र उद्देश्य यही था कि वे दूसरों को घर लौटने पर यह दिखलाना चाहते थे कि वे उन स्थानों पर हो आए हैं।

उनके साथ यात्रा करते रहने पर मेरी पहले की बहुत-कुछ आज़ादी छिन गई थी। अकेले यात्रा करते समय जितना कुछ सीखा अथवा देखा था, उसे भूलने सा लगा था। धनी यात्री का वास्तविक आनन्द धनोन्माद के कारण प्राय: नष्ट हो जाया करता है। रुपयों से भरी थैली लेकर जो लोग यात्रा करने निकलते हैं उनकी यात्रा में कुछ भी मज़ा नहीं रहता। वे जिस देश में जाते हैं वहाँ के लिए सदा विदेशी ही बने रहते हैं और विदेशी के ही रूप में लौट भी आते हैं। उन देशों के प्राकृतिक सौन्दर्य का मज़ा लूटने में भी वे असमर्थ से रहते हैं। उनके पास वाली रुपयों की बड़ी थैली उनके पेट की पिलही बन जाती है जिसे वे दोनों हाथों से दबा कर बैठे रहते हैं; जो न तो उन्हें चलने देती है और न आँखों के सामने की ही कोई चीज़ देखने देती है। ऐसे धन के रोग से रोगी मनुष्य प्रकृति से बातें नहीं कर पाते, वे उसके लिए सदा ही अपरिचित बने रहते हैं।

इन रोगियों की नये देश में जब कभी किसी मनुष्य की ओर दृष्टि जाती है तो वे उसके साथ अपनी तुलना करके यह देख लेना अपना सबसे पहला काम समझते हैं कि उन दोनों में किसके कपड़े अधिक

अच्छे हैं और कौन अधिक धनाढ्य होगा। किसी देश के लोग वास्तव में कैसे हैं, इसकी खोज करने की उन्हें फ़िक्र नहीं रहती। ये धनी भला इस बात की कल्पना ही क्योंकर कर सकते हैं कि वास्तविक जीवन क्या है? वे दूसरों की मिहनत पर जीने वाले होते हैं, उन्हें अपनी रोटी कमाने की चिन्ता नहीं रहती और इसलिए जहाँ से वह रोटी आती है उस भूमि से भी परिचय नहीं प्राप्त करना चाहते।

पहले दिन ही जब उन भारतीय महाशय के साथ मोटर में बैठ कर झील-किनारे की सड़क से निकला तो उस स्थान पर अपने आपको अपरिचित सा देखने लगा। जबसे लूचेर्न पहुँचा था, उस झील-किनारे की घास पर बहुत बार लेट चुका था, उससे मेरा घना सम्बन्ध हो गया था, उससे मैं बातें किया करता था और वह उसका मुझे उत्तर दिया करती थी; पर जब मैं उधर से मोटर पर निकला तो मालूम पड़ा मानो उसने मुझ पर कटाक्ष करते हुए मेरी ओर से अपना मुँह फेर लिया है। वह भूमि, जो अपनी गोद में मुझे अपने लड़के-जैसा उछाला करती थी, जिसकी गोद में मैं खेलते रहना पसन्द करता था और सारी निराशाएँ भूल कर जीवन-संग्राम के लिए नया बल प्राप्त किया करता था, बिलकुल मुर्दा सी तथा सुनसान सी दिखाई देने लगी। अपने प्रति उसकी तिरस्कार-भरी दृष्टि मैं बर्दाश्त नहीं कर पा रहा था। उस मोटर से कूद पड़ने की मेरी इच्छा हो रही थी; रास्ते के किनारे की कँटीली झाड़ियों को पार करते हुए उस हरे-भरे मैदान में अकेले मुँह छिपा कर उस माँ से क्षमा माँगने को मन व्याकुल हो रहा था।

दूसरी ओर उन भारतीय महाशय को स्विटज़रलैंड की सैर करने के लिए आने वाले दूसरे आम यात्रियों की ही तरह मोटर पर लदे रहने में ही आनन्द आता था। अपने उस लदे रहने को ही ये लोग 'अत्यन्त सुन्दर यात्रा' का नाम दिया करते हैं। इनके लिए अपने सामने देखने

अथवा याद रखने की कोई वस्तु नहीं होती। इसीलिए ये मोटर में अपने साथ यात्रा करने वाली कोल्हू सी मोटी अथवा छड़ी सी पतली, पाउडर से पुती रमणियों के साथ अपना चित्र खिंचवा कर उसे अपने जीवन के सबसे सुन्दर काल के स्मरणार्थ छाती से लगे चमड़े के मनीबैग में ढोया करते हैं।

इन लोगों की बातचीत में भी प्रायः एक ही चर्चा रहती है और वह यह कि—'आज का जलपान बड़ा सस्ता तथा अच्छा था। काफ़ी बड़ी लज्जतदार थी, पर चाय का ज़ायका न लेना बेवकूफ़ी हुई। अभी एक घण्टे में हमारी मोटर फ़लाँ शहर में पहुँचेगी, और वहाँ पर हम लोग डट कर काफ़ी पीयेंगे और केक खायेंगे। बिअर रास्ते में एक-दो गिलास से ज्यादा पीना अच्छा नहीं होता; हाँ, शाम को चाहे जितना भी क्यों न पिया जाय, कोई हर्ज नहीं।' फिर इन लोगों में और पहले भी जो लोग उन स्थानों पर आए होते हैं उनमें पिछले साल पी हुई काफ़ी और केक की बात छिड़ जाती है और इसी प्रकार मनबहलाव होते-होते मोटर सुन्दर-से-सुन्दर प्राकृतिक दृश्य वाले स्थानों को पार करती हुई निकल जाती है।

मेरा इस तरह की यात्रा में दम घुटने लगा था। चाहे जैसे भी हो, इससे पीछा छुड़ा भाग निकलना चाहता था। बहुत थोड़े ही काल में मुझे इस बात का पक्का अन्दाज़ लग गया था कि धनी लोगों के समाज तथा प्रकृति देवी के बीच कोई सम्पर्क नहीं रह जाता। धन उन्हें रोगी बनाये रहता है, उनकी आँखें अन्धी किये रहता है, फिर भला वे प्राकृतिक सौन्दर्य की कल्पना भी कैसे कर सकते हैं? और, यदि उस सौन्दर्य को ही नहीं देखा, उसकी गोद में खेले ही नहीं, तो फिर निरे रोड़े-कङ्कड़ देखने और धूल फाँकने से क्या लाभ?

मैं जिन भारतीय महाशय के साथ यात्रा कर रहा था वे भी दूसरे

धनी यूरोपीय यात्रियों की तरह सबेरा, शाम, रात आदि के होने से दिन का व्यतीत हो जाना अथवा बदलना नहीं मानते थे, बल्कि रंग-बिरंग की—समय-समय की—पोशाक बदलने से ही, उनके अनुसार, समय बदलता जाता था। मुझे 'ग़रीब' समझ और मुझ पर रहम कर अपना एक पुराना सूट भी मुझे वे देने वाले थे; और जब उनकी यह इच्छा प्रकट होने पर मेरा चेहरा क्रोध से लाल हो आया उस समय भी वे मेरी भावना का अनुमान नहीं कर पाये। मुझे क्रुद्ध देख कर उन्हें आश्चर्य हुआ और मुझे नाशुक्रा समझने लगे; पर जब मैंने उन्हें यह उत्तर दिया कि 'मुझे तरह-तरह की पोशाक पहन कठपुतलियों की तरह अपना प्रदर्शन करने की इच्छा नहीं' तो वे महाशय पहले तो नाराज़ हो गये और बाद को यह समझाने लगे कि मुझे भी तौर-तरीक़ा सीख ही लेना चाहिये, नहीं तो यात्रा करने से आख़िर फ़ायदा ही क्या उठाया!

मैं यह अच्छी तरह जानता था कि यात्रा के अन्त तक हम दोनों का साथ निबहना कठिन है। यदि उन्होंने किसी यात्रा कराने वाली कम्पनी के ज़रिये यात्रा की होती तो जितना ख़र्च वे मुझ पर किया करते थे उससे कहीं अधिक होता, फिर भी वे मेरे ऊपर अपना एहसान समझने लगे थे और मुझे जहाज़-टिकट का लालच देकर यह समझने लगे थे कि उनका मेरे ऊपर पूरा-पूरा अधिकार ही हो गया है। यदि मैंने शुरू से ही उनकी इस इच्छा का विरोध न किया होता तो वे मुझे ख़रीदा हुआ गुलाम ही समझने लग जाते।

उनके साथ एक-दो सप्ताह यात्रा करने के बाद मेरे भीतर यह विचार आने लगा था कि आख़िर ऐसे लोगों को यात्रा करने का अधिकार ही क्या है? जो लोग यात्रा का महत्त्व समझ सकते हैं, जो लोग उससे पूरा-पूरा फ़ायदा उठा सकते हैं और सिर्फ़ अपनी ही नहीं

बल्कि समाज की उन्नति के लिये अपने को उस यात्रा द्वारा अधिक उपयोगी बना ले सकते हैं, ऐसे लोगों को पहले तो दम लेने तक की फुर्सत नहीं मिलती और यदि कभी उन्हें फुर्सत मिलती भी है तो साधन नहीं प्राप्त होते। दूसरी ओर, ऐसे लोगों की ही मिहनत पर जीने वाले लोगों को वे सभी साधन प्राप्त रहते हैं और वे केवल अपने आलसी जीवन से थक कर आराम लेने की दृष्टि से यात्रा किया करते हैं, जिससे समाज के उपार्जित धन की बरबादी के सिवा और कोई फ़ायदा नहीं होता।

मैं उन महाशय से झगड़ कर अपना पीछा छुड़ाने की बात सोच ही रहा था कि उनका साथ छूटने का अनायास ही मौका आ गया। वे महाशय स्वयं ही अपनी यात्रा से ऊब गये थे और आस्ट्रिया की सरहद में आते ही यह निश्चय कर लिया कि इन्सब्रुक के सिवा और कोई स्थान नहीं देखेंगे। वहाँ से वे सीधे गेनोआ जाकर भारत के लिए जहाज़ लेने वाले थे। जैसा कि उन्होंने वादा किया था, मेरे लिए भी एक सस्ती जहाज़-कम्पनी से भारत का टिकट मोल ले दिया। मैं किसी प्रकार उनसे अपना पीछा छुड़ाना चाहता था, इसलिए आस्ट्रिया के दूसरे स्थानों को देखने का बहाना कर इन्सब्रुक में ही रुक गया। जिस दिन हम वहाँ पहुँचे थे उसी दिन वे शाम को गेनोआ के लिए रवाना भी हो गये।

उनका साथ छूटते ही अपने को जिससे बिछुड़ा हुआ अनुभव कर रहा था उसकी ओर दौड़ पड़ा। आस्ट्रिया के पहाड़ अभी भी बर्फ़ से ढके थे। मैं उन पर दौड़ने लगा।

हाना

अप्रैल महीने का अन्तिम सप्ताह था। धूप निकली हुई थी। स्नो (बर्फ़) पर दौड़ने के लिए दूर-दूर से आए हुए यात्रियों का अभी भी जमघट था। ये यात्री होटलों में ठहरे थे।

मैं स्वयं उन होटलों के संसार से भी बहुत दूर आगे जा निकला। इन्सब्रुक में ही एक आस्ट्रियन युवक से परिचय हुआ था और उसी के साथ ऊँचे पहाड़ों में 'स्की' (पाँव में लम्बे-लम्बे फट्ठे लगा कर बर्फ़ पर दौड़ने का खेल) के लिए रवाना हो गया। हम लोगों के सोने के लिए 'श्नेहूटे' कहलाने वाली बर्फ़ पर खड़ी काठ और फूस की झोपड़ियाँ थीं। वहीं हम लोग स्वयं 'मकरोनी' पका कर खाया करते और दिन-भर चारों ओर के पहाड़ों में 'स्की' पर दौड़ा करते।

हमारी झोपड़ी मानव-जगत् से बहुत दूर निर्जन स्थान में थी। हमारी बातें नई रुई के फाहों सी पड़ी हुई बर्फ़ से ढके पानी के कलकल करते हुए सोतों से हुआ करती थी। उन दिनों वे मुझे जितनी शांति दिया करते, जैसा ढाढ़स बँधाया करते वैसा मनुष्य-समाज से शायद ही कभी मिल सकता था।

जब फिर मानव-जगत् का आकर्षण हमारे भीतर ज़ोर मारने लगा तो हम नीचे उतरे। नीचे के दर्रों में बर्फ़ गलती जा रही थी। पहाड़ियाँ अपना सर्दी के दिनों वाला धवल-वस्त्र त्याग रही थीं। वह दृश्य हमारे लिए थोड़ी उदासी ला दिया करता था। इसलिए पहले की अपेक्षा भी अधिक वेग से हम नीचे आने लगे। जब रास्ते पर और अधिक बर्फ़ नहीं रही तो हम लोगों ने अपनी 'स्की' पाँवों से निकाल ली और उसे कन्धे पर डाल चलने लगे। हम ज्यों-ज्यों नीचे आते, जमी हुई तथा गिरने वाली दोनों ही तरह की बर्फ़ अधिकाधिक पिघली हुई दिखलाई देती।

नीचे के एक गाँव में मेरे आस्ट्रियन मित्र अपने एक परिचित के घर रुक गये और मुझसे भी वहीं रात बिताने का आग्रह किया, पर मैं वहाँ न रुक शहर की ओर चला।

जिन पहाड़ियों से हम जा रहे थे उनकी बर्फ़ पर अभी डूबते सूर्य की अन्तिम लाल किरणें चमक ही रही थीं कि मैं शहर के किनारे आ पहुँचा। जिस सड़क से होकर मैं शहर की ओर जा रहा था उसके किनारे के मकान छोटे-छोटे तथा एक ही ढंग के बने थे। यह अवश्य ही मज़दूरों के रहने की, शहर के किनारे वाली, बस्ती रही होगी। मेरे ठीक सामने एक बड़ा सा मैदान था और एक पगडण्डी उस मैदान से होकर निकलती थी जो शहर की ओर जाती थी। मेरे बाईं ओर की सड़क पर मोटरें धूल उड़ा रही थीं, इसलिए उधर न जा मैं पगडण्डी की ओर बढ़ा। अब मुझे यह भी दिखलाई दिया कि उधर से भी कोई स्त्री आ रही है। उसके कपड़े घास की तरह हरे रंग के थे, इसलिए दूर से उसकी ओर मेरा ध्यान नहीं गया था। जब वह उस पतली पगडण्डी पर मेरी बगल से निकलने लगी तो मैंने एक दृष्टि उसकी ओर डाली

और तुरन्त ही सहम कर खड़ा हो गया। वह भी खड़ी हो गई और दूसरे ही क्षण मुसकराने लगी। मैं एक-ब-एक चिल्ला उठा—

'मैंने तो तुझे राइन-किनारे देखा था, तू हम लोगों की मेज पर डिनर ले आया करती थी!'

'तू यहाँ?'

हम लोगों ने हाथ मिलाये और एक क्षण के लिए दोनों में से किसी की भी समझ में नहीं आया कि क्या बोलें। फिर हाना ने ही अपने ठहाके द्वारा वह चुप्पी तोड़ी और दूसरे क्षण ही बातों का न ख़तम होने वाला ताँता लग गया। राइन-किनारे विद्यार्थियों के साथ नाच वाली जो सन्ध्या बिताई थी वह उसकी याद दिलाने लगी और धीरे से मुझे रास्ते के किनारे ढकेलते हुए कहने लगी—

'मालूम नहीं कितनी बार मैंने तेरी याद की, पर तूने तो आज तक मुझे अपनी ख़बर नहीं दी।'

मैंने उसके उस उलहने का कोई उत्तर नहीं दिया।

उसने अपना घर दिखलाया और उस ओर मुझे खींच कर ले जाने लगी। मेरे ऊपर वह मानो अपना स्वाभाविक अधिकार समझती थी; इसलिये मुझसे पूछने की उसे आवश्यकता नहीं थी।

उसकी बातों के ही साथ-साथ उसकी हँसी का तार नहीं टूट रहा था। वह जो कुछ भी बोल रही थी उसका आधे से अधिक उसके बिना सोचे-समझे ही उसके मुँह से निकलता जा रहा था। अपने भीतर का स्वाभाविक उच्छ्‌वास वह रोक नहीं पा रही थी। राइन-किनारे वाली हाना में जो बातें देखी थीं, उसकी जैसी गति देखी थी, इसमें भी ठीक वैसी ही थीं। उसके स्वभाव में ज़रा भी परिवर्त्तन नहीं हुआ था। हाँ, बाहर से, पहली झलक में, थोड़ी मोटी अवश्य ही हो गई दीखती थी।

घर पहुँचने पर वह मुझे सीधे अपने रसोई-घर में लेती गई। वहाँ पर एक लम्बा और हृष्ट-पुष्ट आदमी कील पर टँगे तौलिये से अपने हाथ पोंछ रहा था। उसके हाथ के गट्टे की नसें बड़ी मोटी और ऊपर की ओर तनी हुई दीखती थीं जिनसे स्पष्ट था कि वह कोई शारीरिक परिश्रम करने वाला मज़दूर था। शरीर पर आधी बाँह की बिना बटन तथा कालर वाली कमीज़ उसने पहन रखी थी। उसके नीचे 'निकरबाकर' (ह्रसफ़ोर) था और बिना मोज़े के पाँवों में 'पाँटोफ़ेल' (घर में पहना जाने वाला जूता) डाल रखा था। मुझे देख कर उसने मुझे नमस्कार करने के लिये अपना सर झुकाया।

'मेरे पति,' हाना ने कहा और उसी दम मुझे अपनी ओर खींचते तथा हँसते हुए मेरा परिचय दिया।

'मेरे दोस्त !'

हम तीनों हँसने लगे। हाना के पति का नाम कार्ल था। उसने अपना नाम बतलाते हुए हाथ मिलाया और बिना सोचे-समझे हम लोग एक-दूसरे को 'तू' कह कर पुकारने लगे।

हज़ार चेष्टा करने पर भी उन्होंने मुझे होटल में नहीं लौटने दिया और अपने ही यहाँ रहने के लिए बाध्य किया। पहले ही क्षण से उन्होंने मुझे अपने परिवार का सदस्य बना लिया था।

जितने दिनों से हाना से मुलाकात नहीं हुई थी, केवल उतने समय का ही नहीं, बल्कि उसके बहुत पहले का भी इतिहास वह मुझे सुनाने लगी। यहाँ तक कि अपने प्रेम का भी इतिहास खोल कर कहने में उसे कोई झिझक नहीं हुई।

हाना के पिता लकड़ी के खिलौने बनाने वाले कारीगर थे। आस्ट्रिया के जिस गाँव में वे रहा करते थे उसके आस-पास में उनकी

कला की काफ़ी प्रसिद्धि हो चुकी थी। बहुत दूर-दूर के गाँवों के युवक उनके यहाँ आकर काम सीखा करते थे। यदि उन्होंने किसी शहर में जा कर अपनी दूकान खोली होती तो आमदनी काफ़ी होने के साथ-ही-साथ उनकी ख्याति भी काफ़ी बढ़ती; पर इसकी परवा नहीं थी। वे पुराने ढङ्ग के कारीगर थे और इसी कारण उनका ध्यान पैसे अथवा ख्याति की ओर उतना नहीं था जितना कि कला की ओर। अपनी कला की वृद्धि के लिये उसी गाँव में, जहाँ पर उनका जन्म हुआ था, वे रहना ठीक समझते थे। यदि वह केवल दो-तीन दिनों के लिए गाँव छोड़ कर किसी सम्बन्धी के यहाँ भी जाते तो वहाँ उनका दम सा घुटने लगता था। अपने घर की खिड़की के सामने की ऊँची-ऊँची पहाड़ियाँ और उन्हें चूमते हुए बादलों को देखे बिना वे मानो जी ही नहीं सकते थे।

हाना ने भी अपना बचपन उसी गाँव में बिताया था। गाँव छोटा सा था; पर बड़े ही सुन्दर स्थान पर बसा था। उस गाँव के एक किनारे से एक छोटा सा झरना बहता था। इसी झरने के किनारे के एक मकान में हाना के पिता, पितामह, प्रपितामह रहते आये थे। इसी मकान में हाना का भी जन्म हुआ था और उसकी ही खिड़कियों से उसने संसार की पहली झाँकी ली थी। मालूम नहीं कितनी बार, जब उसकी माँ उसे एक झूले में डाल कर घर का काम-काज सँभालने चली जाती थी, वह अकेले में चिल्ला उठती थी और तुरन्त ही अपने सामने की पहाड़ी की तराई में चरने वाली गायों की गरदनों में बँधी हुई घण्टियों की आवाज़ सुन कर चुप हो जाती थी।

जब वह कुछ सयानी हो गयी थी उस समय भी उसके माता-पिता उसकी बहुत ही कम खोज-खबर लिया करते थे। वे उसे गरमी के दिनों में धूप निकली रहने पर हरी-भरी घास पर सुला दिया करते

श्रौर वह नींद में घंटों अपने पास के बहने वाले झरने से बातें किया करती। नींद टूट जाने पर भी वहाँ फुदकने वाले छोटे-छोटे मेढ़कों के साथ, अपने सामने के वृक्षों के साथ श्रौर आगे चल कर दूरस्थ तथा सर ऊँचा किये खड़ी पहाड़ियों के साथ घंटों बातें किया करती। उतने समय के लिए यदि मनुष्यों ने उसे भुला दिया था तो वह भी उनकी परवा नहीं करती थी। प्रकृति की गोद में ही खेलना उसे अधिक पसन्द था श्रौर जी खोल कर उनसे ही वह बातें भी किया करती थी। भय का वह नाम तक नहीं जानती थी। कुत्ते, बिल्ली तथा बकरों के मुँह के भीतर तक हाथ ले जाकर उन्हें खिलाया करती थी।

माँ की मृत्यु के समय उसकी अवस्था दस वर्ष की थी। उस समय तक उसने काफ़ी होश सँभाल लिया था श्रौर घर का काम-काज सँभालने लायक बन गई थी। पिता को अपनी कला की प्रगति करने श्रौर चेलों को शिक्षा देने से इतनी फ़ुर्सत नहीं मिलती थी कि वह अपनी पुत्री की शिक्षा-दीक्षा आदि की श्रोर ध्यान देते। हाना कपड़े धोना, खाना पकाना, मोज़े दुरुस्त करना जानती थी श्रौर इसीसे पिता को सन्तोष था। हाना को स्वयं भी अपने में कोई कमी नहीं खटकती थी जिसकी वह चिन्ता किया करे। वह झरने पर के छोटे पुल पर घण्टों हाथ में मोज़ा श्रौर सुई लिये अकेली बैठी स्वप्न देखती रह सकती थी।

जब वह श्रौर भी कुछ बड़ी हो गई श्रौर बचपन बीतने तथा यौवन के लक्षण भी दिखलाई देने लगे तो उसी झरने के छोटे पुल पर उसके पिता के चेले उससे घण्टों बातें किया करते। पिता के चेलों की संगति उसे पसन्द थी श्रौर उनकी संगति ने ही उसे हँसमुख बना दिया था। उस गांव में जितनी लड़कियाँ थीं उन सबमें हाना सबसे अधिक श्रौर सबसे सुन्दर तरीके से हँसने वाली थी। इसीलिए

उसके पीछे दौड़ने वाले गाँव के युवकों की कमी नहीं थी। रविवार को जब उस गाँव में युवा-युवती 'तीन पुराने उल्लू' नाम के काफ़े-घर में इकट्ठे हुआ करते, उस दिन तो हाना के साथ नाचने वालों की लम्बी फ़िहरिस्त सी बनी रहती। नाचते समय सभी अपना-अपना अधिकार उस पर जमाने की चेष्टा किया करते और हरएक ही अपने एकान्त में मिलने और उसके साथ घूमने जाने का समय निर्धारण किया करता। हाना भी हर रोज़ पारी-पारी से उनके साथ घूमने जाने का वचन दिया करती। वे युवक यदि अपनी तीन-चार की मण्डली में इकट्ठे हुए रहते और झरने के किनारे मुँह से बजाया जाने वाला छोटा 'हारमोनिका' बजाया करते और संयोग से उधर से हाना निकल आती तो वे अवश्य ही गीत गाने लगते—

सबसे मस्ती है—हम लोगों के जीवन में,
यहाँ के लकड़ी वालों से और न सुखी जीवन कोई।

हाना उनके ही ताल में गाया करती और फिर बीच में खड़ी हो नाचने लगती। गाँव के सारे युवकों को हाना पर गर्व था और उन सभी में उसे अपनाने के लिये आपस में प्रतिद्वन्दिता थी।

इन्हीं दिनों उस गाँव में राइनलैंड के युवकों की गाने वाली एक टोली आई। ये लोग गा-बजा कर अपनी जीविका चलाया करते थे और उसी प्रकार भ्रमण भी किया करते थे। उसी टोली में फ्रांक नाम का एक युवक था। उसका पार्ट अधिकतर प्रेमी का गान गाने का रहा करता था। उसकी आवाज़ बड़ी मधुर थी, गला सुरीला था, लोगों से बातचीत करते समय भी उसकी बातचीत का ऐसा तर्ज़ रहा करता था जिससे हाना जैसे स्वभाव की लड़कियों का बड़ी ही आसानी से मुग्ध हो जाना बिलकुल स्वाभाविक था।

फ्रांक अब तक वास्तविक जीवन से परिचित नहीं था। उसका

संसार संगीत का संसार था। एकान्त में गाने से बढ़ कर आनन्द और मस्ती का समय उसके लिए और कोई दूसरा नहीं होता था। उसकी यही बातें विशेषकर हाना को अपनी ओर बड़ी वेग से आकर्षित कर रही थीं।

दूसरी ओर हाना का निष्कपट तथा सरल स्वभाव, उसके चेहरे पर की स्वाभाविक सुन्दरता फ्रांक के लिये भी कुछ कम आकर्षक नहीं थी। फ्रांक हाना के भीतर अपने संगीत का आदर्श देखा करता था। वास्तविक संगीत की भावुकता के चपेट में पड़ रहने के कारण हाना से परिचय होने के दूसरे दिन से ही वह इस बात पर आश्चर्य करने लगा कि आखिर उतने दिनों तक वह हाना के बिना जीवित ही क्योंकर रह पाया!

दोनों ही चढ़ती जवानी की उमङ्ग में थे। किसी बात में आगा-पीछा सोचना उनके स्वभाव के विपरीत था। रोमांचक जीवन का उन्माद उनकी नस-नस में भर रहा था—नहीं, अब वह फटा पड़ रहा था—इसलिये उन्होंने अपने भीतर के उस घोड़े की लगाम बिलकुल ही छोड़ दी और स्वतन्त्रतापूर्वक उसे अपना जो रास्ता पसन्द आये, ले लेने दिया।

दोनों ही चुपके-चुपके एक रात वहाँ से भाग निकले और फ्रांक की जन्मभूमि राइनलैंड में जा पहुँचे। वहाँ पहुँचते ही उनकी सांगीतिक भावुकता उनसे दूर हटने लगी और सांसारिक वास्तविकता के चपेटे लगने लगे। आर्थिक प्रश्न बड़ा ही जटिल था। उस प्रश्न की जटिलता का फ्रांक ने पहले कभी अनुमान तक नहीं किया था। एक-ब-एक जब अपने सामने उसे एक पहाड़ के रूप में आते देखा तो उसका सामना करने की हिम्मत उसे नहीं हुई। भावुकता के आवेश में पहले आत्महत्या की सोचने लगा और उसीमें उसे अपनी बहादुरी भी दीखने

लगी; पर वह भी कुछ कम कठिन कार्य नहीं था। कुचल जाने की अपेक्षा भाग निकलना ही उसे अधिक उचित जँचा और वह वास्तव में ही भाग निकला।

पर हाना सामने की परिस्थितियों से वैसी डरने वाली नहीं थी। जिस दिन उसने सबसे पहले संसार की झाँकी पाई थी, उसे अपनी आँखों के सामने मस्तक ऊँचा किये हुए पहाड़ दिखलाई दिया था। उससे भय न खाकर वह अपनी दृष्टि उस पहाड़ की चोटी और उससे भी ऊपर लेती चली गई थी। उसे अपने भीतर पूरा विश्वास था कि वे परिस्थितियाँ उसे नीचे नहीं दबा सकेंगी।

कुछ काल तक वह राइनलैंड के कारखानों में काम ढूँढ़ने के लिए भटकती रही। उसे कोई उपयुक्त काम नहीं मिला। फिर होटलों में काम ढूँढ़ने निकली। इन्हीं दिनों उसे एक बियर की दुकान में काम मिला। वह इने-गिने दिन ही वहाँ काम कर पाई होगी कि उसका खुला स्वभाव रहने के कारण लोग उसे बहुत बदनाम करने लगे। उसके चरित्र पर का दोषारोपण यहाँ तक बढ़ा दिया गया कि हाना के लिये वहाँ रहना असम्भव बन गया। वह पुनः आस्ट्रियन जन्मभूमि में चली आई। घर लौटने के महीने-भर बाद ही उसने अपने गाँव के एक परिचित मजदूर के लड़के कार्ल से शादी कर ली और उसके साथ ही इन्सब्रुक चली आई। यहाँ कार्ल रेल-विभाग के मालगोदाम में और हाना एक छापेखाने में काम करने लगी।

जिन परिस्थितियों में हाना उन दिनों थी और जिस समाज में वह अक्सर मिलती-जुलती थी, उसने उसकी विचार-प्रणाली का ढर्रा ही कुछ दूसरा बना दिया।

अब भावुकता नहीं, बल्कि मजदूर-समाज का जीवन, उस समाज की अपनी स्वतन्त्रता की लड़ाई ही उसके जीवन का आदर्श बन गया

था और अपनी सारी शक्ति वह उसीमें लगाती भी थी। अपने मज़दूर-समाज की ही दृष्टि से वह दूसरे समाजों को देखने लगी थी और उसी दृष्टिकोण से उनकी विवेचना करने लगी थी।

कार्ल काम पर चला गया था; पर उस दिन हाना की छुट्टी थी। जलपान के समय मैं अकेला उसके साथ रसोई-घर में बैठा था। जरमनी में मैंने अपना समय किस प्रकार बिताया, इसी की चर्चा उसने छेड़ी। हाइडिलबेर्ग की पढ़ाई, उत्तरी देशों की यात्रा, केटी से परिचय आदि बातें मैंने उसको विस्तारपूर्वक कह सुनाईं। वह मेरी बातें ध्यान से सुनती रही; पर बीच-बीच में अपनी हँसी का आवेग न रोक सकने के कारण इतनी देर तक हँसती रहती कि उसकी आँखों से आँसू निकलने लग जाते। जब मैं अपनी बातें खतम कर चुका तो उसने गम्भीर होकर पूछा—

'और यही तुम्हारा जरमनी का अध्ययन है?'

जरमनी में और भी दूसरे-दूसरे जो स्थान देखे थे उनकी भी बातें मैंने उसे बताईं; पर असन्तोष की जो रेखा उसके चेहरे पर मैंने अपनी बातें शुरू करने के आरम्भ में देखी थी वह अधिकाधिक गहरी ही होती गई। उसने मेरी ओर देखते हुए कहा—

'मेरे दोस्त! तुमने अपनी सारी यात्रा आँख मूँद कर ही पूरी की; जरमनी में देखने की और कोई भी चीज़ नहीं थी?'

मैंने समझा, शायद उसका मतलब जरमनी के ऐतिहासिक स्थानों से है। जरमनी में मैंने जितने 'बुर्ग' देखे थे उन्हें गिनाने लगा, उनके पूरा कर चुकने पर पुराने समय की राजधानी तथा उस शहर के प्रसिद्ध मकान गिनाने लगा; पर फिर भी उसे सन्तोष नहीं हुआ। उसने कहा—

'तुमने जरमनी में केवल ईंट और पत्थर ही आँखें मुँदी रहने के कारण टटोल कर देखे हैं।'

'यह कैसे ?'

'तुम अभी जरमनी के प्रसिद्ध बुर्गों का नाम ले रहे थे और उनमें जो व्यक्ति रहा करते थे अथवा जिनके नाम से वे प्रसिद्ध हैं उनका नाम बतला कर तुम जरमनी के ज्ञान की अपनी पंडिताई का परिचय देना चाहते हो ; पर यह तो बतलाओ कि जिन लोगों के नाम से वे बुर्ग प्रसिद्ध हैं उन्होंने उनके निर्माण में अपने हाथों से कितनी ईंटें जोड़ी थीं ? क्या वे स्वयं उन बुर्गों का कागज़ पर नक्शा भी खींच सकते थे ? नहीं। उनका निर्माण करने वाले कुछ दूसरे ही लोग थे जिन्होंने अपने नाम की छाप उस बुर्ग की प्रत्येक ईंट पर लगा रखी है ; फिर भी तुम उन्हें नहीं देख पाते। अंधों की तरह तुम्हें यह बतला दिया गया है कि जो चीज़ उस शक्ल की दीखे उसका नाम बुर्ग है और यदि वह अमुक स्थान पर बना हो तो उसे अमुक नाम से पुकारना चाहिये, और उनमें अमुक-अमुक व्यक्ति रहा करते थे, इसकी गिनती करनी चाहिये। तुमने यही पाठ रट लिया है। पर क्या तुम इस बात का अनुमान नहीं कर पाते कि उस पाठ में तुम वास्तविकता से कितनी दूर जा पड़े हो ?

'तुमने जिन मुट्ठी-भर जरमनों से परिचय प्राप्त किया है उनकी सङ्गति में तुम्हें यह वास्तविकता दीख भी नहीं सकती थी। तुम जिन प्रोफ़ेसरों के पास सीखने गये थे उन्होंने स्वयं ही अपने आपको बहुत पहले से ही वास्तविक कार्यशील समाज से अलग—एक अन्धकारपूर्ण कोठरी में—बन्द कर रखा है। जिस अन्धकार में रहने की उन्होंने तुम्हें आदत दे डाली है उससे निकाल कर यदि मैं तुम्हें प्रकाश दिखलाने का प्रयत्न भी करूँ तो तुम मेरी बातों पर शायद ही विश्वास करोगे ; क्योंकि आजकल के समाज के विषय में जानकारी का ठीका

उन प्रोफ़ेसरों ने ही ले रखा है, उस पर उन्होंने अपना पेटेंट करा रखा है और उसे ही ध्रुव सत्य मानने के लिये लोगों को बाध्य किया जाता है। ये प्रोफ़ेसर व्यक्ति-विशेष की स्तुति किया करते हैं। पर वास्तविक कर्मशील समाज को—जो सचमुच सृष्टि किया करता है—भुला डालने का प्रयत्न करते हैं।

'ठीक यही बात वर्त्तमान जरमनी के सम्बन्ध में लागू होती है। अख़बार, सिनेमा, थियेटर, ऑपेरा, जहाँ कहीं भी देखो, व्यक्ति-विशेष की स्तुति पाओगे। उन्हीं व्यक्तियों को 'मनुष्योपरि' सिद्ध कर दिखलाने की चेष्टा की जाती है! राष्ट्र का असली प्राण, उसकी मूल आत्मा, जिसके कामों की नींव पर राष्ट्र की इमारत खड़ी रहती है, कार्यशील मज़दूर-वर्ग है! उसका नाम तुम कहीं भी नहीं अथवा बहुत ही कम सुनोगे। इस मज़दूर-वर्ग के लोग बिना अपने व्यक्तिगत नाम की इच्छा रखे दिन-रात राष्ट्र को जीवित बनाये रखते हैं; पर वे ही वर्त्तमान समाज में नीच और हेय दृष्टि से देखे जाते हैं।

'तुम्हें जरमनी में उसी समाज की सङ्गति में रहना चाहिये था, उनसे ही पाठ पढ़ना चाहिये था; तब तुम्हें पता चलता कि जिन लोगों की ओर तुम आँखें उठा कर देखना भी नहीं चाहते उनमें ही राष्ट्र को जीवित रखने की कितनी अनन्त शक्ति छिपी है।'

'माफ़ करना हाना!'—मैंने कहा—'अपनी यात्रा में मैंने मज़दूरों को भी देखा है, और जैसा तुम कहती हो कि मैं उनकी ओर आँखें उठा कर देखना भी नहीं चाहता, यह बात नहीं है। मैं उन्हें आदर की दृष्टि से देखता हूँ।'

'मेरे दोस्त! यही तो तुम्हारी भूल है! तुमने अपने को उनके साथ एक बना कर नहीं देखा, उनके साथ रह कर उनका भोजन नहीं किया, उनकी लड़ाई नहीं देखी, दूर खड़े-खड़े उन्हें तमाशबीन की

तरह देखते रहे और इसीलिए यह आदरसूचक शब्द तुम्हारे मुँह से निकल रहा है। यदि तुमसे कोई मज़दूर मिला भी होगा तो तुम्हारे इस भाव के कारण तुमसे खुल कर बातें नहीं की होंगी। उन्हें आदर करने वाला नहीं चाहिए, बल्कि उन्हें अपनाने वाला चाहिए, उन पर अपनपा दिखाने वाला चाहिए।

'तुम्हारे इस आदर में केटी अथवा उसीके जैसी और किसी दोस्त के लिए तुम्हारा आदर का भाव छिपा है! उन लोगों के प्रति जो तुम्हारे भाव हैं उन्हींके कारण तुम जरमनी को सुन्दर देखने लगते हो, उसका आदर करने लगते हो; पर तुम जरमन समाज के उतने निकट नहीं पहुँच पाये हो कि वह तुम्हें अपना सके अथवा तुम उसे अपना कह सको।

'विद्यार्थी-जीवन में तुम जिस समाज में अक्सर हिलते-मिलते थे वह तुम्हें अपना नहीं सकता था। तुम्हें अपनाने वाला केवल एक मज़दूर समाज हो सकता था, और तुम उसी समाज के निकट अपने को नहीं ला सके। यह समाज तुम्हें तुम्हारे अपने देश के कार्य के लिए अधिक उपयोगी बना दे सकता था; पर उससे सीख लेने की बात तुम्हारे मन में आई ही नहीं।

'अभी तुम मुझे जैसा बतला रहे थे, हाइडिलबेर्ग में तुम 'रोमैंस' सीखने चले थे! बतलाओ तो, किसी राष्ट्र के जीवित रहने के लिए 'रोमैंस' उसमें कितनी सहायता पहुँचा सकता है? और, 'रोमैंस' के पीछे पड़े रहने के लिए भी समाज में कितने लोगों को अवकाश है? समाज के ऊपर-ऊपर के फ़ालतू लोगों के लिए, जिनका जीवन-संग्राम जटिल नहीं, जो दूसरों की मिहनत पर अपना जीवन बिताया करते हैं, जो परोपजीवी हैं और जिनका आलस्य के सिवा दूसरा और कोई पेशा नहीं, वे ही 'रोमैंस' के पीछे अपनी इतनी शक्ति तथा अपना इतना समय

खर्च कर सकते हैं, वे राष्ट्र के ऊपर सिवा भार बने रहने के और कुछ नहीं किया करते। तुम उन्हीं लोगों से सीखने गये थे न ? उनसे तुम अपने अथवा अपने देश के काम की कौन सी चीज़ सीख सकते थे ?

'तुम अपने देश का ही उदाहरण लो ! यदि वहाँ मज़दूर और किसान काम न करें तो ये रोमांचिक जीवन वाले कितने घंटे जीवित रह सकते हैं ? तुम स्वयं अपनी ही बात देखो, यदि तुम काम न करो तो कितने दिनों तक तुम्हारा वह 'रोमैंस' चल सकेगा ? केटी अभी तक स्वयं ही हवा में उड़ने वाली बनी हुई है, वह तुम्हें कुछ सिखला नहीं सकती थी। हाँ, जिस दिन वह भी मेरी ही तरह ठोकर खाकर लौटेगी उस दिन उसे भी चेत आयगा और अपना तथा अपने वर्ग का स्वार्थ स्पष्ट रूप में देख सकेगी। तुम यह न समझना कि वह अपने भीतर के उत्साह तथा आशा के उन्माद में उस जीवन की ओर दौड़ रही है ! मैं उसे भली भाँति समझ पा रही हूँ, उसकी अपने भीतर की निराशा ही उस जीवन की ओर उसे खींच रही है। जो स्वाभिमान का भाव निराशा के कारण उसके भीतर सो रहा है वह जिस दिन जाग्रत होगा, मैं दावे के साथ कह सकती हूँ कि जिस वायुमण्डल में रहने के लिए वह इतनी उत्सुक है उसके प्रति ही उस दिन उसके भीतर ऐसी घृणा का भाव आयेगा कि वह उस समाज में साँस नहीं ले सकेगी।

'हमारे मज़दूर-समाज में केटी के समान एक नहीं, हज़ारों ऐसी लड़कियाँ हैं जिन्हें बिना ठोकर खाये सूझ नहीं आती। जो भी हो, हमारे समाज (मेरा मतलब मज़दूर समाज से है) की शक्ति, उसका असली प्राण, ऐसे व्यक्ति नहीं हैं; उसे जीवित रखने वाले दूसरी ही धातु के बने व्यक्ति हैं जो अपनी रोटी के लिए, अपने अधिकार के लिए, अकेले अपने ही जीवन में नहीं, बल्कि सारे समाज के जीवन में सुख और आनन्द लाने के लिए लड़ रहे हैं। तुम बड़े ही अच्छे मौके से

इधर आए हो, हमारे संग्राम का कुछ-न-कुछ अनुभव तुम्हें भी हो ही जायगा। तुम्हारी आँखें भी यह देख कर खुल जायँगी कि 'रोमैंस' अथवा प्रेम नहीं, बल्कि संग्राम ही जीवन है। यह बात जैसे किसी व्यक्ति-विशेष के लिए, ठीक उसी प्रकार एक देश के जीवन के लिए भी लागू होती है। यदि तुम्हें स्वयं भी जीवित रहना है तो जितनी जल्दी 'रोमैंस' से तुम्हारा पीछा छूटे, उतना अच्छा। संग्राम ही तुम्हारा एकमात्र रास्ता है। यही बात तुम हमारे तथा हमारे सारे मजदूर-समाज के जीवन में लागू होती पाओगे।'

अब मजदूर-समाज का महत्त्व तथा उसमें छिपी हुई शक्ति मुझे दिखलाई देने लगी। साथ ही, अपने भीतर की शक्ति पर भी दृढ़तापूर्वक विश्वास जमने लगा। एक मनुष्य द्वारा दूसरे के शोषण होने तथा दबाये जाने की बात मेरे लिए नई नहीं थी। मैं स्वयं जन्म से उसका शिकार बनता आ रहा था; पर उस अन्याय के खिलाफ़ लड़ने की शक्ति अपने में है, यह अनुभव नहीं करता था। अब मेरी समझ में आने लगा कि हमें भी जीने का, अपने जीवन को सुखी बनाने का अधिकार है; अपने विकास के लिए उपयुक्त वायुमण्डल का लाना परमावश्यक है। यदि हमें जन्म से ही अपने विकास की आवश्यक सामग्रियाँ मिली होतीं तो क्या मैं अभी जैसा हूँ उससे मैंने अपने को समाज के लिए कहीं अधिक उपयुक्त न बना लिया होता? यह मेरी भूल थी कि अब तक मैं अपने जीवन का कोई मूल्य ही नहीं समझता था। समाज की दृष्टि से आलसी लोगों की अपेक्षा हमारा जीना कहीं अधिक आवश्यक है। और इसी तरह मज़दूरों के हज़ारों-लाखों बच्चों को, अपने जीते रहने के लिए, अपने विकास के लिए, जिन साधनों की आवश्यकता है, उन्हें प्राप्त करने का अधिकार है। जो अकर्मण्य, अपनी

आवश्यकता से अधिक, उन साधनों पर अधिकार जमाये बैठे हैं वे चोर तथा लुटेरों के सिवा और कुछ नहीं हैं। मेरे लिए तथा मेरे ही समान मज़दूरों के बच्चों के जीवित रहने के लिए, उनके अपने विकास के लिए आवश्यक साधन प्राप्त नहीं हैं, और जब उन साधनों पर हम अपना अधिकार जमाना चाहते हैं तो अकर्मण्य-वर्ग हमारा रास्ता रोक कर खड़े हो जाते हैं। उन सभी आलसियों की अपेक्षा एक छोटे से मज़दूर के बच्चे का जीवन कहीं अधिक मूल्यवान है और इसीलिए अपने जीने तथा अपना विकास करने के साधनों पर उनका अधिकार होना ही समाज की उन्नति का एकमात्र रास्ता है।

एक दिन हाना ने शाम को अपने काम से लौटने पर कहा—

'हम लोग जीवित रहने के अपने अधिकार के लिए किस प्रकार लड़ते हैं और हममें कितनी शक्ति है, इसका अन्दाज़ तुम कल लगा सकोगे। कल पहली मई है; यह अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूरों के एक होकर लड़ने का दिन है।'

उस दिन शाम को भी, और दिनों की भाँति, जब हम लोग घूमने निकले तो जिन रेस्तुराँ में मज़दूर इकट्ठा हुआ करते थे उन्हें देखते हुए लौटे। उन स्थानों पर मुझे कोई नई बात नहीं दीखी। जैसा और पहले उन मज़दूरों को देखा था, उस दिन भी वे वहाँ बैठे बिअर पी रहे थे, ताश खेल रहे थे तथा भद्दी-भद्दी गालियाँ बकते हुए गप लड़ा रहे थे। उन्हें देख कर कोई भी यह कल्पना नहीं कर सकता था कि उनमें एक होकर अपनी रोटी के लिए, अपने वर्ग के स्वार्थ के लिए, लड़ने का माद्दा हो सकता है। जागृति—चाहे वह राजनीतिक हो अथवा सामाजिक, अथवा अन्य ही किसी क्षेत्र की—उनसे कोसों दूर दीखती थी। हाना ने उस वर्ग की जितनी बड़ाई की थी—और जिसका मेरे ऊपर गहरा प्रभाव

पड़ा था—वह अयथार्थ दिखाई देती थी। उसने उस वर्ग का जो सुन्दर चित्र खींचा था वह वहाँ उलटे रूप में दिखाई दिया। इसीलिए घर लौटते समय मैंने उससे कहा—

'तुम्हारी यह बात मैं भले ही मान सकता हूँ कि इन मजदूरों में लड़ने की छिपी हुई शक्ति है, पर कल ही वे लड़ाई के मैदान में कूदने वाले हैं, इस पर विश्वास नहीं होता।'

इतना कह कर मैं हँसने लगा, पर मेरे हँसने का बुरा न मान उसने शान्ति से कहना शुरू किया—

'आज तुमने जिन्हें बिअर के गिलासों के सामने इतनी शान्ति से बैठे देखा है कल उन्हीं लोगों को यदि लड़ाई के मैदान में देखोगे तो उस समय भी उनके चेहरे पर तुम्हें वही शान्ति दिखलाई देगी। इसका कारण यह है कि हमारी लड़ाई किसी नाटक की लड़ाई नहीं है, हमारी लड़ाई का सम्बन्ध हमारे जीवन के साथ है; इसीलिए बिना किसी बाहरी आवेश के ही तुम हमें लड़ता हुआ पाओगे।'

दूसरे दिन पहली मई थी। कारखानेदारों ने उस दिन मजदूरों को छुट्टी नहीं दी थी; पर मजदूर अपनी इच्छा से ही उस दिन काम पर नहीं गये। वह दिन उनके संग्राम के त्योहार का दिन था। जिस आम हड़ताल की बात कई सप्ताह पहले से ही चल रही थी वह भी उसी दिन शुरू हो गई थी। कार्ल उस दिन सबेरे उठ कर, मालगोदाम में रेल गाड़ियों के आने-जाने का रास्ता साफ़ किये रहने का काम किया करता था, उन्हें ही रुकी हुई देखने के लिए चला गया था। हाना के साथ मैं शहर देखने निकला।

सड़कों पर यही विशेष बात देखने में आई कि यहाँ चलने-फिरने वाले बहुत ही कम आदमी थे। उन्हीं सुनसान सड़कों पर हम लोग कुछ ही आगे बढ़ पाये थे कि कार्ल के एक दोस्त ने उसके गिरफ्तार

कर लिये जाने की बात बतलाई। हाना को कोई नवीनता उस समाचार में नहीं दीखी। उसी मजदूर ने शहर में अनेक स्थानों पर धर-पकड़ तथा खानातलाशी की बात बतलाई। मजदूरों ने अपना जो जुलूस उस दिन निकालना चाहा था उसकी भी मुमानियत कर दी गई थी। फिर भी छोटे-छोटे दल बाँध कर मजदूर अपने नियत स्थान पर पहुँचते जा रहे थे। हम लोग भी उसी स्थान की ओर चले।

अभी कुछ ही दूर उस दिशा में हम लोग बढ़ पाये होंगे कि देखा—पुलिस की एक कतार ने उधर बढ़ने के लिये उत्सुक खड़ी हुई भीड़ को रोक रखा है। सामने की सड़क बिलकुल खाली थी, केवल उसके दूसरी ओर सिपाहियों का एक जत्था सामने के मकान के दरवाज़े पर खड़ा था। वे लोग शायद उस दरवाज़े को तोड़ने का प्रयत्न कर रहे थे। भीड़ में कानोंकान जो बातें चल रही थीं उनसे पता चला कि पुलिस को यह सन्देह है कि सामने के मकान में मजदूरों ने हथियार इकट्ठे कर रखे हैं तथा कई ऐसे व्यक्ति भी, जिनकी पुलिस खोज कर रही है, वहाँ छिपे बैठे हैं। वे लोग स्वयं दरवाजा खोलने के लिए तैयार नहीं हैं, इसीलिये पुलिस जबरदस्ती दरवाज़ा खोल रही है। जहाँ हम लोग खड़े थे वहाँ तक हथौड़े की आवाज़ सुनाई देती थी। दरवाज़ा टूटने को ही था कि ऊपर की खिड़की से एक लाल झण्डा फहराता हुआ दिखाई दिया। फिर क्या था, भीड़ में से भी सैकड़ों झण्डे एक-ब-एक निकल आये और लोगों के सर के ऊपर लाल-ही-लाल दीखने लगा। इसी समय किसी ने ट्राम के तार पर भी एक झण्डा फहरा दिया। चारों तरफ़ से 'पहली मई चिरजीवी हो', 'मजदूर-वर्ग चिरजीवी हो' आदि की आवाजें आने लगीं। पुलिस की कतार के लिये भीड़ को और अधिक रोक रखना मुश्किल हो गया। लोगों ने उनकी कतार तोड़ दी और सामने के दरवाज़े तक पहुँचने लगे। पुलिस के हाथ के हथौड़े छीन

कर किसी ने फेंक दिये। इसी समय पुलिस ने गोलियाँ दागनी शुरू कीं। शायद ये झूठे फ़ायरों की आवाज़ें थीं; फिर भी भीड़ पीछे को हटने लगी।

उस गोलमाल में कुछ सुनाई नहीं दे रहा था और न अपने बगल के साथी को ही ढूँढ़ लेना आसान था। एक-ब-एक अपने को मैंने पुलिस के ठीक सामने वाली उस भीड़ की सबसे अगली कतार में पाया। हाना मेरी बगल में नहीं थी। इधर-उधर दृष्टि दौड़ाई तो देखा कि भीड़ ने उसे ढकेलते-ढकेलते एक किनारे कर दिया था और उस ओर से घुड़सवार-पुलिस हाथों में हाथ-हाथ भर के लम्बे सोंटे लिये भीड़ को चीरती हुई बढ़ती आ रही थी। हाना उस स्थान पर भीड़ की पहली कतार में थी। घुड़सवार-पुलिस को आते देख वह हटी नहीं। मुझे साफ़ दिखाई देने लगा कि घोड़े की टाप अभी उसको कुचल डालेगी, पर उस पर सवार सिपाही ने घोड़े को एक ओर मोड़ कर हाना के सर पर इस तरह तोल कर डण्डा मारा कि वह लड़खड़ा कर गिर पड़ी।

उस समय मैं जल्दी में कुछ सोच नहीं सका, मेरे शरीर में बिजली सी दौड़ गई थी; मैं भीड़ को चीरता हुआ उस घुड़सवार के पास तक पहुँच गया। यह सोचने का मौका पाने के पहले ही कि उसके हाथ से कोई उसका सोंटा छीनने का साहस करेगा, उसके हाथ का सोंटा मेरे हाथ में आ गया था। मुझे उस घुड़सवार का जो अङ्ग दिखलाई पड़ता उस पर मैं आँख मूँद कर अन्धाधुन्ध सोंटा चलाता जा रहा था। हाथ चूकने से कभी-कभी सोंटा घोड़े को भी लग जाता और जिस ओर पुलिस के सिपाही खड़े थे वह उछलता हुआ उधर ही टापें चलाने लगता। मैं भी उधर ही सोंटे का वार करता हुआ लपकता जा रहा था; पर दोनों ओर से दो आदमियों ने मुझे पकड़ कर पीछे खींच लिया। मैं समझ रहा था कि मुझे खींचने वाले पुलिस के

आदमी हैं और उस ओर सोंटा चलाने ही वाला था कि देखा—मेरे एक ओर वही मजदूर खड़ा था जिसके साथ मैं उस भीड़ में आया था। वह मुझे शान्त कर रहा था, पर मैं अपनी ज़बान में गालियाँ बकता जा रहा था, जो उस स्थान पर खड़ा हुआ कोई भी नहीं समझ सकता था।

जब वे मुझे खींचते हुए भीड़ के पीछे ले आये तो वहीं हाना भी खड़ी मिली। वह मुसकरा रही थी; पर उसके सर में रूमालों की सफ़ेद पट्टी बँधी थी जो एक स्थान पर लाल होती आ रही थी। मेरे आस-पास खड़े मजदूर मुझे भागने के लिये कह रहे थे; पर मैं समझ नहीं पा रहा था कि आख़िर मैं भागूँ क्यों! पर एक मज़दूर बोला—

'पुलिस हमारी शनाख्त नहीं कर सकेगी, पर तुम्हारे चेहरे के रंग से वह तुम्हें खोज निकालेगी। हमारे दल का सम्बन्ध वह, मालूम नहीं, विदेशों के कितने दलों से जोड़ने लगेगी। तुम जिनकी सहायता करना चाहते हो, तुम्हारे पकड़े जाने से उनके ही ऊपर आफ़त आयगी।'

मैं घर लौटना चाहता था, पर एक मज़दूर ने मुझे अपनी मोटर-साइकिल के पीछे बिठाते हुए कहा—

'नहीं, वहाँ पुलिस बैठी है। चलो, मैं तुम्हें रास्ता दिखलाता हूँ।'

मुझे पता नहीं, वह मुझे कहाँ लिये जा रहा था। रास्ते में पूछने पर उसने कहा—

'घबराओ नहीं। जैसे तुम हमारे मित्र हो वैसे ही हम भी तुम्हारे हैं। जीते-जी तुम्हें शत्रु के हाथ नहीं पड़ने देंगे।'

घण्टे भर पूरी रफ्तार से हम आगे बढ़ते रहे। तीसरे पहर एक जगह उसने साइकिल खड़ी की और आगे दिखलाते हुए कहा—

'यह रास्ता रेलवे-स्टेशन को जाता है। तुम आधी रात की गाड़ी से ब्रेनर के लिये रवाना हो जाना। कल सबेरे वहाँ पहुँच जाओगे।'

'लेकिन मैं तो भागना नहीं चाहता !'

'जब मामला शान्त हो जाय तब फिर लौट आना। हम लोगों के लिए भी यही अच्छा होगा।'

'और हाना ?'

वह हँसने लगा और बोला—

'उसकी परवा न करो। उसकी ख़बर तुम्हें मिलती रहेगी और उससे तुम्हारी मुलाकात भी होगी। जब तक हमारी विजय नहीं होती, हम मर नहीं सकते।'

पिछली बार जरमनी से भागते समय मेरे भीतर जैसा भय था, इस समय वैसा कुछ भी नहीं था; भय का नाम-निशान तक मेरे भीतर नहीं रह गया था। चेहरे पर किसी प्रकार की घबड़ाहट नहीं थी। जहाँ पर आस्ट्रिया की सीमा ख़तम होती थी, पहरेदारों ने अपनी खिड़की से ही मुझे देखा; पर खड़े रहने तक के लिए भी नहीं कहा। जिस रफ्तार से कदम रखते हुए मैं पहले से चला आ रहा था, उसी रफ्तार से बढ़ता चला गया। शायद उस समय तक सीमा बन्द करने का हुक्म उनके पास नहीं पहुँचा था।

स्टेशन के पहले एक पुलिस-चौकी पर मैं ज़रूर रोक रखा गया। वहाँ पहुँचते-पहुँचते मेरा शरीर सारे दिन की थकावट से चूर-चूर हो चला था। अभी अँधेरा नहीं हो पाया था; इसीलिये आशा बाँधे रेलवे-स्टेशन की ओर आगे बढ़ता जा रहा था। पुलिस वालों ने पासपोर्ट देख कर तो उसे मुझे फिर लौटा दिया, पर पूछा—

'आपके पास कितने पैसे हैं ?'

मेरे पास पैसे बहुत ही कम थे और पहरेदारों के कथनानुसार उतने थोड़े पैसे वाले आदमी का सीमा में घुसना मना था। मैं उन्हें

हज़ार समझाता था कि मैं चोरी-डाका डाल कर सफ़र नहीं करूँगा, बल्कि किसानों के घर में पुआल पर रात बिताऊँगा तथा उनके खेतों में काम कर उनसे रोटी लूँगा और उसी प्रकार रोम तक की पैदल-यात्रा करूँगा। वहाँ पर मेरे परिचित हैं जिनके यहाँ टिकूँगा और फिर वहाँ से भारत लौटने तक का जहाज़-टिकट भी मेरे पास है। पर पहरेदार मुझ पर विश्वास नहीं करना चाहते थे और इसीसे मुझे छोड़ने के लिए राज़ी नहीं हो रहे थे। वे मुझे रोम के परिचित से तार देकर पैसे मँगाने के लिए कह रहे थे और पैसे आ जाने पर ही मुझे आगे बढ़ने देना चाहते थे।

मैं पहरेदारों से उलझ ही रहा था कि झुँझला कर ज्यों ही एक बार दृष्टि फेरी तो रास्ते पर एक मोटर खड़ी हुई दिखलाई दी। बिना कुछ सोचे ही मैं उसमें बैठे हुए लोगों की ओर देखने लगा। उसमें एक युवती बैठी हुई दिखलाई दी जिसके कपड़े उसके चेहरे से कहीं अधिक सुन्दर दिखाई दिये। उसने मेरा नाम लेकर पुकारा—

'हेर—'

मैं अवाक् होकर उसकी ओर देखने लगा—

'हाइडिलबेर्ग की ऐनी को आप बिलकुल ही भूल गये?' उसने हँसते हुए कहा। उसकी आवाज़ सुन कर मुझे याद आया कि हाइडिलबेर्ग में उसे कई बार देखा था और केटी के घर पर शायद दो-चार मिनट के लिये उससे बातें भी की थीं। पर मालूम नहीं उसके प्रति क्यों मेरे भीतर, जबसे उसे देखा था, एक प्रकार की चिढ़ सी थी।

फिर भी उसके पास जाकर मैंने उससे हाथ मिलाया। वह उस समय तक गाड़ी के बाहर निकल आई थी। उसकी बगल में काली

पोशाक में ढलती जवानी का एक पुरुष था जिसका उसने अपने पति के रूप में मुझसे परिचय कराया।

उसने मोटर में बैठने के लिए मुझे निमन्त्रण दिया और मेरे नाहीं-नाहीं करते रहने पर भी मुझे खींच कर अपनी बगल में बिठा लिया। जब मोटर चल दी तब पहरेदार ने, जिससे अभी थोड़ी देर पहले मैं झगड़ रहा था, झुक कर मुझे भी सलाम किया।

ऐनी कहने लगी—

'हम लोगों ने हाइडिलबेर्ग में भी आपको खोजा; पर पता नहीं लगा। मैं तो बिलकुल ही यह आशा छोड़ बैठी थी कि आपसे इस जीवन में और कभी मुलाकात होगी।'

मेरे हाइडिलबेर्ग से विदा होने के एक सप्ताह बाद ही ऐनी ने वहाँ के एक बड़े कारख़ानेदार से शादी कर ली थी। उसकी बातों से यह स्पष्ट झलक रहा था कि वह मुझसे और एक बार केवल यह दिखलाने के लिए मिलना चाहती थी कि वह वैसी साधारण लड़की नहीं है जैसा कि मैंने उसे समझ रखा था। उसका पति काफ़ी धनाढ्य था और इसीलिए अपनी बढ़ी हुई हैसियत मुझे दिखलाना चाहती थी। इस समय वे अपनी शादी के उपलक्ष में मोटर से इटली की यात्रा करने आये थे और अब यात्रा समाप्त कर चुकने पर आस्ट्रिया होते हुए लौटना चाहते थे; पर उसी समय वहाँ 'उपद्रव' शुरू हो जाने से उन्हें इटली घूम कर स्विटज़रलैंड होते हुए घर लौटना था। उन 'उपद्रव' करने वालों के प्रति ऐनी का गुस्सा भी कुछ कम नहीं था। उसके सम्बन्ध में उसने कहा—

'मालूम नहीं, इन हरामी मज़दूरों को क्या हो गया है कि अपने मालिकों से लड़ने के लिए हथियार लेकर उठ खड़े हुए हैं। अगर उनके मालिक न रहें तो रोटी के लिये तरसते-तरसते छटपटाते हुए उनके

आया जायँगे। और वह भी ऐन हमारी शादी के मौके पर! आस्ट्रिया की पहाड़ियों में कुछ सुन्दर दिन बिताने के ख़याल से उधर चले थे; पर आज सवेरे यहाँ पहुँचते ही ख़बर मिली कि सारे आस्ट्रिया में उपद्रव खड़ा हो गया है, जान-माल का चारों ओर ख़तरा हो गया है। कुछ मत पूछिये, आज हम लोगों का सारा दिन उसी उपद्रव का समाचार सुनते-सुनते बेकार गया।'

ऐनी के पति भी उसकी हाँ-में-हाँ मिलाते जा रहे थे। उन्होंने भी उपद्रवियों के 'काले' कारनामे सुनाते हुए कहा—

'हम लोग आज दोपहर को एक रेस्तुराँ में भोजन कर रहे थे। उसी समय रेडियो द्वारा मालूम हुआ कि इन्सब्रुक में घुड़सवार पुलिस के सिपाहियों और मज़दूरों में मुठभेड़ हो गई है। पुलिस ने जब मज़दूरों से सड़क साफ़ कर देने को कहा तो मज़दूर उलटे पुलिस के हाथों से उनके सोंटे छीन कर उन पर ही चलाने लगे। ऐसी बात तो आज तक सुनने में नहीं आई थी। और तो और, पता नहीं, उस शहर में ऐन इस मौके पर कहाँ से नेगरों (हब्शियों) की एक सेना आ पहुँची है, जो पुलिस के ख़िलाफ़ लड़ रही है। इन मज़दूरों के ख़िलाफ़ तो तुरन्त अन्तर्राष्ट्रीय सेना लड़ने के लिए बुलाई जानी चाहिये।'

इसी समय ऐनी ने उसकी बातों का तार अपने हाथ में लेते हुए कहना शुरू किया—

'सेना तो आयगी आगे-पीछे, हमारा सुन्दर दिन तो उन्होंने ख़राब ही कर दिया; साथ ही हमारे 'हनीमून' की इस यात्रा में भी बड़े-बड़े रोड़े अटका दिये।'

अब मेरी समझ में आने लगा कि ऐनी के प्रति मेरी वैसी चिढ़ आरम्भ से ही क्यों थी और किस कारण उसके प्रति मैं स्वाभाविक ही विरक्त था। पति-पत्नी जो बातें कर रहे थे और आस्ट्रिया के

मजदूरों को जैसी गालियाँ दे रहे थे उसमें मैं दख़ल नहीं देना चाहता था। वे आगे भी उसी गुस्से के साथ बोलते जा रहे थे; पर मैंने एक कोने का सहारा ले लिया था और आँखें मूँदते ही मुझे नींद भी आ गई थी।

दूसरा शहर आ जाने पर ऐनी ने मुझे जगाया। उसका पति होटल में कमरा तलाशने गया था। वह मुझे भी उसी होटल में टिकने के लिए ज़ोर देने लगी; पर उसी रात की गाड़ी से ब्रेनर जाने की अपनी ज़िद पर मैं अड़ा रहा। उन लोगों ने मुझे स्टेशन तक पहुँचाया। मोटर में जितनी देर उन लोगों के साथ सफ़र किया था उतने ही समय में मेरी तबीयत ख़राब सी हो चली थी। जब मैं अकेले अपने डब्बे में जा बैठा और गाड़ी खुल गई तब जाकर मेरी तबीयत भी सँभली।

जिन लोगों को ऐनी और उसके पति गालियाँ दे रहे थे उस वक्त उनका ही चेहरा मेरी आँखों के सामने नाच रहा था और बार-बार हाना का सुन्दर चेहरा आँखों के सामने आ जाता था। मैं बार-बार उसे लक्ष्य करके मन-ही-मन कहता—

'हाना, तू कैसी सुन्दर है! तू मेरी स्मृति में चिरस्मरणीय रहेगी।'



बिदा

सवेरा हो जाने पर खिड़की से झाँक कर देखा तो आँखों के सामने का दृश्य बिलकुल ही बदल चुका था। अब मेरे चारों ओर पहाड़ियों के बदले मैदान-ही-मैदान दिखलाई दे रहे थे। अपने देश में अधिकतर जिस प्रकार का दृश्य देखा करता था बहुत-कुछ उसी प्रकार का दृश्य सामने था। जिस यूरोपीय सर्दी का आदी सा बन गया था वह एक-ब-एक लुप्त हो गई। बड़ी तेज़ धूप निकली हुई थी। ज़ोर की गर्मी थी। मुझे इस बात पर आश्चर्य हो रहा था कि कल ही जिस सूरज में इतनी ठण्डक देखी थी, एक दिन में ही वह इतना गरम कैसे हो गया? एकाएक उस परिवर्तन पर सहसा विश्वास कर लेना कठिन हो रहा था। जब उस पर विश्वास जम गया तो उसमें अपने देश की समानता रहने के कारण बार-बार अपने देश की याद आने लगी। मुझे सहसा खयाल आया कि मैं अब तक मानो अपने देश को बिलकुल ही भूल बैठा था।

उसी स्मृति में तन्द्रा सी आने लगी। आँखों के सामने बहुत से ऐसे दृश्य नाचने लगे जिनकी याद विदेश आने पर और कभी नहीं आई थी।

दीपक जलने के समय मैं नैपल्स पहुँचा। उसी दिन दरियाफ्त करने पर पता चला कि जिस जहाज़ का मेरे पास टिकट था वह तीन दिन के बाद छूटने वाला है। अब मैं वास्तव में ही यूरोप से बिदा लेने वाला था।

नैपल्स में रहते समय, एक दिन, अधिकांश लोग जिधर टहलने जाते थे उधर न जाकर एक विपरीत दिशा की ओर निकला। पहले से ही सुन रखा था कि उस ओर जेल है, पर उस दिशा में कभी गया नहीं था।

जेल के फाटक पर पहुँचने के कुछ पहले ही देखा कि मामूली सिपाहियों-जैसी वर्दी पहने कोई व्यक्ति बीस-पचीस आदमियों को कवायद करा रहा है। कवायद करने वाले व्यक्ति अपनी पोशाक से जेल के कैदी से दीखते थे। उन्हें जो व्यक्ति हुक्म दे रहा था उसकी ओर केवल एक सरसरी निगाह डालता हुआ मैं आगे बढ़ता चला गया; पर कुछ ही कदम बाद रुक गया। मैं अपने ही स्थान पर खड़ा हो उस व्यक्ति की चाल तथा हाथ हिलाने का ढंग ध्यानपूर्वक देखने लगा। कवायद खतम हो जाने पर, और कैदियों के फाटक के भीतर घुस जाने पर वह व्यक्ति हँसता हुआ मेरी ओर आया और मुझसे कस कर हाथ मिलाते हुए बोला—

'कहो दोस्त! तुम यहाँ कैसे?'

'एमिल! तुम तो अपनी इस वर्दी में बिलकुल ही पहचान में नहीं आते!' मैंने हँसते हुए कहा।

'मैं जानता था कि तुम नैपल्स में हो'—उसने कहा—'कल शाम को मैंने तुम्हें स्टेशन के पास देखा था; पर उस समय तुम किसी स्त्री के

साथ थे, इसलिए तुम्हें छेड़ा नहीं! अब बताओ, मुझे सबसे बड़ी उत्सुकता इस बात के जानने की है कि इतनी सुन्दर स्त्री तुम्हें मिली कहाँ?'

'कौन सी स्त्री?'

'उसके कपड़े अजीब ढंग के थे।'

'वह शायद कोई यात्री रही होगी! मैं उसे नहीं पहचानता।'

एमिल का रंग-ढंग बदला नहीं था। बातचीत का भी तौर-तरीक़ा पहले-जैसा ही था और स्त्रियों के प्रति उसके विचारों में तिल मात्र का भी अन्तर नहीं पड़ा था। उसके पिछले दो वर्षों के इतिहास के विषय में मुझे प्रश्न करने की आवश्यकता नहीं थी। बिना पूछे ही वह विस्तारपूर्वक, जितने दिनों से हमारी मुलाकात नहीं हुई थी, उसका इतिहास सुनाने लगा।

मुझसे साथ छूटने के कुछ ही दिन बाद उसका अच्छा सुतार जम गया था। अन्तर्राष्ट्रीय जाल रचने वाले, ठग तथा लड़कियों का व्यवसाय करने वाले दल में उसने अपना नाम लिखा लिया था। पहले उसने जाली सिक्के बनाने सीखे, फिर मोटरें चुराईं और उसके बाद लड़कियाँ फँसा-फँसा कर बेचने के लिए लाने लगा। फ्रांस की पुलिस उसके पीछे थी; इसलिए कुछ दिनों के बाद ही वह अपने दल द्वारा इटली भेज दिया गया। वहाँ थोड़े ही दिन काम कर पाया था कि उसे पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया और लम्बी सख्त कैद की सज़ा दे दी। वह जेल में अपनी सज़ा भुगत रहा था। उसी समय अपने 'भाग्योदय' का उसे एक नया रास्ता दिखलाई दिया। इटली से अफ्रीका में नये उपनिवेश दखल करने के लिए सेनाएँ भेजी जा रही थीं और उनमें जेल में सज़ा भुगतने वाले कैदियों के भर्ती होने की मनाही नहीं थी। एमिल ने स्वेच्छापूर्वक अपना नाम उस सेना में लिखा लिया था और फिर छः महीने के लिए सैनिक शिक्षा के लिए रंगरूटों की तरह एक

स्थान पर रखा गया था, जहाँ उसने उसकी तालीम प्राप्त की थी। वहाँ की तालीम उसने हाल में ही पूरी की थी और नैपल्स भेजा गया था। यहाँ की जेल में उसे कवायद सिखाने का काम दिया गया था। बहुत से कैदी मजदूरों के काम के लिए एमिल की देख-रेख में अगले सप्ताह अफ्रीका भेजे जाने वाले थे। एमिल को अपनी इस प्रगति का बड़ा अभिमान था। उसने बड़े गर्व से कहा—

'अफ्रीका वाले असभ्य हैं; उन्हें सभ्यता की शिक्षा देना हम लोगों का कर्त्तव्य है। साथ ही इस काम में मेरी भी चाँदी-ही-चाँदी है। उपनिवेशी सेना में अगर मैंने तरक्की की, तो अवश्य ही किसी-न-किसी प्रान्त का शासक बना दिया जाऊँगा। फिर तुम मेरी शान देखना!'

एमिल से तर्क करना व्यर्थ होगा यह मैं जानता था; फिर भी मैंने उसे जाँचने के लिए कहा—

'लेकिन तुम जिस अन्तर्राष्ट्रीय ठग-सम्प्रदाय के सदस्य थे उसके व्यापार के लिए तो अफ्रीका बढ़िया जगह नहीं!'

'वहाँ ठगी का ढोंग रचने की जरूरत ही क्या पड़ेगी? वहाँ तो हमें मनमानी लूट-खसोट करने की यों ही पूरी आजादी रहेगी!'

'अब सभ्यता सिखलाने का मतलब मेरी समझ में आया। अब तक मैं उसका अर्थ कुछ दूसरा ही समझ रहा था। तो लूट-खसोट करना ही तुम्हारी सभ्यता है और उसीके प्रचार के लिए तुम अफ्रीका जा रहे हो?'

'अफ्रीका वाले जैसे असभ्य हैं उन्हें सभ्यता के रास्ते पर लाने का भी तो और कोई दूसरा जरिया नहीं है।'

मैं एमिल के साथ बातें करते-करते एक जङ्गल के पास आ पहुँचा था। इस समय हम लोग जहाँ जा खड़े हुए थे उससे थोड़ी ही दूरी पर एक खरगोश दिखलाई दिया। एक आदमी ने, जो अभी-अभी हमारे

पारा एक कुत्ते के साथ आ पहुँचा था, खरगोश की ओर उस कुत्ते को दौड़ा दिया। मुझे एमिल और उस कुत्ते में कोई अन्तर नहीं दिखलाई दिया।

जब एमिल से बिदा लेकर घर की ओर लौटा तो मन में रह-रह कर यही बात उठ रही थी कि आखिर एमिल-जैसे लोगों का उपयोग करने के लिए उन्हें मनुष्यता से कितनी दूर ले जाया जाता है! केवल उन्हें दूर ही नहीं ले जाया जाता, बल्कि जितना भी कुकर्म उनसे कराया जाता है वह मनुष्यता के ही नाम पर! हमारे अपने देश को जो लोग सभ्यता सिखलाने का दावा करते हैं उनमें भी तो सौ प्रतिशत एमिल-जैसे ही लोग हुआ करते हैं! उनके ही अत्याचार के खिलाफ़ यदि हम लड़ते हैं तो हम अपने ही देश में चोर, डाकू, असभ्य आदि नामों से पुकारे जाते हैं और जेलों में ठूस दिये जाते हैं। इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं रह गया कि हमारे देश में इस समय असभ्यता ही सभ्यता पर राज कर रही है। एमिल की तरह के आदमी, जिनका आज हम पर शासन है, मालूम नहीं, हमारे देश के कितने लाख आदमियों को असभ्यता तथा अन्धकार के गढ़े में ढकेलते जा रहे हैं।

अपनी आँखों के सामने मुझे एक दूसरा ही क्षेत्र दिखलाई देने लगा। अब तक अपनी जितनी शक्ति 'रोमैंस' में अथवा व्यर्थ ही भटक कर खर्च की थी उस पर खेद होने लगा और मैं मन-ही-मन अपने को धिक्कारने लगा। जब अपने देश के करोड़ों आदमी ऐसी पाशविक बर्बरताओं के शिकार बन रहे हों जिनसे लड़ना अपने को मनुष्य कहने वाले किसी भी व्यक्ति के लिये लाज़िमी है, तब अपने को उस संग्राम से वंचित रख मधुर स्वप्न की खोज में निकलना क्योंकर अपराध नहीं गिना जायगा?

जहाज़ छूटने के एक दिन पहले हाना का ख़त मिला। वह भी नैपल्स आने वाली थी। उसके सर का ज़ख्म बढ़ता ही जा रहा था, और उन दिनों आस्ट्रिया उसके लिए निरापद स्थान भी नहीं था। इन्हीं बातों का ख़याल कर उसकी पार्टी ने उसे चिकित्सा के लिए कुछ दिनों तक इटली में रखना निश्चित किया था।

जबसे मुझे वह ख़त मिला, आस्ट्रिया से आने वाली प्रायः प्रत्येक ट्रेन के समय मैं स्टेशन गया, पर प्रत्येक बार ही हताश होकर लौट आना पड़ा। अन्त में शाम की आख़िरी गाड़ी देख कर भी घर लौट आया। अपनी कोठरी में पहुँच कर कपड़े उतार डाले और सोने के समय की—बिना बटन की तथा घुटने तक पहुँचने वाली—कमीज़ पहन कर बिस्तर पर लेट गया।

अनायास ही मन में प्रश्न पैदा हुआ—'कल इस समय कहाँ रहूँगा ?'

कमरे की खिड़कियाँ बन्द थीं; पर बाहर आँधी इतने ज़ोरों से चल रही थी कि खिड़कियाँ फट-फट बजने लगी थीं। समय-समय पर जब हवा का झोंका सामने से निकल जाता और जब तक नया झोंका न आता तब तक खिड़कियाँ अपनी चौखटों से धीमे-धीमे बजती रहतीं। उनसे निकलने वाली आवाज़ मुझे ठीक ऐसी ही जान पड़ती मानो मेरी खिड़की पर कोई आ खड़ा हुआ है और उसे खटखटाते हुए मुझसे कह रहा है—

'उठो ! उठो !!'

मैं नींद में ही उठ खड़ा हुआ। खिड़की के पास आकर उसके दोनों पल्लों को पूरा-पूरा खोल दिया। साँय-साँय करती हुई हवा मेरे कमरे में

घुस आई और बाहर से आने वाले छींटे मुझे भिगोने लगे। अपने दोनों हाथ पसार कर उनका आलिंगन करते हुए मैंने कहा—

'आओ! तुम्हारा हृदय से स्वागत!'

सामने कुहासे के रूप में अन्धकार छाया हुआ था। खिड़की के पास के वृक्षों की डालियों और टहनियों को आँधी किस प्रकार झकझोर रही है, इसकी आवाज़ ज़ोरों से कानों में आ रही थी तथा उनका हिलना भी धुँधले अन्धकार को चीर कर कभी-कभी दीख जाता था।

पास के पेड़ के नीचे बड़े ही शान्त रूप में कोई व्यक्ति खड़ा दिखलाई दिया। वह मेरे इतना निकट था कि उससे बातचीत करने के लिए ज़ोर से बोलने की आवश्यकता नहीं थी। मैंने उससे पूछा—

'तुम कौन हो?'

उसने मेरा ही नाम बताया। मुझे आश्चर्य नहीं हुआ। उसकी आवाज़ भी केवल अपनी आवाज़ सी ही नहीं, बल्कि ठीक उसकी प्रतिध्वनि के रूप में सुनाई दी। मैंने उसे टोका—

'यह कौन सा खेल खेल रहे हो?'

'खेल? यही तो जीवन है!'

जीवन का नाम सुन कर मैं उसे पहले की अपेक्षा अधिक ध्यान से देखने लगा और पूछा—

'आखिर तुम हो कौन?'

'संग्राम!'

यह शब्द मुझे आग की लपट सा लगा। मैं चौंक उठा।

नींद वास्तव में ही टूट गई। हवा के झोंके से एक खिड़की टूट कर नीचे लटक गई थी। पानी की बौछार से सारा कमरा और मेरा बिस्तर तक शराबोर हो चुका था।

हाना आधी रात की गाड़ी से आई थी और मेरा नाम ले लेकर पुकारते हुए दरवाज़े को खटखटा रही थी।

मेरा जहाज़ उस दिन शाम को खुलने वाला था। तीसरे पहर हाना का ज़ख्म दिखलाने के लिये उसे एक डाक्टर के पास ले जा रहा था। रास्ते में एक चौराहे पर देखा कि लोगों की अच्छी खासी भीड़ लगी है। अफ्रीका दख़ल करने के लिए भेजे जाने वाले कुछ सैनिकों को बिदाई दी जा रही थी। हम लोग भी खड़े हो वह तमाशा देखने लगे। एक सेना-नायक अपने सैनिकों से व्याख्यान के रूप में कह रहा था—

'हम इटालियन लोगों के सबसे बड़े शत्रु अफ्रीका वाले हैं, वे ही हमारे विकास का रास्ता रोक कर खड़े हैं, जिस कारण हमें आज भूखों मरना पड़ता है।'

हाना का चेहरा बिलकुल लाल हो आया था। उसने चिल्ला कर कहा—

'सरासर झूठ! इटालियन लोगों की सबसे बड़ी शत्रु यहाँ की फ़ैसिस्ट सरकार है। उसी सरकार की करतूतों के कारण यहाँ वालों को भूखों मरना पड़ रहा है। मुसोलिनी सबसे बड़ा जल्लाद······'

जितने लोग खड़े थे, सबकी दृष्टि हाना की ओर खिंच गई। सेना-नायक भी एक मिनट के लिये सन्नाटे में आ गया, पर तुरन्त ही हाना को आगे न बोलने देकर गरज उठा—

'यह डायन कहाँ से टपक पड़ी? इसे तुरन्त ही तलवार के घाट उतार देना चाहिये!'

'तुम मुझे भले ही मार डालो, पर इटली में भी भड़कने वाली आग·········'

इसी वक्त एक सिपाही हाना का हाथ पकड़ कर उसे खींच ले जाने लगा। उसके जाते-जाते सेना-नायक ने कहा—

'तू मर जायगी, वरा सब आग ठण्डी हो जायगी।'

हाना ने भी जाते-जाते कहा—

'मेरे बाद जो ज़िन्दा बचेंगे, आगे बढ़ने की उनकी बारी आयेगी। मेरी मृत्यु हज़ारों को आगे बढ़ाएगी। वे देश को बचाने वाले सच्चे योद्धा होंगे। संग्राम······आगे······विजय······'

सिपाही उसका मुँह बन्द करना चाहता था, पर हाना बलपूर्वक संघर्ष करती हुई बोलती जा रही थी। सिपाही का हाथ अचानक उसके सर के ज़ख्म पर जा पड़ा। वह चीख़ उठी। मैं उसे सहारा देकर आगे ले जाने लगा। पास से ही एक टैक्सी गुज़र रही थी; उसी पर उसे लाद कर डाक्टर के यहाँ ले चला। पुलिस ने भी उसे ले जाने में कोई बाधा नहीं डाली। वह स्वयं उस सभास्थल की ओर लौट आया।

डाक्टर ने ज़ख्म पर पट्टी बाँध देने के बाद उसे वहीं पर कुछ देर आराम करने के लिए कहा। हाना ने सन्ध्या समय जहाज़-घाट के पास मिलने का वादा कर मुझे और एक काम से शहर भेज दिया।

घर से निकलते ही मुझे एमिल मिला। उसने मुझे टोका, पर उससे बातें करने की फ़ुर्सत उस वक्त मुझे नहीं थी।

जहाज़-घाट के लिए जिस वक्त रवाना हुआ, एकाएक बड़े वेग से अँधेरा छाने लगा। आकाश में काले बादल बहुत पहले से ही मँडराते आ रहे थे। थोड़ी देर में ही बड़ी-बड़ी बूँदें भी टपकने लगीं। मेरे कपड़े बिलकुल गीले हो चले। पर मैं रुका नहीं, आगे बढ़ता ही चला गया।

जिस सड़क पर मैं चल रहा था वह ठीक समुद्र के किनारे-किनारे होकर जाती थी। समुद्र की ओर नीले रंग का अन्धकार छाया हुआ था और किनारे पर लहरों के ज़ोरों से टकराने की आवाज़ आ रही थी।

मालूम नहीं, उन लहरों के टकराने का यह परिणाम था, अथवा पानी बरसने की आवाज़ का—मुझे किसी गीत का एक विशेष प्रकार का स्वर याद आने लगा। यह स्वर पहले बिलकुल धीरे-धीरे तथा अस्पष्ट रूप में स्मरण आया; पर थोड़ी ही देर में उत्तरोत्तर बढ़ कर झङ्कार के रूप में सुनाई देने लगा।

यह स्वर परिचित सा जान पड़ रहा था। मैंने उसे कहाँ सुना था, इसकी याद करने लगा। यह याद एक-बएक नहीं आई। पहले ख़याल आया कि स्टौकहोल्म में एक दिन शाम को अकेले जब टहलने निकला था तभी कहीं सुनाई दिया था; पर दूसरे ही क्षण यह धारणा निर्मूल सी जान पड़ी। फिर याद आया, यह तो मारसेई में सुने हुए एक जिप्सी युवक के बेहले का स्वर था; पर इस समय एक-ब-एक क्यों उस स्वर की याद आ गई, ठीक-ठीक नहीं समझ पाया।

नैपल्स के जिस रास्ते पर इस समय चल रहा था उसके बाएँ किनारे रोमन काल का बना टूटा-फूटा एक किला था। उस किले के दूसरी ओर से फ़ैसिस्ट पोशाक में एमिल को आते हुए देखा। उस जगह सहसा उसे देख कर मेरा सारा शरीर न जाने क्यों एक-ब-एक काँप गया।

एमिल के चेहरे पर उत्तेजना थी और स्पष्ट जान पड़ता था कि अभी-अभी उसने कोई बड़ा ही निष्ठुर काम किया है। मुझे देखते ही उसने कहा—

'तुम अपनी दोस्त से मिलना चाहते हो?'

वह कुछ कदम मेरे साथ आगे बढ़ा और समुद्र-किनारे की ओर उँगली का इशारा करते हुए बोला—

'वहां—'

मैं किनारे की ओर बढ़ा। एमिल ने जाते-जाते कहा—

'गोली से उसे आराम पहुँचता, पर हमारे फ़ैसिस्ट राज्य में एक गोली की कीमत उस पापिन की जान से कहीं अधिक है।'

वह ख़ून से सनी अचेत पड़ी थी। सर के घाव के ही पास और कई घाव रिवाल्वर के कुन्दे से किये गये थे! उसका चेहरा भी पहचान पाना कठिन हो रहा था। मैंने अपनी कमीज़ का एक भाग फाड़ा और समुद्र की लहरों के आने पर पानी में गीला कर उसका चेहरा धो डाला।

थोड़ी देर में उसकी आँखें खुलीं! बड़े कष्ट से उसने अपने दोनों हाथ उठाये और मेरा सिर अपनी ओर खींचा। बहुत चेष्टा करने पर उसका मुँह खुला और उसने बड़े ही धीमे स्वर में कहा—

'बिदा! मेरे प्यारे भाई! बि.......'

उसने आँखें बन्द कर लीं।

तूफ़ान आया। बवण्डर चला। प्रकृति का अट्टहास शुरू हुआ। अमावस्या की रात थी। लहरें हमारे पास तक आने लगीं। समुद्र बहुत ज़ोर से गरज रहा था।